शिक्षाऔर मानव विकास
Education and Human Development
BAED-201

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1	मनोविज्ञान: ऐतिहासिक पृष्टभूमि में इसका अर्थ , शिक्षा के साथ सम्बन्ध तथा मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान में अन्तर Psychology: Its meanings in the Historical Perspective, relationship with Education, Distinction between Psychology and Educational Psychology	1-18
2	शिक्षा मनोविज्ञान : अर्थतथा क्षेत्र , शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय Educational Psychology-meaning and scope. Major Schools of Educational Psychology	19-43
3	शिक्षा में मनोविज्ञान की विधियाँ Methods of Psychology in Education	44-62
4	मानव वृद्धि एवं विकास Human Growth and Development	63-83
5	मानव विकास की अवस्थायें Stages of Human Development	84-101
6	शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Infancy with respect to Physical,Mental, Emotional and Social Development	101-115
7	बाल्यावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Childhood -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development	116-130
08	किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Adolescence -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development	131-147
09	सीखना Learning	148-164
10	सीखने के सिद्धांत Theories of Learning	165-181
11	अभिप्रेरणा	182-196

	Motivation	
12	वैयक्तिक विभिन्नता Individual Differences	197-207
13	बुद्धि : इसका अर्थ, परिभाषायें, IQ के सन्दर्भ में बुद्धि मापन Intelligence: Its Meaning, Definitions, Measurement of Intelligence in terms of IQ	208--221
14	बुद्धि के सिद्धान्त Theories of Intelligence	222-241
15	बुद्धि परीक्षण Intelligence Testing	242-255
16	सृजनात्मकता Creativity	256-269
17	व्यक्तित्व: अवधारणा विकासएवं निर्धारक तत्व Personality: Concept and its Development, Determinants of Personality	270-285
18	व्यक्तित्व के सिद्धान्त Theories of Personality	286-292
19	व्यक्तित्व मापन की प्रविधियाँ Techniquesof PersonalityAssessment	293-310
20	वर्णनात्मक सांख्यिकी: केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक Descriptive Statistics :Measures of Central Tendency	311-345
21	विचरणशीलता का मापक: परास, चतुर्थांक विचलन व प्रमाप विचलन Measures of Variability or Dispersion : Range, Quartile Deviation and Standard Deviation	346-362
22	सहसंबंध: अर्थ, प्रकार एवं क्रम अंतर सहसंबंध गुणांक का परिकलन Correlation : Meaning, Types, and Computation of Rank Difference Coefficient of Correlation:	363-378

इकाई -1 मनोविज्ञान: ऐतिहासिक पृष्टभूमि में इसका अर्थ , शिक्षा के साथ सम्बन्ध तथा मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान में अन्तर

Psychology: Its meanings in the Historical Perspective, relationship with Education, Distinction between Psychology and Educational Psychology

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मनोविज्ञानः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
  1.3.1 व्यवहार शब्द का अर्थ
1.4 शिक्षा तथा मनोविज्ञान
  1.4.1 शिक्षा का अर्थ
  1.4.2 मनोविज्ञान की आधुनिक परिभाषा
1.5 मनोविज्ञान तथा इसका शिक्षा के साथ सम्बन्ध
1.6 शिक्षा मनोविज्ञान तथा साधारण मनोविज्ञान में अन्तर
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भग्रन्थ
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान अभी कतिपय वर्षो से ही हमारे सामने स्वतन्त्र विषय के रुप में आया है। पहले यह दर्शनशास्त्र की ही एक शाखा मानी जाती थी। कुछ शताब्दियों पूर्व मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की वह शाखा मानी जाती थी, जिसमें मन और मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता था। किन्तु

कालान्तर में मनोवैज्ञानिकों की धारणा भ्रमात्मक सिद्ध हुई और आज मनोविज्ञान एक शुद्ध विज्ञान के रुप में माना जाता है तथा विद्यालयों में इसका अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय के रुप में किया जाता है। शिक्षा एक जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है मनोविज्ञान और शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनोविज्ञान शिक्षा के साथ मिलकर उसके उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होता है शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान की एक शाखा है जिनके उद्देश्यों और कार्यों में काफी विभिन्नता पाई जाती है इन सभी बिन्दुओं पर प्रस्तुत ईकाई में विस्तार से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। आइए इसके बारे में विस्तार पूर्वक अध्ययन करें।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्तआप-

- बता सकेंगें कि मनोविज्ञान का उद्भव किस शब्द से हुआ है।
- मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में बता सकेंगे।
- मनोविज्ञान के विभिन्न अर्थों की व्याखा कर सकेगें।
- 'व्यवहार' के विस्तृत अर्थ को समझा सकेगें।
- शिक्षा के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं की सहायता से व्यक्त कर सकेगें।
- मनोविज्ञान की आधुनिक परिभाषा को जान सकेगें।
- मनोविज्ञान तथा इसका शिक्षा के साथ निहित सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेगें।
- शिक्षा मनोविज्ञान तथा सामान्य मनोविज्ञान के अन्तर को बता सकेगें।

1.3 मनोविज्ञानः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अंग्रेजी रुपांतर 'Psychology' दो ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है - 'Psyche' तथा 'logos''Psyche' का अर्थ है आत्मा तथा 'logos' का अर्थ है अध्ययन या विवेचन परन्तु 'Psyche' का अर्थ भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न रुप से जैसे आत्मा, मन इत्यादि के रुप में जाना जाता रहा है और इसी के फलस्वरुप मनोविज्ञान के अर्थ एवं परिभाषाओं में भी परिवर्तन होता रहा है। प्रमुख रुप से मनोविज्ञान के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में निम्न चार अवस्थाएं मानी जा सकती है-

प्रथम अवस्था - सबसे पहले मनोविज्ञान को आत्मा का अध्ययन करने वाले विषय (Study of soul) के रुप में परिभाषित किया गया। दर्शनशास्त्र से निकट सम्बन्ध के कारण ही 'आत्मा' को मानव जीवन का वास्तविक आधार मानकर इसके अध्ययन पर उस समय के मनोविज्ञान में विशेष बल दिया जाता रहा परन्तु धीरे-धीरे इसकी आलोचना शुरु हो गई। 'आत्मा' क्या है? इसका स्वरुप

क्या है? यह कहाँ रहती है। इनका अध्ययन कैसे सम्भव है? इस प्रकार की शंकाएँ तथा आपत्तियों के उठने से मनोवैज्ञानिक अब मनोविज्ञान के किसी दूसरे अर्थ एवं परिभाषा की खोज करने में लग गए।

द्वितीय अवस्था - 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के दार्शनिकों (Philosophers)ने जिनमें लिबिनिज (Leibnitz), हाब्स (Hobbes), लॉक (Locke), कांट (Kant), ह्यूम Hume), आदि का नाम उल्लेखनीय है। 'Psyche' शब्द का अर्थ मन बताया और कहा कि मनोविज्ञान की विषयवस्तु मन है। परिणामस्वरुप मनोविज्ञान मन के अध्ययन का विज्ञान माना गया। मनोविज्ञान की यह परिभाषा लगभग 1870 ई0 तक सर्वमान्य रही और मनोविज्ञान जो उस समय दर्शनशास्त्र की ही एक शाखा थी, कि विषय-वस्तु 'मन' बनी रही।

इस परिभाषा में मुख्यतः दो दोष थे जिसके कारण इसकी काफी आलोचना हुई और लम्बे समय तक सर्वमान्य न रह सकीं।

- प्रथम मन अमूर्त वस्तु है जिसे देखा या सुना नहीं जा सकता। अतः इसका वैज्ञानिक रुप से अध्ययन सम्भव नहीं है।
- दूसरा दोष- इस परिभाषा को मान लेने से मनोविज्ञान की विषयवस्तु अस्पष्ट बनी रहती है। अतः मनोविज्ञान की परिभाषा में पुनः परिवर्तन हुआ।

तृतीय अवस्था - 1979 ई0 में जब विलियम वुण्ट ने जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय (अब इसका नाम कार्लमार्क्स विश्व विद्यालय कर दिया गया है) में मनोविज्ञान की सबसे पहली प्रयोगशाला स्थापित की। उस समय से मनोविज्ञान का सम्बन्ध दर्शनशास्त्र से धीरे-धीरे कम होता गया और इसका स्वरुप प्रयोगात्मक अधिक होता गया। फलतः मनोविज्ञान के विकास के इस तीसरे स्तर पर आत्मा तथा मन के स्थान पर चेतना का विज्ञान अथवा चेतन व्यवहार का अध्ययन करने वाले विषय के रुप में परिभाषित करने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए।

इन संदर्भ में सर्वप्रथम विलियम जेम्स ने 1890 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' में मनोविज्ञान को 'चेतना की अवस्था' का अपने उसी रुप में वर्णन और व्याख्या करने वाले विषय के रुप में परिभाषित किया।

इस परिभाषा को मानने वाले वैज्ञानिकों को संरचनावादी कहा गया जिसमें विलियम बुण्ट तथा टिचनर प्रमुख थे। इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान चेतन अनुभूति या तात्कालिक अनुभूति के अध्ययन का विज्ञान है। चेतन अनुभूति या तात्कालिक अनुभूति का अर्थ यहां संवेदना, कल्पना, प्रतिमा, भाव आदि मानसिक क्रियाओं से है लेकिन यह परिभाषा भी अपने निहित दोषों के कारण अधिक दिन तक नहीं चल सकी। प्रमुख रुप से इसे निम्न प्रकार की आलोचना का शिकार होना पड़ा।

1. इसमें व्यवहार के केवल एक ही पक्ष, चेतन व्यवहार को अध्ययन का विषय बनया गया। अचेतन तथा अर्धचेतन व्यवहार की इसमें पूर्णतया उपेक्षा की गई है। आगे चलकर फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने यह बताया कि चेतन व्यवहार तो हमारे सम्पूर्ण व्यवहार का केवल 1/10 भाग ही होता है और इस तरह अगर हम मनोविज्ञान को मात्र चेतन व्यवहार के अध्ययन करने वाला विषय मान ले तो इससे हमारे व्यवहार के बहुत ही सीमित पक्ष का अध्ययन हो पाएगा।
2. चेतन अवस्थाओं के अध्ययन में केवल मानव व्यवहार के अध्ययन पर ही इस परिभाषा से जुडे हुए मनोवैज्ञानिको द्वारा जोर दिया गया। फलस्वरुप जीव जन्तु तथा अन्य सजीव प्राणियों के व्यवहार के अध्ययन को इस परिभाषा में कोई स्थान नहीं मिला।
3. तीसरा आलोचना का कारण था व्यवहार के अध्ययन में लाई जाने वाली अन्तःदर्शन विधि अर्थात अपने अन्दर झाँककर अपने ही अनुभवों का अध्ययन करना, जो कि न तो ठीक तरह से सम्भव है और न ही इसे किसी भी तरह वस्तुनिष्ट, वैध तथा विश्वसनीय ही बनाया जा सकता है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों का कोई किसी भी तरह वर्णन या व्याख्या कर सकता है, वह अपने दोषों को छुपाकर गुणो को सामने ला सकता है।

इस तरह आप देख सकते हैं कि अनेक न्यूनताओं के कारण इस परिभाषा को भी त्यागना पड़ा।

चौथी अवस्था - संरचनावादियों की परिभाषा में त्रुटि पाये जाने पर मनोविज्ञान की दूसरी परिभाषा दी गई, जिसमें जे0बी0 वाटसन का नाम प्रमुख था। इन लोगों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का एक वस्तुपरक विज्ञान माना है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि इसमें चेतन अनुभूति को मनोविज्ञान की विषयवस्तु से अलग कर दिया गया तथा उसके स्थान पर व्यवहार को रखा जाय। जिसका स्वरुप अधिक वस्तुनिष्ट या इस परिभाषा से मनोविज्ञान एक वस्तुपरक विज्ञान माना गया, क्योंकि इसमें व्यवहार से सम्बद्व तीन पक्षों क्या, क्यों, और कैसे का अध्ययन किया जाता है। इस परिभाषा का प्रमुख दोष यह बताया गया है मात्र व्यवहार का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता। वास्तव में किसी भी व्यवहार की व्याख्या हम अपनी अनुभूतियों के आधार पर ही करते हैं और तब जाकर उसका सही अर्थ निकलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ''मनोविज्ञान व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।'' परिभाषा से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान में सिर्फ व्यवहार का ही अध्ययन नही किया जाता, बल्कि उन मानसिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है जिन्हें बाहर से देखा नही जा सकता है और जिनके बारे में व्यवहारों के आधार पर सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान की यह व्यवहारवादी परिभाषा पहली परिभाषा की तुलना में अधिक तथा संतोषजनक समझी गई। इसके पीछे इसमें निम्नलिखित गुणो का पाया जाना है-

- इस परिभाषा का पहला गुण यह है कि अनुभूति की अपेक्षा व्यवहार का स्वरुप अधिक स्पष्ट है। आत्मनिष्ट होने के कारण अनुभूति को बाह्‌य रूप न तो देखा और न तो समझा जा सकता है। इसके विपरीत, व्यवहार जैसे चलना, सोना, रोना, दौड़ना इत्यादि बाह्‌य होने के कारण बाहर से देखे तथा समझे जा सकते हैं।
- व्यवहार के रुप में चेतन के साथ-साथ अचेतन अनुभूतियों का भी अध्ययन हो जाता है। कारण यह है कि व्यवहार के द्वारा चेतन तथा अचेतन सभी प्रकार की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है।
- चेतन अनुभूति के आधार पर बच्चे, पशु और पागल का अध्ययन सम्भव नहीं है परन्तु व्यवहार के आधार पर इन सभी का अध्ययन किया जा सकता है।

उपयुक्त गुणों के होते हुए भी मनोवैज्ञानिकों ने इस परिभाषा की आलोचना की इसमें निम्नलिखित दोष पाये गए-

- पहला दोष यह कि कभी-कभी एक व्यवहार के रूप में कई चेतन-अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती है। अतएव, मात्र किसी व्यवहार को देखकर यह कहना कठिन है कि वास्तव में उसका सम्बन्ध किस मानसिक अनुभूति से है। जैसे किसी की आंखें में आंसू मात्र देखकर हम नहीं कहा सकते कि वह खुशी के है या गम के।
- परन्तु इस परिभाषा में यह दोष होते हुए भी आज भी यह परिभाषा मान्य है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में मनोविज्ञान का अर्थ एक ऐसे विज्ञान से लिया जाता है जिसमें व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं दोनों का अध्ययन किया जाता है। उपरोक्त में 'व्यवहार' शब्द का प्रयोग कई बार किया गया है। आइए जानने का प्रयास करे कि व्यवहार का वास्तविक अर्थ क्या है।

1.3.1 व्यवहार शब्द का अर्थ

मनोविज्ञान में 'व्यवहार' शब्द अत्यंत ही विस्तृत अर्थों में प्रयोग किया जाता है-

1. एडवर्थ (1945) के अनुसार,'' जीवन की कोई भी अभिव्यक्ति एक क्रिया है।'' और ऐसे सभी क्रियाओं के सम्मिलित रुप को व्यवहार की संज्ञा दी जा सकती है। इसलिए व्यवहार शब्द में केवल चलना, तैरना आदि इन्द्रियजनित क्रियाऐं ही नही बल्कि सोचना, विचारना आदि मस्तिष्क सम्बंधी प्रसन्न होना इत्यादि भाव अनुभूति सम्बन्धी क्रियाएँ भी शामिल है।
2. मानव मस्तिष्क का चेतन ही नही बल्कि अचेतन और अर्धचेतन रुप में भी मानव व्यवहार को प्रभावित करता है। अतः व्यवहार शब्द का क्षेत्र प्रत्यक्ष रुप में दिखाई देने वाले ऊपरी

व्यवहार तक ही सीमित नही है अपितु आंतरिक अनुभवो और मानसिक प्रक्रियाओं से युक्त अप्रत्यक्ष एवं आंतरिक व्यवहार इसमें शामिल है।

3. मनोविज्ञान में समस्त जीवधारियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। मानव समाज में सामान्य व्यक्तियों का ही नहीं बल्कि असमान्य व्यक्ति तथा बच्चे, युवकों तथा प्रौढ़ों, सभी के व्यवहार 'व्यवहार' शब्द में सम्मिलित है

अब आप ऊपर की विषय वस्तु का पढ़ने के बाद यह जान गए होंगे की 'व्यवहार' शब्द अपने आप में बहुत व्यापक है। इसमें जीवधारियों के सभी प्रकार की जीवन सम्बन्धी क्रियाऐं शामिल है।

अभ्यास प्रश्न

1. मनोविज्ञान का विकास ....से हुआ है।
2. मनोविज्ञान (Psychology)शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के दो शब्दों ________ तथा__________ से हुई है।
3. वर्तमान में मनोविज्ञान को ....का विज्ञान माना जाता है।
4. 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?
5. शिक्षा व्यक्ति को एक सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने में योगदान देती हैं ।(सत्य/असत्य)
6. मनोविज्ञान एक सार्थक विज्ञान है। (सत्य/असत्य)
7. मनोविज्ञान क्या है?

1.4 शिक्षा तथा मनोविज्ञान

किसी भी विषय अथवा प्रकरण का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व उस विषय अथवा प्रकरण के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेना अत्यंत आवश्यक तथा उपयोगी होता है। जैसा कि नाम से ही स्वतः स्पष्ट है कि 'शिक्षा मनोविज्ञान' वास्तव में एक शब्द युग्म है जो 'शिक्षा' तथा 'मनोविज्ञान' नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान इन दोनों ही शब्दों का अलग-अलग अर्थ समझने के उपरान्त ही शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को समझना सरल हो सकेगा। आगे के पृष्ठों पर शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अर्थो को अलग-अलग स्पष्ट करने के उपरान्त शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ, को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

1.4.1 शिक्षा का अर्थ

किसी भी शब्द के अर्थ को समझने का सबसे सहज तथा स्वाभाविक ढंग उस शब्द के शाब्दिक अर्थ को जानना है। शाब्दिक अर्थ से शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान होने के साथ-साथ उसका अर्थ भी कुछ सीमा तक स्पष्ट हो जाता है। अतः शिक्षा का अर्थ समझने के लिए पहले इसके शाब्दिक अर्थ

को जानना उचित ही होगा। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना । अतः 'शिक्षा' शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ-सीखने व सिखाने की क्रिया। 'शिक्षा' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'ऐजुकेटम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। एजुकेशन शब्द लैटिन भाषा के 'ऐजुकेटम' शब्द से विकसित हुआ है तथा 'ऐजुकेटम' शब्द इसी भाषा के 'ए' तथा 'ड्यूको' शब्दों से मिलकर बना है। 'ए' का अर्थ है अंदर से और ड्यूको का अर्थ है आगे बढ़ाना। प्रश्न यह उठता है कि यहाँ पर अंदर से आगे बढ़ाने से क्या तात्पर्य है। वास्तव में प्रत्येक बालक के अंदर जन्म के समय कुछ जन्मजात शक्तियाँ बीज रूप में विद्यमान रहती है। उचित वातावरण के सम्पर्क में आने पर ये शक्तियाँ विकसित हो जाती है। जबकि उचित वातावरण के अभाव में ये शक्तियाँ या तो पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाती है अथवा अवांछित रूप ले लेती हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों को अंदर से बाहर की ओर उचित दिशा में विकसित करने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि 'ऐजुकेटम' शब्द का प्रयोग व्यक्ति या बालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करने अथवा विकसित करने की क्रिया के लिए किया जाता है।

लैटिन के 'ऐजुकेयर' तथा 'ऐजुशियर' शब्दों को भी 'एजुकेशन' शब्द के मूल रूप में स्वीकार किया जाता है। इन दोनों शब्दों का अर्थ भी आगे बढ़ना, बाहर निकालना अथवा विकसित करना है। स्पष्ट है कि शिक्षा तथा इसके अंग्रेज़ी पर्यायवाची 'ऐजुकेशन' दोनों ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ वास्तव में मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली, विकसित करने वाली अथवा इनका बाह्य प्रस्फुटन करने वाली प्रक्रिया को इंगित करता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिक्षा का अर्थ जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने की प्रक्रिया से है। शिक्षा शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में प्रकट किए गए विचारों का अवलोकन एवं विश्लेषण करना आवश्यक होगा। शिक्षा शब्द की कुछ परिभाषाएं अग्रांकित है।

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य को जन्म से पूर्ण स्वीकार करते थे तथा उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उसकी पूर्णता को प्रस्फुटित करना था। उनके शब्दों में-

''मनुष्य में पूर्वनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।''

महात्मा गाँधी ने शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया के रुप में स्पष्ट किया। उनके शब्दों में-

''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोतम विकास से है।''

हरबर्ट स्पेन्सर ने शिक्षा के द्वारा जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से तालमेल बैठाने की क्षमता बढ़ाने पर बल देते हुए कहा कि-

''शिक्षा से तात्पर्य अन्तर्निहित शक्तियों तथा बाह्य जगत के मध्य समन्वय स्थापित करने से है।''

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक जॉन डीवी ने शिक्षा को व्यक्ति की क्षमताओं को विकास करने एवं वातावरण के साथ समायोजित करने योग्य बनाने वाली प्रक्रिया के रूप मे स्वीकार किया। **डीवी** के शब्दों में-

''शिक्षा व्यक्ति की उन समस्त क्षमताओं का विकास करना है जो उसे अपने वातावरण को नियंत्रित करने तथा सम्भावनाओं को पूरा करने योग्य बनाएंगी।''

जर्मन शिक्षाशास्त्री **पेस्तालॉजी** ने जन्मजात शक्तियों के विकास के रूप में शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि -

''शिक्षा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समरस तथा प्रगतिशील विकास है।''

उपरोक्त परिभाषाओं को पढ़ने के बाद आप स्पष्ट रूप से कह सकते है कि शिक्षा एक सोद्देश्यपूर्ण सतत्, गतिशील तथा सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात एवं अन्तर्निहित शक्तियों का विकास किया जाता है और जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति अपने बाह्य वातावरण से सामन्जस्य स्थापित करने में सफल होता है। शिक्षा व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए समान रुप से आवश्यक है। शिक्षा को हम अत्यन्त सरल रुप में व्यवहार का परिमार्जन भी कह सकते है परिमार्जन शब्द सदैव ही सकारात्मक अथवा वांछनीय दिशा की ओर होने का संकेत करता है।

मनोवज्ञान: अनुभूति तथा व्यवहार का विज्ञान

अब तक आप यह जान चुके है कि मनोविज्ञान की अनुभूति सम्बन्धी तथा व्यवहार सम्बंधी दोनों प्रकार की परिभाषाएँ आंशिक रूप में ही सही हैं। कारण यह कि न तो केवल अनुभूति के अध्ययन से और न व्यवहार के अध्ययन से मानसिक स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी हो पाती है। एक ही मानसिक स्थिति का आंतरिक रूप अनुभूति है और उसका बाह्य रूप व्यवहार है। जैसे- सुख की मानसिक स्थिति का वाह्य रूप हँसना है, जिसे व्यवहार कहते है और उसका आंतरिक रूप खुशी महसूस करना है। जिसे अनुभूति कहते है। इस प्रकार अनुभूति तथा व्यवहार में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अतः किसी मानसिक स्थिति की सही जानकारी के लिए इसके दोनों पहलुओं अर्थात् अनुभूति एवं व्यवहार का साथ-साथ अध्ययन आवश्यक हैं इसीलिए, आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत है कि मनोविज्ञान वह समर्थक विज्ञान है जो व्यक्ति की अनुभूति एवं व्यवहार दोनो का अध्ययन करता है। इस अध्ययन का अभिप्राय वातावरण से सम्बद्ध व्यक्ति के अभियोजन को

समझना है। इस दृष्टिकोण से मनोविज्ञान की परिभाषा दी जा सकती है कि मनोविज्ञान जीव का वातावरण से सम्बन्धित अनुभूति एवं व्यवहार का अध्ययन करनेवाला समर्थक विज्ञान है।

यद्यपि मनोविज्ञान की यह परिभाषा अपने-आप में समग्र तथा संतोषप्रद है, फिर भी एडवर्थ आदि आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इसे और भी अधिक समग्र तथा संतुलित बनाने की चेष्टा की है। उन्होंने अनुभूति तथा व्यवहार के लिए 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है। दौड़ना, हँसना, रोना आदि शारीरिक क्रियाओं को व्यवहार कहते है तथा दुखः, सुख, दर्द आदि मानसिक स्थितियों या क्रियाओं को अनुभूति कहते है। अतः अनुभूति तथा व्यवहार की जगह 'क्रिया' का उपयोग होना चाहिए। वास्तव में इन दोनों विचारों में कोई मौलिक भेद नहीं है। हम चाहे अनुभूति तथा व्यवहार कहें या क्रिया कहे, वस्तुस्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता है।

मन आदि मनोवैज्ञानिकों ने अभियोजनशीलता शब्द पर काफी जोर दिया है और बताया है कि मनोविज्ञान प्राणी की 'क्रिया' अर्थात् अनुभूति एवं व्यवहार का अध्ययन अभियोजनशीलता की दृष्टि से करता है।

उपर्युक्त सारी बातों को ध्यान में रखते हुए यहाँ हम मनोविज्ञान की आधुनिक तथा संतोषप्रद परिभाषा का विशलेषणात्मक अध्ययन करेगे।

1.4.2 मनोविज्ञान की आधुनिक परिभाषा

मनोविज्ञान की प्रचलित परिभाषाओं में सबसे अधिक संतोषजनक परिभाषा यह है कि ''मनोविज्ञान वह समर्थक विज्ञान है जो प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन उसके वातावरण के प्रति उसके अभियोजन की दृष्टि से करता है।''

इस परिभाषा की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए इसके विविध अंगो की अलग-अलग व्याख्या अपेक्षित है।

1. **समर्थक विज्ञान-** मनोविज्ञान एक समर्थक विज्ञान है। मनोविज्ञान विज्ञान इसलिए है कि इसमें विज्ञान होने के सभी लक्षण पाये जाते हैं। विज्ञान के तीन मुख्य लक्षण हैं। (1) आँकड़ों का संग्रह करना, (2) उनका मात्रात्मक अध्ययन करना तथा (3) सामान्य नियमों की स्थापना करना। दूसरे विज्ञानों की तरह मनोविज्ञान भी प्रयोगात्मक विधि के द्वारा अपनी विषय-वस्तु का अध्ययन करके, आँकड़ों का संग्रह करता है, उनका मात्रात्मक विश्लेषण करता है और इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष के द्वारा सामान्य नियमों को स्थापित करता है। इस प्रकार प्रमाणित होता है कि मनोविज्ञान एक विज्ञान है।

   अब देखना है कि मनोविज्ञान किस प्रकार का विज्ञान है। विज्ञान के दो प्रकार के है समर्थक तथा आदर्श निर्धारक। समर्थक विज्ञान अपनी विषय-वस्तु का निष्पक्ष अध्ययन करता है।

जो विषय-वस्तु या घटना जिस रुप में होती है, उसका अध्ययन इसी रुप में करता है। इसके विपरीत, आदर्श निर्धारक विज्ञान किसी विषय-वस्तु या घटना का अध्ययन उस रुप में नहीं करता जिस रुप में वह है, बल्कि उस रुप में करता है जिस रूप में उसे होना चाहिए। स्पष्टतः आदर्श निर्धारक विज्ञान का सम्बन्ध 'चाहिए' से है और समर्थक विज्ञान का सम्बन्ध 'है' से है। चूँकि मनोविज्ञान अपनी अध्ययन ठीक उसी रुप में करता है जिस रूप में वह होती है, इसलिए यह एक समर्थन विज्ञान है।

2. **क्रिया** - यहाँ क्रिया का तात्पर्य शारीरिक तथा मानसिक अभिव्यक्ति से है। मानसिक अभिव्यक्ति को अनुभूति तथा शारीरिक अभिव्यक्ति को व्यवहार कहते हैं। अनुभूति के तीन प्रकार है। 1) चेतन अनुभूति 2) अवचेतन अनुभूति तथा 3) अचेतन अनुभूति, चेतन अनुभूति का तात्पर्य उन मानसिक स्थितियों से है जिनका तात्कालिक ज्ञान व्यक्ति को रहता है।

   अवचेतन अनुभूति का अर्थ उस अनुभव से है जिसका तात्कालिक ज्ञान तो व्यक्ति को नहीं रहता परन्तु साधारण प्रयास से उसका ज्ञान हो पाता है।

   अचेतन अनुभूति उसे कहते हैं जिसका न तो तात्कालिक ज्ञान ही रहता है और न ही साधारण प्रयास से उसका ज्ञान हो पाता है।

   शारीरिक अभिव्यक्ति या शारीरिक क्रिया को व्यवहार कहते हैं। उसे खुली नजर या यंत्रों के द्वारा जाना जा सकता है। जिन क्रियाओं को खुली नजरों से देखा जा सकता है उन्हें वाह्य व्यवहार कहते हैं। जैसे दौड़ना, हँसना रोना आदि। दूसरी ओर, जिन क्रियाओं का ज्ञान यंत्रों के द्वारा होता है उन्हें आंतरिक व्यवहार कहते हैं जैसे पाचन-क्रिया इत्यादि।

   इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोविज्ञान सभी क्रियाओं का अध्ययन करता है -चाहे क्रिया मानसिक हो या शारीरिक, आंतरिक हो या बाह्य, चेतन हो या अचेतन तथा व्यक्तिगत हो या सामूहिक।

3. **प्राणी** - प्राणी का अर्थ सभी प्रकार के जीव जैसे- पशु, पक्षी, मनुष्य आदि से है। सबसे छोटा जीव हमारी पृथ्वी पर 'अमीबा' है और सबसे बड़ा या विकसित प्राणी मनुष्य है। अतः अमीबा से लेकर मनुष्य तक जितने भी प्राणी है उन सबके व्यवहार तथा अनुभूति यानी क्रिया का अध्ययन मनोविज्ञान के अन्तर्गत होता है।
4. **वातावरण-** वातावरण का तात्पर्य व्यक्ति के आस-पास की उन सभी वस्तुओं से है जिनसे वह प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में, उत्तेजनाओं के समूह को वातावरण कहते हैं। इस प्रकार सभी प्राणी सदा किसी न किसी वातावरण में रहते हैं। वातावरण का प्रभाव निरन्तर

उसकी क्रिया पर पड़ता रहता है। इस प्रकार मनोविज्ञान किसी प्राणी की क्रिया का अध्ययन वातावरण के संदर्भ में ही करता है।

5. **समायोजन** - मनोविज्ञान का प्रधान उद्देश्य प्राणी के अभियोजन (समायोजन) को समझना तथा उसे अभियोजन होने से सहायता करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु मनोविज्ञान प्राणी की क्रिया अर्थात् अनुभूति एवं व्यवहार का अध्ययन करता है। प्राणी की विभिन्न क्रियाएँ किसी न किसी वातावरण के सम्पर्क में ही होती हैं। गत्यात्मक स्वरूप होने के कारण वातावरण में परिवर्तन होते हैं फलतः प्राणी अपने अन्दर परिवर्तन लाकर वातावरण के अनुकूल क्रिया करने लगता है। इसे ही अभियोजन कहते हैं। प्राणी का अस्तित्व इसी अभियोजन पर निर्भर करता है। जिस अंश तक वह अपने आपको अभियोजित या समायोजित कर पता है, उसी अंश तक उसका अस्तित्व कायम रहता है तथा जीवन सफल हो पाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोविज्ञान का प्रधान उद्देश्य वातावरण के सम्पर्क में प्राणी का अभियोजन का अध्ययन कर उसे अभियोजन होने में सहायता करना है। इसी आधार पर मनोविज्ञान को प्राणी की समायोजनशीलता अथवा अभियोजनशीलता का विज्ञान कहा गया है।

शिक्षा मनोविज्ञान क्या है?

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को समझने के लिए कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा।

जे0ए0 स्टीफन के अनुसार''शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक अभिवृद्धि का व्यवस्थित अध्ययन है।''

डब्लू0 सी0 काल्सनिक के अनुसार ''शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और निष्कर्षो का शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयोग है।''

स्किनर के अनुसार''शिक्षा मनोविज्ञान उन अनुसन्धानों को शैक्षिक परिस्थितियों में प्रयुक्त करता है जो विशेषतया शैक्षिक परिस्थिति में मानव अनुभवों और व्यवहार से सम्बद्ध है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं में शैक्षिक विकास के अध्ययन को प्रमुखता दी गई है। शैक्षिक विकास में सर्वागीण विकास शामिल है तथा अधिगम एवं उसका मूल्यांकन भी निहित है। मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्तों का शिक्षा में प्रयोग करना ही शिक्षा-मनोविज्ञान है। स्किनर ने शैक्षिक परिस्थितियों पर बल दिया है।

शिक्षा मनोविज्ञान को विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास आपकी पाठ्यपुस्तक की अगली इकाई में किया गया है। परन्तु यहाँ पर आपको यह जानना आवश्यक है। कि शिक्षा-मनोविज्ञान में शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा का 'सीखना' एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अव्यय है।

सीखना किस प्रकार, किन दशाओ में, किन शिक्षण विधियों के माध्यम से, किस गति से एवं किस सीमा तक होता है, इन सब बातों की जानकारी शिक्षा मनोविज्ञान के माध्यम से प्राप्त होती है।

अभ्यास प्रश्न

8. 'ऐजुकेशन का शाब्दिक अर्थ है-

   अ) माता-पिता द्वारा प्रदत्त शिक्षा ब) घरेलू शिक्षा

   स) विद्यालयी शिक्षा द) आन्तरिक शक्ति का विकास

9. मनोविज्ञान की विषयवस्तु निम्नलिखित में से क्या है।

   1) मनस 2) आत्मा 3) व्यवहार 4) मनुष्य

10. ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम विकास से है।'' किसने कहा है?
11. मनोविज्ञान का प्रधान उद्देश्य प्राणी का ---- है।

1.5 मनोविज्ञान तथा इसका शिक्षा के साथ सम्बन्ध

शिक्षा तथा मनोविज्ञान ज्ञान की दो स्पष्ट शाखाऐं हैं परन्तु इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है। बच्चे को उसकी रुचियों, रुझानों, सम्भावनाओं तथा व्यक्तित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है। आज शिक्षा तथा मनोविज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं। ड्रीवर का मत है कि ''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक तत्व है''। इसकी सहायता के बिना शिक्षा की गुत्थी सुलझाई नहीं जा सकती। शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों का सम्बन्ध व्यवहार के साथ है। मनोविज्ञान की खोजों की शिक्षा के दूसरे पहलुओं पर गहरी छाप है। अब आप निम्नलिखित से मनोविज्ञान तथा इसका शिक्षा से सम्बन्ध को जानेगे।

1. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा के उद्देश्य-** शिक्षा मनोविज्ञान ही अध्यापक को इस योग्य बनाने में सहायता देता है कि वह शिक्षा से सम्बन्धित उद्देश्य तथा लक्ष्य प्राप्त करे। यह उसकी शिक्षा की गुणवत्ता के विकास में सहायता करता है और उसे बच्चे के विचारों, रुझानों, व्यक्तित्व तथा बुद्धि को समझने की योग्यता तथा सूझ-बूझ देता है। यह योग्यता तथा सूझ-बूझ अध्यापक को इस योग्य बनाती है कि वह वांछित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पढ़ाने के साधनों में परिवर्तन ला सके।

2. **मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम** - मनोविज्ञान पाठ्य-सहगामी क्रियाओं जैसे खेल, सैर, प्रदर्शनी, नाटक, मनोरंजन, कार्यक्रम, फिल्मी-शो, वाद-विवाद, उच्चारण प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन, ग्रुप विचार-विनिमय तथा स्कूल में दूसरी शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा सांस्कृति गतिविधियों इत्यादि पर जोर देकर नए दृष्टिकोण प्रदान करता है। आज पाठ्य-सहगामी क्रियाओं को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है क्योंकि ये संवेगों के सुधारने तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का महान माध्यम है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि पाठ्यक्रम बच्चों के लिए है, बच्चे पाठ्यक्रम के लिए नहीं हैं। स्कूल में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की क्रिया कलाप होनी चाहियें।
3. **मनोविज्ञान तथा पाठ्य-पुस्तकें** - मनोविज्ञान अध्यापकों को बताता है कि पुस्तकें रोचक तथा आकर्षक हों तथा उनमें बच्चों के मानसिक स्तर के अनुसार काफी चित्र हों। इस प्रकार विद्यार्थियों को सीखने में बहुत सहायता मिल सकती है।
4. **मनोविज्ञान और समय सारणी** - मनोविज्ञान ने ही हमें बताया है कि समय-सारणी बनाते समय विषय के महत्व, विषय की कठिनाई, विद्याथियों की योग्यता, रुचि, थकान, विश्राम, व्यक्तिगत भेदों तथा मौसम का ध्यान रखना चाहिए।
5. **मनोविज्ञान तथा शिक्षण विधियां** - मनोविज्ञान इस बात पर जोर देता है कि विद्यार्थियों को पढ़ाते समय उनके व्यवहार, रूचियों, सम्भावनाओं तथा रूझानों का ध्यान रखना चाहिए। पढ़ाई का प्रबन्ध उचित ढंग से जीवन के साथ सम्बन्ध बताकर सीखने और करने का अनुसरण करके तथा श्रव्य दृश्य सहायक साधनों की सहायता से करना चाहिए।
   i. **मनोविज्ञान तथा श्रव्य-दृश्य साधन**- यह मनोविज्ञान का योगदान है कि अध्यापक श्रेणी में पढ़ाते समय विभिन्न श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि श्रव्य-दृश्य साधन सीखने को आसान, रोचक तथा प्रभावशाली बनाते हैं।
   ii. **मनोविज्ञान एवं नवीनीकरण**- मनोविज्ञान ने शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया में नये विचार देकर महत्वपूर्ण योगदान दिया है। (1) क्रिया-केन्द्रित शिक्षण (2) विवेचन विधि (3) खेल विधि (4) अभिक्रमित शिक्षण कुछ महत्वपूर्ण नवीन विधियां हैं।
6. **मनोविज्ञान तथा अनुशासन**- मनोविज्ञान अध्यापक की अनुशासन की समस्याओं को उत्तम विधि से हल करने में सहायता देता है। इसके द्वारा दमन, निराशा, चिन्ता तथा व्यग्रता दूर होते हैं और बच्चा कुसमायोजन से बच जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान हमें (1) समस्या (2) पिछड़े (3) कदाचारी (4) विकलांग तथा 5) मेधावी बच्चों के साथ निपटने की विधियां बताता है। शिक्षा मनोविज्ञान बताता है कि अनुशासन आत्म-अनुशासन, गतिशील, धनात्मक तथा रचनात्मक होना चाहिए और यह लक्ष्यपूर्ण क्रिया द्वारा होना

चाहिए। हर्ष तथा शोक, पुरस्कार तथा दण्ड और प्रशंसा तथा दोष का प्रयोग न्यायसंगत होना चाहिए।

7. **मनोविज्ञान और अनुसंधान-** शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान हो रहे हैं। मनोविज्ञान की बहुत सी परीक्षाओं का इन अनुसंधानों में प्रयोग किया जा रहा है। नये-नये अनुसंधान अध्यापक को व्यवसाय के प्रति निष्ठावान बनाते हैं तथा उसको नवीनतम शिक्षण विधियों का परिचय कराते हैं।
8. **मनोविज्ञान एवं स्कूल प्रशासन**- स्कूल और कक्षा में प्रशासन की पुरानी निरंकुश विधि लोकतन्त्र विधि में परिवर्तित हो चुकी है। प्रशासक एवं अध्यापक सहयोगी, सहानुभूतिपूर्ण तथा लोकतंत्रवादी हैं। शिक्षा मनोविज्ञान ने प्रशासन की समस्याओं को पारस्परिक वाद-विवाद द्वारा हल करने में सहायता प्रदान की है। इसने अध्यापक के निरीक्षण के लिये वैज्ञानिक आधार दिया है।
9. **मनोविज्ञान एवं मूल्यांकन**- मनोविज्ञान ने मापन तथा मूल्यांकन की विधियों के विकास तथा प्रयोग में महत्वपूर्ण योग दिया है। इन विधियों के माध्यम से छात्र की योग्यताओं के सही-सही मापन एवं मूल्यांकन का प्रयत्न किया जाता है। मापन एवं मूल्यांकन की नवीन विधियों ने शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को कम कर दिया है। इससे छात्र को सही दिशा मिलती है और वह अपनी योग्यताओं का उचित विकास करता है।
10. **मनोविज्ञान तथा अध्यापक**- अध्यापक को शिक्षा मनोविज्ञान की धुरी कहा जाता है। शिक्षा की किसी भी विधि की सफलता अध्यापक पर आश्रित होती है। शिक्षा मनोविज्ञान बताता है कि अध्यापक का अपने विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार प्रेम पूर्ण तथा सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। उसको अपने कार्य तथा संतुलित भावात्मक जीवन में वास्तविक रुचि होनी चाहिए। उसे अपने शिष्यों के स्तर के अनुसार चलना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोविज्ञान ही अध्यापक की विद्यार्थियों, पढ़ाई की विधियों तथा पढ़ाई की परिस्थितियों को समझने में सहायता करता है।

डेविस के अनुसार - मनोविज्ञान ने शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से छात्रों की क्षमतायें तथा व्यक्तिगत भेद, ज्ञान, विकास तथा परिपक्वता को समझने में भी योग दिया है।

ऊपर दिये गये विचारों से हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि मनोविज्ञान शिक्षा की समस्याओं तथा परिस्थितियों में उचित ढंग से अपनी भूमिका अदा करता है और साथ ही साथ हमें शिक्षा सम्बन्धित समस्याओं को बहुत उचित, सर्वांगी, प्रभावशाली तथा एकीकृत ढंग से सुलझाने में सहायता देता है। सच तो यह है कि मनोविज्ञान ने शिक्षा को नई दिशा दी है और इसमें एक क्रान्ति ला दी है। इसी क्रान्ति के फलस्वरुप शिक्षण वैज्ञानिक हो गया है। शिक्षा मनोविज्ञान दिन-प्रतिदिन उन्नति कर रहा है और इसके साथ-साथ इसका महत्व भी बढ़ रहा है।

अभ्यास प्रश्न

12. ‘‘शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक तत्व है’’ यह किसने कहा है?
13. मनोविज्ञान का शिक्षा पर कोई तीन प्रभाव लिखें

1.6 शिक्षा मनोविज्ञान तथा सामान्य मनोविज्ञान में अन्तर

जन साधारण के लिए शिक्षा मनोविज्ञान साधारण मनोविज्ञान के नियमों तथा सिद्धान्तों को शिक्षा पर लागू करना है। परन्तु यह संकीर्ण धारणा हैं, शिक्षा मनोविज्ञान तथा साधारण मनोविज्ञान में संक्षिप्त रुप से निम्नलिखित अन्तर है -

- शिक्षा मनोविज्ञान बालक के शैक्षिक वातावरण सम्बन्धित क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है परन्तु सामान्य मनोविज्ञान बालक के साधारण वातावरण से सम्बन्धित क्रियाओं की चर्चा करता है।
- शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध बच्चे के स्वभाव में परिवर्तनों के साथ है परन्तु समाज मनोविज्ञान का बच्चे के स्वभाव के अध्ययन साथ है।
- शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के बनाये नियमों के उपादेयता से सम्बन्धित है परन्तु सामान्य मनोविज्ञान नियमों का संग्रह है।
- शिक्षा मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को शिक्षा पर लागू करना ही नही बल्कि यह प्रयोगात्मकता के साथ सामान्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को लागू करना है, परन्तु सामान्य मनोविज्ञान साधारण नियमों तथा सिद्धान्तों मात्र से सम्बन्धित है।
- शिक्षा मनोविज्ञान मनुष्य मात्र का अध्ययन करता है परन्तु सामान्य मनोविज्ञान मनुष्यों तथा पशुओं का भी अध्ययन करता है।
- शिक्षा मनोविज्ञान में सीखने की विधि पर बल दिया जाता है परन्तु सामान्य मनोविज्ञान में व्यवहार के दूसरे पहलुओं पर भी जोर दिया जाता है।
- मनोविज्ञान एक विज्ञान है, शिक्षा मनोविज्ञान एक व्यवहृत विज्ञान है। मनोविज्ञान एक स्वतंन्त्र अनुशासन है, शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ही एक शाखा है।
- मनोविज्ञान के द्वारा मनुष्य एवं पशु-पक्षियों, सभी के व्यवहारों को समझा जाता है, इन सभी के व्यवहारों को नियन्त्रित करने की विधियों की खोज की जाती है और सभी के व्यवहारों के बारे में भविष्यवाणी की जाती है। शिक्षा मनोविज्ञान में केवल मनुष्यों के व्यवहार

कोसमझा जाता है, उन्ही के व्यवहार को नियन्त्रित करने की विधियों की खोज की जाती है और केवल उन्ही के व्यवहार के विषय में भविष्यवाणी की जाती है।

मनोविज्ञान में मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों, दोनों की विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार सम्बन्धी समस्त समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और उनके समाधान खोजे जाते हैं शिक्षा मनोविज्ञान में केवल मनुष्यों की और वही भी केवल शैक्षिक परिस्थितियों में व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और केवल उन्ही के समाधान खोजे जाते हैं।

शिक्षा मनोविज्ञान तथा सामान्य मनोविज्ञान के अन्तरों को अध्ययन करने के उपरान्त हम निष्कर्षतः यह स्पष्ट रुप से कह सकते हैं कि इन दोनों के व्यवहारिकता, वातावरण, प्रकृति तथा उपादेयता में काफी अन्तर है।

1.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके है कि मनोविज्ञान की जननी दर्शनशास्त्र है उस समय के मनोविज्ञान से आज के मनोविज्ञान ने एक लम्बी यात्रा तय की है। अपने इस यात्रा या विकास में इसके अर्थ भी बदलते चले गए - इसे आत्मा का अध्ययन करने वाला, मन का अध्ययन करने वाला, चेतना तथा व्यवहार का अध्ययन करने वाले विषय के रुप में परिभाषित किया जाता रहा। वर्तमान रुप में इसे व्यवहार के व्यापक रुप के अध्ययन के रुप में परिभाषित किया जाता है।

- शिक्षा व्यक्तिकरण और सामाजीकरण की वह प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास पर बल डाला जाता है।
- मनोविज्ञान व्यक्ति की सभी क्रियाओं का अध्ययन करके उसका उसके वातावरण के साथ समायोजन करने में सहायता करता है।
- आपने मनोविज्ञान के शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न योगदानों को जाना।
- शिक्षा मनोविज्ञान और सामान्य मनोविज्ञान में अन्तरों को जाना।

1.8 शब्दावली

- **चेतन** -मस्तिष्क का वह भाग, जिसमें होने वाली क्रियाओं की जानाकरी हमें होती है।
- **अवचेतन** - जागृत मस्तिष्क से परे मस्तिष्क का हिस्सा अवचेतन मन होता है। हमें इसकी जानकारी नहीं होती। इसका अनुभव कम ही होता है।
- **वस्तुनिष्ट** - अगर किसी प्रयोग को कई व्यक्तियों द्वारा करने पर उसका परिणाम समान आये तो उसे वस्तुनिष्ट कहा जायेगा।

- **विश्वसनीयता-** अगर किसी परीक्षण को बार-बार दोहराने पर संगत परिणाम आते हैं, तो उसे विश्सनीयता कहते हैं।
- **वैधता -** अगर कोई वस्तु जिस उद्देश्य हेतु निर्मित होती है, उसको प्राप्त करने में सफल होती है तो उसे वैध कहते हैं।
- **अपव्यय -**छात्रों का प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही किसी भी कक्षा से स्कूल छोड़ना अपव्यय है।
- **अवरोधन -**अवरोधन से तात्पर्य, किसी बच्चे को एक निम्न कक्षा में एक से अधिक वर्ष तक रोका जाना है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दर्शनशास्त्र
2. Psyche, logos
3. व्यवहार
4. विलियम जेम्स
5. सत्य
6. सत्य
7. अद्ध मनोविज्ञान मानव अनुभव एवं व्यवहार का यथार्थ विधान है।
8. आन्तरिक शक्ति का विकास
9. व्यवहार
10. महात्मा गांधी
11. समायोजन
12. ड्रीवर ने
13. मनोविज्ञान का शिक्षा पर कोई तीन प्रभाव निम्न हैं-
    i. मनोविज्ञान शिक्षा के उद्देश्य बनाने तथा प्राप्त करने में सहायता करता है।
    ii. पाठ्यक्रम निर्माण में दृष्टिकोण प्रदान करता है।
    iii. अनुशासन की समस्याओं को उत्तम विधि से हल करने में सहायता करता है।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, डा0 एस0पी0, (2007) शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. मंगल, एस0के0, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेन्तीस हाल प्राइवेट लि0, नई दिल्ली।

3. सुलैमान, डा0 मुहम्मद (2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली।
4. सिंह, अरुण कुमार (2001), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।
5. वालिया, डा0 जे0एस0 (2008) अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, अहम पाल पब्लिशर्ज, जालन्धर।
6. माथुर, डा0 एस0एस0, (2007) शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
7. पाण्डेय, डा0 राम शक्ल, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
8. Chauhan, S.S. (1987) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi.

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? मनोविज्ञान की परिभाषा दीजिए।
2. मनोविज्ञान का अर्थ एवं विषय क्षेत्र को समझाइए।
3. मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है समझाइए।
4. मनोविज्ञान तथा शिक्षा के अर्थ को समझाते हुए दोनों के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।

इकाई – 2शिक्षा मनोविज्ञान : अर्थ तथा क्षेत्र , शैक्षिक मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय

Educational Psychology-meaning and scope. Major Schools of Educational Psychology

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शिक्षा मनोविज्ञान
 2.3.1 शिक्षा का अर्थ
 2.3.2 मनोविज्ञान का अर्थ
 2.3.3 शिक्षा मनोविज्ञान
 2.3.4 शिक्षा मनोविज्ञान का इतिहास
2.4 शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.5 शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र
2.6 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भग्रन्थ
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सीखने-सिखाने की सप्रयोजनयुक्त सतत् प्रक्रिया ही शिक्षा कहलाती है। स्पष्ट है कि शिक्षा स्वजात असहाय शिशु का सर्वांगीण विकास करके उसे जीवन के विभिन्न उत्तरदायित्वों का समुचित ढंग से निर्वाह करने योग्य बनाती है। शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भौतिक, चारित्रिक,

संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान करता है, जीवन को आनन्दमय बनाता है तथा जनकल्याण के कार्यो की ओर प्रवृत्त होता है।

व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी के विकास में शिक्षा अत्यनत महत्वपूर्ण एवं सार्थक भूमिका अदा करती है। निःसन्देह शिक्षा सतत् रूप से चलने वाली एक ऐसी गत्यात्मक प्रक्रिया है जो मानव को अपनी विविधतापूर्ण भूमिका प्रभावी ढंग से अदा करने में सक्षम बनाती है एवं राष्ट्र के विकास की सतत्ता को अच्छे ढंग से जारी रखा जा सकता है।

शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति लाने तथा शिक्षा को आधुनिक बाल-केन्द्रित तथा मानवीय प्रजातान्त्रिक स्वरूप देने का श्रेय मनोविज्ञान को ही दिया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रत्ययों के आगमन के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान प्रवृति का उद्भव हुआ तथा शिक्षा मनोविज्ञान नामक नये विषय का जन्म हुआ। प्रस्तुत खण्ड में शिक्षा मनोविज्ञान के सवरूप इतिहास महत्व क्षेत्र तथा विचारधाराएँ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शिक्षा - मनोविज्ञान के अर्थ को समझ तथा बता सकेगें।
- शिक्षा - मनोविज्ञान की उपयोगिता की व्याख्या कर सकेगें।
- शिक्षा - मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र से अवगत होगें ।
- शिक्षा - मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों को सूचीबद्ध कर सकेगें।
- विभिन्न सम्प्रदायों का विश्लेषण कर सकेगें।

2.3 शिक्षा मनोविज्ञान

2.3.1 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा एक ऐसा पद है जिसका उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। प्राचीन काल में गुरु एवं शिष्य या दूसरे शब्दों में यह कहा जाय कि ज्ञानी एवं अज्ञानी के बीच ज्ञान के लेन-देन की सुव्यवस्थित प्रक्रिया को शिक्षा कहा जाता था। इस काल में गुरु को अपने शिष्यों को कुछ आवश्यक तथ्यों को कण्ठस्थ कराना पड़ता था और यही उनकी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मान लिया जाता था। शिक्षक का कर्तव्य शिष्य को मात्र सूचना दे देना होता था। स्पष्टतः इस तरह की शिक्षा बाल-केंद्रित

न होकर ज्ञान-केंद्रित थी। शिष्य चाहे बालक हो या वयस्क उसे एक ही तरह की शिक्षा दी जाती थी। इसका परिणाम यह होता था कि बालक या शिष्य का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता था।

परंतु आधुनिक काल में शिक्षा का यह अर्थ पूर्णतः समाप्त हो गया है। आधुनिक काल में शिक्षा का अर्थ किसी तरह का उपदेश या सूचना देना नहीं होता है, बल्कि यह व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास के लिए एक निंरतर चलने वाली ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति में निहित क्षमताओं का सही-सही उपयोग विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि आजकल शिक्षा से तात्पर्य व्यक्ति में निहित क्षमताओं के विकास से होता है जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति समाजोपयोगी बनता है। इस अर्थ में क्रो और क्रो ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है, ''शिक्षा व्यक्तिकरण एवं समाजीकरण की वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति की व्यक्तिगत उन्नति तथा समाजोपयोगिता को बढ़ावा देती है।''

वैज्ञानिकों ने शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया माना, जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। सर्वांगीण विकास से तात्पर्य व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक या नैतिक विकास से है। शिक्षा व्यक्ति के लिए एक ऐसा अनुकूल वातावरण तैयार कर देती है जहाँ व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक क्षमताओं का निरंतर विकास बिना किसी तरह की रुकावट के होते रहता है। शिक्षा व्यक्ति में शारीरिक विकास कर उसे शारीरिक रूप से इस लायक बना देती है कि वह अपने वातावरण के साथ समुचित समायोजन कर सके। उसी तरह से शिक्षा व्यक्ति में मानसिक विकास करके व्यक्तियों को मानसिक रूप से स्वस्थ तथा नैतिक विकास करके नैतिक रुप से स्वस्थ बनाकर उसमें समाजीकरण की प्रक्रिया को शीर्ष पर पहुँचाती है।

उपरोक्त से आप स्पष्ट रुप से कह सकते है कि आधुनिक शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य प्राचीन काल के शिक्षा के अर्थ एवं उद्देश्य से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक समय में शिक्षा ज्ञान की लेन-देन की प्रक्रिया नहीं बल्कि बालकों या वयस्कों के चहुँमुखी विकास या सर्वांगीण विकास करने की तथा उनमें निहित विभित्र क्षमताओं को जगाने की एक प्रक्रिया है।

2.3.2 मनोविज्ञानकाअर्थ

मनोविज्ञान के अर्थ के विकास की यात्रा जो आप प्रथम ईकाई में पढ़ चुके है, यद्यपि मनोविज्ञान के अर्थ को काफी सीमा तक इंगित करती है। फिर भी, मनोविज्ञान के अर्थ को भलीभाँति समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा प्रस्तुत की गइ्र परिभाषाओं का अवलोकन तथा विश्लेषण करना उचित ही होगा। मनोविज्ञान की कुछ परिभाषाएं निम्नवत् प्रस्तुत हैं-

वारेन के अनुसार - ''मनोविज्ञान जीवधारी तथा वातावरण की पारस्परिक अन्तर्क्रिया से सम्बनिधत विज्ञान है।''

जिम्बार्डो के शब्दों में - ''मनोविज्ञान जीवधारीयों के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

हिल्गार्ड, एटकिनसन तथा एटकिन्सन के अनुसार - ''मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है।''

वाट्सन के अनुसार - ''मनोविज्ञान व्यवहार का धनात्मक विज्ञान है।''

वुडवर्थ के शब्दों में - ''मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान है।''

मैकडूगल के अनुसार - ''मनोविज्ञान आचरण एवं व्यवहार का यथार्थ विज्ञान है।''

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि मनोविज्ञान एक निश्चित विज्ञान है जो प्राणियों के शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव अथवा पशु-पक्षियों के विभिन्न वयवहारों के कारणों की खोज करके मानव अथवा पशु-पक्षी के स्वभाव से भली भांति परिचित होना है। क्योकि प्राणी का बाहय उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। तथा यह बाह्य व्यवहार वास्तव में उसके अन्तर्मन की बाह्‌ अभिव्यक्ति मात्र है, इसलिए मनोविज्ञान प्राणी के अन्तर्मन का भी अध्ययन करता हे।

2.3.3 शिक्षा मनोविज्ञान

शिक्षा मनोविज्ञान वस्तुतः मनोविज्ञान की एक अत्यंत महत्वपूर्ण शाखा है। शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के संयोग से बना है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान। अतः शिक्षा मनोविज्ञान शब्द का शाब्दिक अर्थ निःसन्देह शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान से है। शिक्षा का सम्बनध मानव व्यवहार के परिमार्जन के लिए मानव व्यवहार का अध्ययन करने की आवष्यकता स्वस्पष्ट ही है। मानव व्यवहार को उन्नत बनाने की दृष्टि से जब व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तो अध्ययन की इस शाखा को शिक्षा मनोविज्ञान के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अतः कहा जा सकता है, कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन तथा परिमार्जन करता है। दूसरे शब्दों में शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक व तर्कसंगत ढंग से समाधान करने के लिए मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों का उपयोग करना ही शिक्षा मनोविज्ञान की विषय वस्तु है। आधुनिक शिक्षा जगत में शिक्षा मनोविज्ञान का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ कब हुआ, इस सम्बन्धमें विद्वानों में कुछ मतभेद है। कुछ मनोविज्ञान शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ 19वीं शताबदी से ही स्वीकार करते है, जबकि कुछ अन्य शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ प्लेटो व अरस्तू जैसे प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के समय से ही स्वीकार करते हैं कॉलसनिक ने शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रारम्भ ईसा से पांच शताब्दी पूर्व (500) के यूनानी दार्शनिकों से माना है। उसके अनुसार मनोविज्ञान और शिक्षा के सर्वप्रथम व्यवस्थित सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त प्लेटो का भी था। परन्तु स्किनर ने शिक्षा मनोविज्ञान का प्रारम्भ प्लेटो के शिष्य अरस्तू के विचारों से माना है।

निःसंदेह प्लेटो, अरस्तू आदि यूनानी दार्शनिकों ने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए इन सिद्धानतों को तत्कालीन मनोविज्ञान से जोड़ने की कोशिश की थी, परन्तु आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान की उत्पत्ति 19वीं शताबदी में पेस्तालॉजी हर्बार्ट तथा फ्रॅाबेल आदि यूरोपियन शिक्षा दार्शनिकों के कार्यो से हुई जिन्होने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक आंदोलन का सूत्रपात रूसो द्वारा प्रकृतिवादी विचारधारा की प्रस्तुति से ही सम्भव हुआ। उसने शिक्षाशात्रियों का ध्यान बालक की ओर आकर्षित करते हुए इस बातपर बल दिया कि बालकों को उनकी आवश्यकताओं, रुचियों, प्रवृतियों, योग्यताओं के अनुरूप ही शिक्षा दी जानी चाहिए। रुसो कि इस विचारधारा से प्रेरणा पाकर ही पेस्तालाजी, हर्बार्ट, फ्रोबेल आदि ने शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का विधिवत् उपयोग करके तत्कालीन शिक्षा प्राणाली में अनेक सुधार किए। तत्पश्चात गाल्टन इबिंगहॉस जेम्स बिने गोडार्ड आदि मनोवैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। जिन्होंने् शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी।

मनोविज्ञान के सम्वन्ध मे विद्वानों के द्वारा व्यक्त की गई कुछ परिभाषाएँ निम्नवत् प्रस्तुत हैं-

कॉलसनिक के अनुसार-''मनोविज्ञान के सिद्धानतों व परिणामों का शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयोग शिक्षा मनोविज्ञान है।''

क्रो एवं क्रो के शब्दों में - '' शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षण तथा अधिगम से सम्बनिधत होती है।''

ट्रो के अनुसार - ''शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है"।

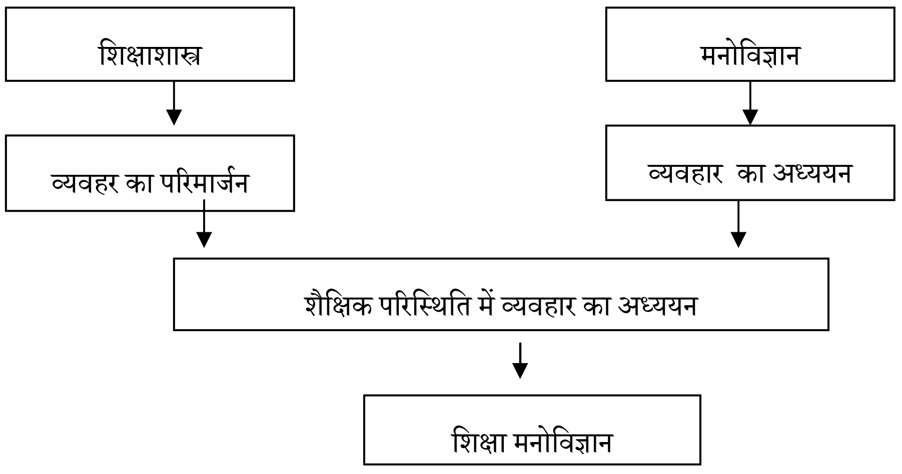

चित्र 2.1 शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बन्ध

शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त वर्णित कुछ परिभाषाओं के अवलोकन से कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा मनोविज्ञान वास्तव में मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा प्रक्रिया का संचालन करने की दृष्टि से मनोविज्ञान सिद्धान्तों तथा नियमों का अध्ययन करती है। सूत्र रूप में शिक्षा मनोविज्ञान को निम्न शब्दों के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।

''शिक्षा मनोविज्ञान व्यवहार के परिमार्जन का विज्ञान है।''

यहाँ यह इंगित करना उचित ही होगा कि शिक्षा मनोविज्ञान की यह संक्षिप्त परिभाषा शिक्षा मनोविज्ञान के समारात्मक स्वरुप तथा इसके वांछनीयता की ओर प्रवृत होने का संकेत करती है।

2.3.4 मनोविज्ञान का इतिहास

शिक्षा मनोवज्ञान का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि शिक्षा की प्रक्रिया। यदि शिक्षा मनोविज्ञान के इतिहास पर हम गौरपूर्वक देखें तो यह स्पष्टतः पाएँगे कि शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में समय-समय पर बड़े-बड़े वैज्ञापिकों द्वारा योगदान किया गया है। ग्रीक दार्शनिकों द्वारा किए गए योगदानों से शिक्षा मनोविज्ञान का दतिहास प्रारंभ होता माना गया है। डेमोक्रीट्स पहले से ऐसे दार्शनिक थे जिन्होनें बच्चों के व्यक्तित्व विकास में घरेलू शिक्षा के महत्व पर बल डाला था। चौथी शताब्दी में प्लेटो तथा अरस्तू ने शिक्षा की एक विशेष पद्धति का विकास किया तथा उसमें मनोवैज्ञनिक नियमों एवं सिद्धान्तों के महत्व की भूमिका पर बल डाला। अरस्तू ने उस समय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला इन पहलुओं मे विभिन्न लोगों के लिए अलग-अलग शिक्षा चरित्र शिक्षा शिक्षण की विभिन्न विधियाँ आदि प्रधान थे। उन्होने अपने लेखन में शिक्षा, के इन विभिन्न पहलुओं में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं नियमों की उपयोगिताओं पर विशेष रूप से बल दिया है। अरस्तू मस्तिष्क के संकाय सिद्धान्त में विश्वास रखकर शिक्षा में मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों की उपयोगिता पर बल डाला थां। यही कारण है कि उनके द्वारा शिक्षा के प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक आधार का प्रभाव पूरे संसार पर काफी व्यापक रूप से पड़ा। बाद में अरस्तू के शिक्षा सिद्धान्तों को परिमार्जित कर अधिक उन्नत बनाया गया। डेकार्टे तथा रूसो ने भी अरस्तू के नियमों पर आधारित करने की सिफारिश की। उन्होंने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'एमील' में शिक्षा की विभिन्न पद्धतियों में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं नियमों की भूमिका का स्पष्टीकरण किया। जान लॉक जो एक प्रमख अनुभववादी थे, ने उस समय के महत्वपूर्ण संकाय सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा की और बताया कि मस्तिष्क के विभिन्न तरह की मानसिक क्षमताओं पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। इस आलोचना के बावजूद संकाय मनोविज्ञान का प्रभाव शिक्षा पर काफी पडा, इस प्रभाव के परिणामस्वरूप शिक्षा के नए सिद्धान्त का जन्म हुआ, जिसे शिक्षा का औपचारिक अनुशासन सिद्धान्त की संज्ञा दी तथा जिसके अनुसार कुछ खास-खास कठिन विषयों को सीखने से मस्तिष्क काफी प्रशिक्षित हो जाता है और तब इस प्रशिक्षित मस्तिष्क का धनात्मक हस्तांतरण शिक्षा के हर क्षेत्र में होता है। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक अन्य दार्शनिक-शिक्षक

जिन्होने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया, पेस्टालोजी है। इन्होने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक विधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपने इस विशेष सुझाव द्वारा लाया कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों की क्षमताओं को जगाना तथा साथ-साथ उसकी बेहतरीन क्षमताओं को विकसित करना है। उन्होने मानव विकास के नियम तथा सीखने की विधि का भी प्रतिपादन कर शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम मे रचनात्मक योगदान दिया।

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों मे दो अन्य जर्मन दार्शनिक-शिक्षकों ने भी महतवपूर्ण योगदान किया। उनके नाम है- जोहान हरबार्ट, (1776-1841) तथा फ्रोबेल (1782-1852) इन लोगों ने शिक्षा का एक ऐसा सिद्धान्त विकसित किया जो मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इन लोगों द्वारा संकाय मनोविज्ञान के सिद्धान्त को अस्वीकृत कर दिया गया। हरबर्ट द्वारा शिक्षा में अभिरुचि तथा आत्मबोध जैसे तथ्यों के महत्व पर अधिक बल डालने की सिफारिश की गई। फ्रोबेल ने बच्चों को पढ़ाने की एक नई पद्धति का विकास किया जिसे किण्डरगार्टन विधि कहा जाता है। इस विधि द्वारा बच्चों को शिक्षा देने में प्रारंभिक अनुभूतियों के महत्व पर अधिक प्रकाश डाला जाता है।

अब तक जो कुछ भी ऊपर में शिक्षा मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में कहा गया है, वह मूलतः दार्शनिक-शिक्षको के योगदानों पर आधारित था। सही अर्थ में शिक्षा मनोविज्ञान का इतिहास 1880 में सर फ्रैंसिस गाल्टन द्वारा किए गए अभूतपूर्व योगदानों से प्रारंभ होता है। गाल्टन ने वैयक्तिक विभिन्ता के अध्ययन पर अधिक बल डाला जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति की मानसिक क्षमता के मापन की ओर लोगों का ध्यान गया। गाल्टन पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होने व्यक्ति के मानसिक क्षमता को मापने के लिए एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण का निर्माण किया था। गाल्टन का यह भी विचार था कि व्यक्तियों की बुद्धि की माप उसकी संवेदी क्षमताओं के आधार पर की जानी चाहिए। इसके बाद जी0 स्टेनले हाल ने प्रश्नावली के सहारे बच्चों के शैक्षिक व्यवहारों का अध्ययन कर लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इस दिशा मे इबिंगहास तथा विलियम जेम्स द्वारा पहले कुछ इस प्रकार के अध्ययन किए जा चुके थे जिससे शिक्षा मनोविज्ञान को अनेक नये सिद्धान्तों एवं तथ्यों की प्राप्ति हो चुकी थी।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अलफ्रेड बिने द्वारा एक महत्वपूर्ण योगदान किया गया। इन्होंने बालकों की बुद्धि मापने के लिए सबसे पहला बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जो 1905 ई0 में 'बिने-साइमन मापनी' के नाम से प्रकाशित हुआ। जेम्स मैककीन कैटेल ने वैयक्तिक विभिन्ता तथा मानसिक परीक्षणों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयोग करके शिक्षा मनोविज्ञान के स्वरुप को प्रयोगात्मक बनाया। बाद में कैटेल के शिष्य ई0एल0 थार्नडाईक द्वारा उनके कार्यो को आगे बढ़ाया गया और शिक्षा के क्षेत्र में उन्होनें अपने गुरु से भी एक कदम आगे बढ़कर योगदान किया। थार्नडाईक ने सीखने का एक सिद्धान्त विकसित किया तथा सीखने के नियमों का भी

प्रतिपादन किया। इन नियमों में प्रभाव-नियम द्वारा शिक्षा की समस्याओं को समझाने में काफी मदद मिली। थार्नडाईक ने 1903 ई0 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शिक्षा मनोविज्ञान' का प्रतिपादन किया जिसमे उन्होने हस्तांतरण के एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे समरूप तत्वों का सिद्धान्त कहा गया जिसके अनुसार एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में हस्तांतरण या मदद की मात्रा इस बात पर निर्भर करती हैं कि इन दोनों परिस्थितियों में समान या समरुप तत्व कितने हैं। ऐसे तत्वों की संख्या जितनी अधिक होगी, धनात्मक हस्तांतरण की मात्रा उतनी अधिक होगी। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन्होने औपचारिक अनुशासन के सिद्धान्त को अस्वीकृत करने के बाद किया था। 1922 ई0 में थार्नडाईक ने अंकगणित की शिक्षा देने के लिए आज भी एक अभूतपूर्व योगदान माना गया है। उन्होंने इस बात से इन्कार किया कि बुद्धि में कोई सामान्य मानसिक क्षमता जैसी चीज होजी है। शायद यही कारण है कि उन्होने अपना एक नया बुद्धि परीक्षण बनाया जिसे CARVD परीक्षण कहा गया। इस बुद्धि परीक्षण में चार उपपरीक्षण थे-पूतिर्, अंकगणित, चिन्तन, शब्दावली, तथा दिशा। सच पूछा जाये तो थार्नडाईक के महत्वपूर्ण योगदानों से ही शिक्षा मनोविज्ञान का काल प्रारंम्भ होता है।

1950 के बाद शिक्षा मनोविज्ञान में तीव्र विकास हुआ है। आजकल शिक्षा मनोवैज्ञानिक सिर्फ सीखने तथा सिखाने के क्षेत्रों में ही नही कार्य कर रहे हैं, बल्कि वे अन्य संबन्धित प्रमुख क्षेत्रों मे जैसे मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक समायोजन शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा मापन एवं मूल्यांकन जैसे नए-नए क्षेत्रों में कार्यरत् हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी महत्वपूर्ण योगदान किये जा रहे हैं जो आगे आनेवाले दशकों में इतिहास के पन्नों का महत्वपूर्ण भाग बनेंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक का ____________ विकास होता है।
2. मनोविज्ञान __________ का विज्ञान है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान __________परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन तथा परिमार्जन करता है।
4. वर्तमान में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना जाता है (सत्य/असत्य)
5. मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान है।'' यह परिभाषा वुडवर्थ द्वारा दी गई है। (सत्य/असत्य)

2.4 मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान वास्तव में शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विवेचन, विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करता है। इसलिए शिक्षा-प्रक्रिया में संलग्न व्यक्तियों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का

अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। अध्यापक कक्षा में चलने वाली वास्तविक शिक्षा-प्रक्रिया का निर्देशक होता है। वह अपने छात्रों के सम्मुख सीखने की विभिन्न परिस्थितयों को प्रस्तुत करके उनके शैक्षिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अत्यंत आवश्यक, महत्वपूर्ण व उपयोगी है। शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव में कोई भी अध्यापक अपने कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकता है। आधुनिक समय में शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान ही अध्यापक की सफलता का रहस्य होता है। अपने शिक्षण कार्य को सफल बनाने के लिए तथा छात्रों के सीखने को सरल, सहज व आनन्दमय बनाने के लिए अध्यापक को मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों का उपयोग करना होता है। छात्रों की रुचि, योग्यता, आवश्यकता, परिस्थिति आदि के अनुरुप शिक्षण कार्य करने के लिए अध्यापक को शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान, बोध, कौशल तथा विधियों में निपुण होना अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापकों के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन निम्नांकित दृष्टियों से उपयोगी है।

i. शिक्षा मनोविज्ञान न केवल अध्यापकों को वरन् अभिभावकों को शिक्षा सम्बन्धी सम्यक् दृष्टिकोण प्रदान करता है।
ii. शिक्षा मनोविज्ञान कक्षा में उपयुक्त शैक्षिक वातावरण उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है।
iii. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों को छात्रों के प्रति प्रेम, सहानुभूति तथा समदर्शी व्यवहार को अपनाने में सहायता करता है।
iv. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को श्रेष्ठ शिक्षण विधियों की जानकारी देता है एवं उनमें पारंगतता प्रदान करता है।
v. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को बाल-स्वभाव के ज्ञान तथा मानव व्यवहार की प्रकृति से परिचित कराता है।
vi. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों तथा अध्यापकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखना सिखाता है।
vii. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों तथा अध्यापकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखना सिखाता है।
viii. शिक्षा मनोविज्ञान विभिन्न शिक्षास्तरों पर पाठ्य-निर्माण एवं पाठ्य पुस्तक रचना करने में सहायता प्रदान करता है।
ix. शिक्षा मनोविज्ञान बालकों के चतुर्मुखी विकास की विभिन्न विधियों तथा आयामों की जानकारी प्रदान करता है।
x. शिक्षा मनोविज्ञान छात्रों को शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करने में अध्यापक की सहायता करता है।
xi. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों तथा प्रशासकों को मापन तथा मूल्यांकन की नवीन विधियों से परिचित कराता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि अध्यापकों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का अध्यन अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान के सम्प्रत्ययों, सिद्धान्तों तथा विधियों का व्यावहारिक परिस्थितियों में उपयोग करके शिक्षक अपने शिक्षण कार्य को प्रभावी बना सकता है। वास्तव में यह कहना उचित ही होगा कि शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित सभी व्यक्ति या प्रशासकों, अध्यापकों तथा अभिभावकों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

6. .... का व्यवहारिक रुप ही शिक्षा-मनोविज्ञान है।
7. शिक्षा - मनोविज्ञान का सीधा सम्बन्ध .... की प्रक्रिया से है।
8. शिक्षा मनोविज्ञान की अध्यापक के संदर्भ में कोई दो उपयोगिता लिखिए।

2.5 शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र

आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है। पहला शब्द है 'शिक्षा' और दूसरा शब्द है 'मनोविज्ञान'। मनोविज्ञान व्यवहार तथा अनुभव का ज्ञान है और शिक्षा व्यवहार की शुद्धि का नाम है। आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के व्यक्तित्व का समरुप विकास है। अध्यापकों का कार्य ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न करना है, जिनके द्वारा व्यक्तित्व का स्वतन्त्र तथा पूर्ण विकास हो सके और यही आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य है परन्तु आधुनिक शिक्षा का यह अर्थ मनोविज्ञान के ज्ञान पर निर्भर करता है। अतः शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा समस्याओं पर लागू होने वाला मनोविज्ञान है। उपरोक्त को और पुष्ट करने हेतु हम कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन करेगें।

स्टीफन के विचार - 'शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की वृद्धि तथा इस का विधिवत् अध्ययन है। इनके विचारानुसार जो कुछ भी शिक्षा की वृद्धि तथा विकास के विधिवत् अध्ययन के साथ सम्बन्धित है, उसे शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में सम्मिलित किया जा सकता है।'

जुड के विचार - 'शिक्षा मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्तियों में हुये उन परिर्वतनों का उल्लेख और व्याख्या करता है जो विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं।'

क्रो और क्रो के विचार - 'शिक्षा मनोविज्ञान जन्म से वृद्धावस्था तक व्यक्ति के सीखने की अनुभूतियों की व्याख्या प्रस्तुत करता है।'

पील के विचार - 'शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का विज्ञान है जो अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के विकास तथा उनकी योग्यताओं के विस्तार और उनकी सीमाओं को समझने में सहायता प्रदान करता

है। यह अध्यापक को अपने विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रियाओं तथा उनके सामाजिक सम्बन्धों को भी समझने में सहायता प्रदान करता है। शिक्षा मनोविज्ञान व्यापक रूप से सीखने की प्रकृति, मानव व्यक्तित्व के विकास, व्यक्तियों की परस्पर भिन्नता और सामाजिक सम्बन्ध में व्यक्ति के अध्ययन के साथ सम्बन्धित है।'

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है। यही कारण है कि शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र भी बाल्यावस्था अथवा किशोरावस्था तक की शैक्षिक प्रक्रियाओं का ही अध्ययन करना नहीं है बल्कि इसके द्वारा व्यक्ति के पूरे जीवनकाल में चलने वाले शैक्षिक प्रक्रियाओं का है। इस शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षा एवं शिक्षार्थी से संबद्ध जितने तरह के पक्ष हो सकते हैं, उन्हें शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है। इस संदर्भ में शिक्षा मनोविज्ञान के प्रमुख कर्यक्षेत्रों का वर्णन लिण्डग्रेन (1972) के अनुसार इस प्रकार किया जा सकता है।

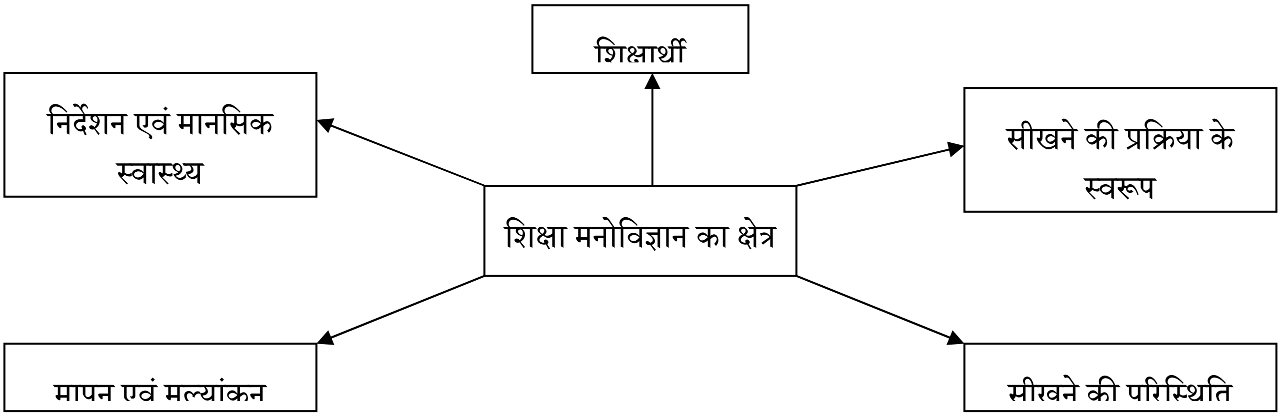

चित्र 2.2- शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र

1. शिक्षार्थी - शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षार्थी की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। कोई भी सीखने-सीखाने की प्रक्रिया तब तक सम्पन्न नही हो सकती, जब तक कि वर्ग में शिक्षार्थीगण उपस्थित न हो। कक्षा में शिक्षण कार्य बहुत हद तक शिक्षार्थी में विभिन्न तरह के विकास उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों, बुद्धि, अभिव्यक्ति, चिन्तन आदि पर निर्भर करता है। इन सभी का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र के भीतर है और शिक्षा मनोवैज्ञानिक परीक्षार्थी के इन विभिन्न पहलु.ओं पर गंभीरतपूर्वक विचार कर एक निर्णय पर पहुंचते हैं और उसी ढंग से शिक्षार्थी का चयन कर उन्हें शिक्षा देते हैं। शिक्षार्थी के विकास का अध्ययन करते समय शिक्षा मनोविज्ञान में शिक्षार्थी के विकास जैसे शारीरिक विकास,

मानसिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास आदि पर अधिक बल डाला जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान में इन सभी क्षेत्रों में शिक्षार्थी से संबधित समस्याओं तथा उनके संभावित निदान का भी अध्ययन किया जाता है ताकि शिक्षा की प्रक्रिया को अधिक-से-अधिक लाभप्रद बनाया जा सके।

2. सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप - लिण्डग्रेन के अनुसार सीखने की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी अपने व्यवहारों में परिर्वतन लाकर नये-नये संप्रत्ययों को सीखते हैं तथा अपनी चिन्तन प्रक्रिया को पुनर्संगठित करते हैं सच्चाई यह है कि शिखार्थी सीखते समय जो भी प्रक्रियाएँ करते हैं, उसे सीखने की प्रक्रिया कहा जाता है। सीखने की कुछ प्रक्रियाएँ ऐसी होती है जिसका सीधे अवलोकन किया जा सकता है। लिखना, बातचीत करना आदि कुछ इसी तरह की प्रक्रियाओं के उदाहरण हैं। सीखने की कुछ प्रक्रियाएँ ऐसी होती है जिनका अवलोकन सीधे तो नहीं किया जा सकता है परन्तु वे काफी महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे सीखने की प्रक्रिया पर अधिक से अधिक प्रभाव डालती हैं। इन प्रक्रियाओं में चिन्तन, प्रत्यक्षण, स्मरण तथा विस्मरण आदि प्रमुख हैं। शिक्षा मनोवैज्ञानिक के कार्यक्षेत्र में इन दोनों तरह के सीखने की प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक सीखने की इन सभी प्रक्रियाओं का अध्ययन कर शिक्षार्थी को अर्थपूर्ण शिक्षा देने का एक उचित माहौल तैयार करता है।

3. सीखने की परिस्थिति- लिण्डग्रेन के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान का तीसरा केन्द्रीय क्षेत्र सीखने की परिस्थिति है जिसमें सीखने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इसमें शिक्षक की मनोवृत्ति, वर्ग या क्लास की परिस्थिति, स्कूल की सांवेगिक वातावरण आदि को महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इन सब कारकों से सीखने की परिस्थिति का निर्माण होता है। जब सीखने की परिस्थिति इस प्रकार की होती है जिसमें शिक्षक की मनोवृत्ति अनुकूल होती है, वर्ग में शिक्षार्थियों को बैठने की आरामदेह जगह होती है, कमरा साफ-सुथरा होता है तथा स्कूल की सांवेगिक आबोहवा अधिक सौहार्दपूर्ण होता है तो इसमें दी गई शिक्षा अधिक लाभप्रद एवं अर्थपूर्ण होती है। दूसरी तरफ यदि सीखने की परिस्थिति ऐसी होती है जिसमें शिक्षक की मनोवृत्ति प्रतिकूल, कक्षा का कमरा साफ-सुथरा, कम एवं बैठने की जगह बेतुकी तथा स्कूल की सांवेगिक आबोहवा गर्म होती है तो इसमें दी गई शिक्षा अधिक अर्थपूर्ण एवं लाभप्रद नहीं हो पाती। शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र में इस तथ्य का भी पता लगाना शामिल होता है कि किन-किन परिस्थितियों में सीखने-सिखाने का कार्यक्रम किया जा सकता है और किन-किन परिस्थितियों में नहीं।

4. मापन एवं मूल्यांकन - शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों के मापन तथा मूल्यांकन पर भी जोर डालते हैं। शिक्षार्थी की समुचित शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी की बुद्धि, अभिरुचि, मनोवृत्ति, अभिक्षमता की माप की जाए तथा उसकी उपलब्धियों का सही-सही मूल्यांकन किया जाए। शिक्षा मनोविज्ञान में इस तरह के मापन

एवं मूल्यांकन के अध्ययन पर विशेष बल डाला जाता है, ताकि शिक्षा अर्थपूर्ण एवं लाभप्रद हो सके।

5. निर्देशन तथा मानसिक स्वास्थ्य- शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र में निर्देशन तथा शिक्षार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की प्रधानता बताई गई है। निर्देशन तीन स्तर पर किए जाते हैं- वैयक्तिक निर्देशन, शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक निर्देशन। शिक्षा मनोविज्ञान इन तीनों प्रकार के निर्देशनों का उचित प्रबन्ध करके शिक्षार्थियों को अपने-अपने सामर्थ्य के अनुकूल समायोजन में मदद करता है इतना ही नहीं, शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने संबंधी तथ्यों को भी अपने अध्ययन क्षेत्र में शामिल कर शिक्षा को अधिक अर्थपूर्ण एवं लाभप्रद बनाता है।

स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है। इस दिशा में और चार चाँद इस बात से लग गए हैं कि सरकार समय-समय कुछ विशेष लाभप्रद शिक्षा नीति की घोषणा करती रहती है। इससे शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का हौसला बुलन्द हो गया है और वे अपने कार्यक्षेत्र की सीमारेखा को चारों तरफ से बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हो उठे हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. लिण्डग्रेन द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान के प्रमुख कार्यक्षेत्रों को सूचीबद्ध कीजिए।
10. निर्देशन कौन-कौन से स्तर पर किया जाता है?

2.6 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय

आप पहली ईकाई में मनोविज्ञान के ऐतहासिक पृष्ठभूमि को पढ़ा है और जान चुके हैं कि मनोविज्ञान के अर्थ और परिभाषा में अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों तथा उनके समूहों के अनुरूप परिवर्तन होते चले गए। इन दार्शनिकों तथा मनोवैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से सम्प्रदायों का उदय होता है। अब आप इस खण्ड में मनोविज्ञान के सम्प्रदायों का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टिकोण से करेगें। इन सम्प्रदायों के वर्णन को इन उद्देश्य से यहा पर सम्मिलित किया गया जिससे कि आपको आधुनिक मनोविज्ञान के विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान हो जाए। यहाँ पर संक्षेप में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों का वर्णन उनके विकास के क्रम में किया जाने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत ईकाई में आप सम्प्रदायों तथा मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

1. संरचनावाद

मनोविज्ञान का पहला सम्प्रदाय संरचनावाद है, जिसकी स्थापना अनौपचारिक रूप से 1879 में लिपजिग में विलियम वुण्ट (1832-1920) द्वारा तथा औपचारिक रूप से 1898 में ई0बी0 टिचेनर (1867-1927) के द्वारा हुई। इस सम्प्रदाय के समर्थकों ने चेतन अनुभूति को मनोविज्ञान की विषय-वस्तु तथा अन्तःनिरीक्षण को विधि के रुप में माना और मनोविज्ञान की विषय-वस्तु की विश्लेषणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। इस सम्प्रदाय ने मनोविज्ञान की विषय-वस्तु के प्रयोगात्मक अध्ययन का मार्ग खोला जिसने मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ-साथ शिक्षा-मनोविज्ञान के वैज्ञानिक विकास में भी एक पूर्ववर्ती कारक का काम किया।

संरचनावाद की विशेषताएँ

संरचनावाद ने मनोविज्ञान का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया जिससे मनोविज्ञान की एक विषय के रुप में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित हुई और दर्शन की एक शाखा के रूप में निकलकर इसने अपना स्वतन्त्र आस्तित्व स्थापित किया। संरचनावादियों ने जिस लगन से संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, प्रतिभा, स्मृति, भाव, संवेग आदि का अध्ययन किया उससे शिक्षा को मनोविज्ञान पर आधारित करने मे सहायता मिली। संरचनावादियों ने अनुभव एवं मानसिक प्रक्रियाओं पर जो निष्कर्ष निकाले उनमें से अनेक अब मान्य नहीं है किन्तु प्रारम्भ में उन्हीं को अपनाकर शिक्षा मनोविज्ञान ने अपना विकास किया।

संरचनावाद में अन्तर्दर्शन का विशेष महत्व है। अन्तर्दर्शन आज भी किसी न किसी रुप में हमारी सहायता करता है। हाँ, अन्तर्दर्शन को हम एक मात्र प्रणाली नहीं मान सकते, किन्तु अन्य प्रणालियों के साथ इसका सहयोग लेने में कोई हानि नहीं है। केवल इसी पर आश्रित रहने की संरचनावादियों की नीति आज अस्वीकृत एंव अमान्य है।

2. प्रकार्यवाद

अमेरिका में प्रकार्यवाद की स्थापना संरचनावाद के विरोध में लगभग 1899 हुई। दो शाखाएँ विकसित हो गयीं, जिन्हें शिकागो प्रकार्यवाद तथा कोलम्बिया प्रकार्यवाद कहते है। शिकागो प्रकार्यवाद के समर्थकों में जॉन डिवी विलियम जेम्स 1842-1910 1869-1949 तथा हारवेकार 1873-1954 के नाम उल्लेखनीय हैं। कोल्म्बिया प्रकार्यवाद के समर्थकों में एडवर्थ, थॉर्नडाइक आदि नाम उल्लेखनीय है। बोरिंग के अनुसार शिक्षा-मनोविज्ञान के विकास में जेम्स तथा डिवी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसकी चर्चा करते हुए उनहोने कहा है कि ‘‘शिक्षा मनोविज्ञान की समुचित पृष्ठभूमि कार्यवाद है, जिसने मनोवैज्ञानिकों को समाज तथा प्राणी या व्यक्ति के लिए उपयोगी अध्ययनों की स्वंतत्रता दे दी। जेम्स तथा डिवी ने शिक्षा मनोविज्ञान को दार्शनिक अनुमोदन प्रदान कर दिया।’’

कोलम्बिया प्रकार्यवाद के समर्थन में थॉर्नडाइक के योगदान अधिक है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना होने से शिक्षा-मनोविज्ञान की नींव काफी मजबूत हो गयी। इसी कारण विश्वास किया जाता है कि शिक्षा-मनोविज्ञान का स्वतंत्र अस्तित्व यहीं से आरंभ होता हैं।

थॉर्नडाईक ने अपेन गुरू जेम्स मैक्कीन कैटेल के विचारों से प्रभावित होकर कई महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे शिक्षा मनोविज्ञान के विकास में काफी सहयोग मिला। उनहोने सीखने के प्रयत्न एवं भूल सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन नियमों अर्थात् तत्परता नियम, अभ्यास-नियम तथा प्रभाव-नियम का उल्लेख किया। आज भी बालकों की शिक्षा के क्षेत्र में इन नियमों का उपयोग आवश्यकता अनुसार किया जाता है। थॉर्नडाइक ने 1903 में अपनी पुस्तक 'शिक्षा मनोविज्ञान' को तीन सिद्धान्तो के उपयोग पर बल दिया। शिक्षण-स्थानांतरण के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसको समान संघटक सिद्धान्त कहते है। यह सिद्धान्त स्थानांतरण प्रशिक्षण की व्याख्या करने में जड़ के मानसिक शक्ति सिद्धान्त से अधिक सफल प्रमाणित हुआ। दूसरी ओर इसी सिद्धान्त की प्रतिक्रिया के रुप में कोहलर आदि मनोवैज्ञानिकों ने स्थानांतरण के एक नया सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसे सामान्यीकरण सिद्धान्त कहते हैं। इसके अलावा थॉर्नडाइक ने सामाजिक बुद्धि के समप्रत्यय का उल्लेख किया तथा उसके विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होने बुद्धि को तीन प्रकारों में विभाजित कियाः-

i. अमूर्त बुद्धि
ii. सामाजिक बुद्धि
iii. यांत्रिक बुद्धि

उन्होनें बुद्धि को मापने के लिए एक बुद्धि परीक्षण का निमार्ण किया CARVD जिसको परीक्षण कहते हैं।

प्रकार्यवाद की विशेषताएँ

प्रकार्यवाद ने शिक्षा और मनोविज्ञान में वस्तुनिष्ठता का प्रतिपादन किया और व्यक्तिनिष्ठता को हतोत्साहित किया। इसके प्रभाव में गत्यात्मक मनोविज्ञान का विकास हुआ यदि प्रकार्यवाद न आता तो कालान्तर में मनोविज्ञान में व्यवहारवाद भी न आ पाता क्योकि मनोविज्ञान का आधार शिला प्रकार्यवाद ने ही रखी है।

प्रकार्यवाद ने वंश परम्परा की अपेक्षा वातावरण पर अधिक बल दिया। इससे शिक्षा को बल मिला। यदि हम वातावरण पर अविश्वास करेंगे तो बालक को शिक्षित बनाने में कठिनाई होगी। वातावरण से समुचित समायोजन ही शिक्षा का प्रमुख कार्य है। प्रकार्यवाद

से शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक की क्रियाओं की महता सिद्ध हुई। शिक्षण का दायित्व है कि वह बालक की वंश परम्परा पर विशेष बल न देकर उपयुक्त शैक्षिक वातावरण की सर्जना में अपनी शक्ति लगाए।

3. गेस्टाल्टवाद

जर्मनी में गेस्टाल्टवाद की स्थापना 1912 के लगभग संरचनावाद के विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के विरोध में वर्दीमर, कोहलर तथा कोफ्का के हाथों हुई। इन मनोवैज्ञानिक ने मनोविज्ञान की विषय वसतु की पूर्णता पर बल दिया। इस सम्प्रदाय का आशय यह है कि शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों को किसी पाठ को इस ढंग से पढाएँ कि वे उस पाठ का प्रत्यक्षीकरण पूर्ण रूप से कर सकें। इसका आशय यह भी है कि बालकों को अपने पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने के अवसर दिया जाये तथा शिक्षण तथा चिंतन में सूझ को विकसित करने का प्रयास किया जाये। इस सम्प्रदाय ने शिक्षा के क्षेत्र में गेस्टाल्ट अध्यापन-विधि को विकसित होने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्होंने प्रस्तावित किया हैं कि एक घटना का अनुभव समग्र रूप से होना चाहिए। उन्होंने कहा "एक गेस्टाल्ट या आकृति एक समग्र है, जिसकी विशेषताएँ पता लगाई जाती हैं, समग्र की आन्तरिक प्रकृति के द्वारा, न कि उनके व्यक्तिगत तत्वों की विशेषताओं के द्वारा"।

किस प्रकार के अवयव या समग्र हमारे अनुभवों में आते है, इस सम्बन्ध में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। जब हम एक लम्बी सड़क पर निगाह डालते है तो हम यह समझ लेते हैं कि सड़क उतनी ही चौड़ी लगभग 2 फर्लांग पर है जितनी कि वह हमारे बिल्कुल पास। वास्तव में संवेदना तो हमें उसे छोटा होने की सूचना देती है किन्तु हम उसको समग्र रूप से देखकर इस निश्चय पर आ जाते है कि इसकी चौड़ाई कम नहीं हो रही है। इस प्रकार आकृति की स्थिरता हमें समग्र के विचार की ओर ले जाती है।

गेस्टाल्टवाद का मनोविज्ञान अनुभव से सम्बन्धित है और वह हमें प्रत्यक्षीकरण के नियम एवं मानव सीखने की समस्याओं में विशिष्ट रुचि के नियमों से अवगत करता है। इसमें निहित यह विचार है कि सीखने वाला अपने प्रत्यक्षीकरण और विचारों को संगठित एवं पुनः संगठित करता रहता है। गेस्टाल्टवाद समग्रता पर बल देता है। व्यक्ति समग्र अनुभवों के आधार पर नियम बनाता है और इस प्रकार गेस्टाल्ट या अवयव बन जाते हैं। अच्छे गेस्टाल्ट उस समय बनते है जब हम अपने अनुभव इस प्रकार संगठित करते हैं कि वह हमारे लिए अच्छे हों। हमारे अन्दर स्पष्ट गेस्टाल्ट बनाने की आवृति बहुत सक्रिय होती है और कभी-कभी यह हमें उन परिणामों की ओर ले जाती है जो हमारे विस्तृत ज्ञान के

प्रतिकूल होने है। शिक्षक की आवश्यकता यही है। अवयवीवाद के अनुसार शिक्षक का मुख्य कार्य विद्यार्थी को अनुभव और सीखने को पुनर्संगठित करने में सहायता देना है।

अवयवीवाद या गेस्टाल्टवाद यह मानता है कि सीखने वाला समस्या को निष्क्ष रूप से देख सकता है और वह उद्देश्य से इतना अधिरूढ़ नहीं होता जितना कि साधारण व्यवहार के सिखने में। जब वह निष्पक्ष भाव से विश्लेषण करता है तो इसे हम सूझ कहते है और सूझ द्वारा सीखना विद्यालय में सीखने की प्रक्रिया का आधार है।\ इस स्कूल का मुख्य बल व्यवहार में सम्पूर्णता के अध्ययन पर है। यद्यपि यह सही है कि सभी अंश मिलकर सम्पूर्णता का निमार्ण करते हैं, परन्तु सम्पूर्णता विशेषताएँ अंश की विशेषताओं से भिन्न होती है। प्रत्यक्षण के अलावा गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने सीखना चिन्तन तथा स्मृति में जो योगदान किया उससे शिक्षा मनोविज्ञान काफी लाभान्वित हुआ और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। इन योगदानों की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते है-

4. **सीखना-** कोहलर तथा कौफका ने अपने-अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह गताया कि सीखने की प्रक्रिया में प्रयत्न एवं भूल की नही बल्कि सूझ की अहमियत अधिक होती है। सूझ व्यक्ति में किसी समस्या का समाधान करते समय या किसी पाठ को सीखते समय प्रायः अचानक विकसित होती है और व्यक्ति उद्दीपनों के बीच के संबंधो के अर्थपूर्ण संबंध को समझ जाता है और इससे सीखने की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है। गेस्टाल्टवादियों द्वारा प्रतिपादित इस सूझ के सिद्धान्त को शिक्षा मनोविज्ञानिकों द्वारा काफी स्वागत किया गया और शिक्षार्थियों के सीखने की प्रक्रिया में सूझ उत्पन्न किया गया और उत्पन्न करने पर अधिक बल डाला गया ताकि उनका शिक्षण काफी प्रबल एवं सापेक्षिक रूप से स्थायी रह सके।
5. **चिन्तन** - गेस्टाल्ट मनोविज्ञानिकों ने चिन्तन के क्षेत्र में अध्ययन कर शिक्षा मनोविज्ञान के लिए बहुत ही उपयोगी तथ्य प्रदान किया है। बरदाइमर ने छोटे-छोटे बालकों पर अध्ययन कर चिन्तन प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन किया। इन लोगों के अनुसार चिन्तन के तीन प्रकार होते हैं-एक तरह का उत्पादी चिन्तन है जिसमें बालक लक्ष्य तथा उस पर पहुचने के साधनों के बीच सीधा संबंध सथापित कर पाता है। इस तरह के चिन्तन में बालक समस्या के विभिन्न पहलुओं का पुनर्संगठन करने में समर्थ हो पाते हैं। दूसरे प्रकार का चिन्तन एक ऐसा चिन्तन है जिसमें प्रयत्न एवं भूल की प्रधानता होती है तथा समस्या के विभिन्न पहलुओं का आपसी संबंध बिना समझे-बूझे ही बालक उसका समाधान करना प्रारम्भ कर दते हैं। दूसरे प्रकार का चिन्तन अधिक होने से पहले प्रकार का चिन्तन स्वभावतः कम हो जाता है। तीसरे प्रकार का चिन्तन ऐसा चिन्तन है जो अंशतः उत्पादी तथा अंशतः अ-उत्पादी है एवं यान्त्रिक होता है शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को वरदाईमर द्वारा बताए गए चिन्तन के इन प्रकारों से बालकों के चिन्तन के सवरूप को समझने में काफी मदद मिली है।

6. **समृति-** गेस्टाल्ट मनोवैनिकों ने यह स्पष्ट किया कि स्मृति एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें समृति चिह्न में समय बीतने के साथ-ही साथ क्रमिक परिर्वतन होते रहते हैं। ऐसे क्रमिक परिर्वतन प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम के अनुकूल होते है। गिव्सन बार्टलेट तथा आलपोर्ट एवं पोस्टमैन ने कई प्रयोग करके गेस्टाल्टवादियों की उपर्युक्त विचारधारा का समर्थन किया है। इन मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट कर दया है कि मूल सामाग्रियों की धारणा में समय बीतने के साथ विकृति होती है, परन्तु इस विकृति का स्वरूप ऐसा होता है जिससे मूल सामाग्रियों का स्वरूप पहले से कुछ उन्नत हो जाता है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को गेस्टाल्टवादियों के इस योगदान से स्मृति का स्वरूप समझने में काफी मदद मिली है। शायद यही कारण है कि इन लोगों ने स्मरण के स्वरूप को पुनरुत्पादक न कहकर रचनात्मक कहा है।

स्पष्ट है कि गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी शिक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किए गए तथा इन योगदानों से शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को शिक्षार्थियों की कुछ खास-खास प्रक्रियाओं जैसे सीखना, चिन्तन तथा स्मृति आदि को समझाने में काफी मदद मिली हैं इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्कूल में शिक्षक, छात्र तथा प्रिन्सिपल एक साथ मिलकर शिक्षण वातावरण को उन्नत बनाने की कोशिश करते है।

7. **व्यवहारवाद**

   व्यवहारवाद का विकास 1913 के लगभग संरचनावाद के आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण के विरोध में जे0बी0 वाटसन के नेतृत्व में हुआ। वाटसन ने प्राणी के व्यवहार को मनोविज्ञान की विषय-वस्तु तथा बाह्य निरीक्षण को इसकी विधि माना। इससे शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में वस्तुनिष्ठ विधियों को विकासित होने में काफी सहायता मिली। वाटसन ने बच्चों के व्यक्तित्व विकास तथा चरित्र विकास में आनुवंशिकता की तुलना में वातावरण के महत्व पर अधिक बल दिया। उनके इस विचार से शिक्षा जगत् काफी प्रभावित हुआ। अब बच्चों के विकास में वातावरण की वांछनीयता तथा अनुकुलता पर अधिक बल दिया जाने लगा।

शिक्षा मनोविज्ञान के विकास में उत्तरकालीन व्यवहारवादियों ने अधिक ठोस योगदान दिया। बी0एफ स्किनर, ई0 आर0 गुथरी, ई0 सी0 टौलमैन तथा सी0ई0 हल के नाम उत्तरकालीन व्यवहारवादियों के रूप उल्लेखनीय है। इनमें स्किनर के योगदान सबसे अधिक तथा महत्वपूर्ण है। उन्होने 1938 में सीखने के प्रवर्तन अनुकूल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि प्रबलन को प्राप्त करने मे प्राणी का व्यवहार साधनात्मक होता है। इसी आधार पर इस विचार से बच्चों की शिक्षा को सफल बनाने तथा अच्छी आदतों को सीखने तथा बुरी आदतों के निराकरण में काफी मदद मिली। स्किनर ने नियोजित शिक्षण के संबंध में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्किनर ने सीखने पर बल दिया, जिसमें शिक्षार्थी को प्रबलन लगातार मिलता रहता है। जब वह सही उत्तर बदलाता है तो नकारत्मक

पुनर्बलन मिलता है। सीखने की विधि वर्तमान समय में काफी उपयोगी बन गयी है। इसी तरह स्किनर ने बच्चों के भाषा-विकास के संबंध में भी योगदान दिया। उन्होने भाषा-विकास में अनुकरण तथा प्रबलन के महत्व का उल्लेख किया।

व्यवहारवाद की विशेषताएँ

व्यवहारवाद की स्थापना जे0 बी0वाटसन द्वारा 1913 में जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय में की गई जहाँ वे मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। इस स्कूल की स्थापना संरचनावाद तथा कार्यवाद जैसे सम्प्रदायों के विरोध में वाटसन द्वारा की गई। यह स्कूल अपने काल में विशेषकर 1920ई0 के बाद काफी अधिक प्रभुत्वशाली रहा जिसके कारण इसे मनोविज्ञान में ‘द्वितीय बल’ के रूप में मान्यता मिली। ‘प्रथमबल’ की मान्यता मनोविश्लेषण जैसे सम्प्रदाय को दी गई थी।

वाटसन ने सीखना भाषा विकास चिन्तन स्मृति तथा संवेग के क्षेत्र में जो अध्ययन किया वह विशेष रूप से शिक्षा मनोविज्ञान के लिए काफी महत्वपूर्ण है। वाटसन ने यह स्पष्ट रूप से बताया कि सभी तरह की आदतें दो तरह के नियम द्वारा सीखी जा सकती हैं-बारबांरता का नियम तथा अभिनवता का नियम बाद में उन्होंने सीखना के लिए अनुबन्धन के नियम को भी महत्वपूर्ण बताया। उउन्होंने रेनर के साथ 1920 ई0 में अलबर्ट नामक के एक बच्चे पर प्रयोग कर यह देखा कि बच्चा अनुबन्धन के द्वारा डर जैसे संवेग को दिखाना सीख लेता है। वाटसन के इन शोधों से शिक्षा मनोविज्ञान में क्रान्किारी परिवर्तन हुआ और शिक्षा मनोविज्ञानी भाषा विकास तथा संप्रत्यय विकास के क्षेत्र में नए ढंग से प्रयोग करने लगे। वाटसन ने चिन्तन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। वाटसन के अनुसार चिन्तन की प्रक्रिया में बच्चे अपने-आप से बातचीत करते पाए जाते हैं। चिन्तन करते समय वागिन्द्रियाँ में पेशीय संकुचन होते है। उन्होंने चिन्तन में अन्य दूसरे अंगो जैसे अँगुलियों की पेशियों में गति आदि होने का दावा किया जिसकी बाद में जैकोबसन तथा मैक्स ने अपने-अपने प्रयोगों से पुष्टि भी की है। समृति की व्याख्या करते हुए वाटसन ने कहा कि इसमें तीन उपप्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं पहला किसी आदत या कौशल को पहले व्यक्ति सीखता है। दूसरा जब दूसरा, इन सीखे गए आदत या कौशल का अभ्यास नहीं होता, तो व्यक्ति उसे भूल जाता है। तीसरा व्यक्ति दिए गए पाठ को पुनः प्रयास करके फिर से सीख सकता हैं जब व्यक्ति पहले से सीखे गए पाठ का प्रत्यास्मरण करने में असमर्थ रहता है तब इसका मतलब यह हुआ कि मूल सीखना के दौरान जो पेशीय तंत्र विकसित हुए थे, वे टूट गए। वाटसन ने पर्यावरणी कारकों को बच्चों के व्यक्तित्व विकास में काफी महत्वपूर्ण बताया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा मनोवैज्ञानिकों द्वारा पर्यावरणीय कारकों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। क्योंकि इससे बच्चों के व्यक्तित्व का उचित विकास संभव था। वाटसन द्वारा पर्यावरणी कारकों पर इतना अधिक जोर डाला गया कि उन्होंने स्पष्ट रूप से यह दावा किया कि यदि उन्हें एक दर्जन भी स्वस्थ बच्चे दिये जाते हैं तो बच्चे की क्षमता, प्रजाति, योग्यता आदि पर बिना ध्यान दिए ही वे उन्हें चाहे तो डॉक्टर, इंजीनियर, कलाकार या भिखारी कुछ भी उचित वातावरण प्रदान कर बना सकते हैं। वाटसन के इस विचार को पर्यावरणवाद की संज्ञा दी

गई तथा उन्होंने इसके आधार पर एक विशेष कार्यक्रम चलाया जिसे पर्यावरणीय नीतिशास्त्र कहा गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वयस्क के व्यक्तित्व संबंधी दोषों को उचित वातावरण प्रदान कर उसे पुनर्शिक्षा देना तथा सुधार करना था।

वाटसन के अलावा कुछ अन्य व्यवहारवादी भी हैं जिनका योगदान शिक्षा और शिक्षा मनोविज्ञान के लिए विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इसमें ई0 आर0गुथरी, सी0एल0 हल, तथा बी0एफ0 स्कीनर का नाम अधिक लिया जाता है। इन व्यवहारवादियों को 'परवर्ती व्यवहारवादी' कहा जाता है। गुथरी ने अन्य बातों के अलावा यह बताया कि सीखने के लिए प्रयास की जरुरत नहीं होती और व्यक्ति एक ही प्रयास में सीख लेता है। इसे उन्होंने इकहरा-प्रयास सीखना की संज्ञा दी। गुथरी ने इसकी व्याख्या आगे करते हुए कहा कि व्यक्ति की सरल अनुक्रिया जैसे पेंसिल पकड़ना, माचिस जलाना आदि एक ही प्रयास में सीख लेता है। इसके लिए उसे किसी अभ्यास की जरूरत नहीं होती है। परन्तु, जब वह कोई जटिल कार्य जैसे लिखना, साइकिल चलाना आदि सीखता है, तो इसमें अभ्यास की जरूरत पडती है। गुथरी के इस विचार का प्रभाव शिक्षा मनोविज्ञान पर सीधा पडा और उसी ढंग से शिक्षा मनोवैज्ञानिक बच्चें में साधारण तथा सरल पाठ को सीखने के लिए अभ्यास कराने पर उतना बल न डालने की सिफारिश की तथा जटिल पाठ के सीखने पर बल डाला। अधिक-से-अधिक अभ्यास करने पर बल डाला। इससे शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। गुथरी ने एक और विशेष तथ्य पर प्रकाश डाला जो शिक्षा के लिए काफी लाभप्रद साबित हुआ और वह था बुरी आदतों से कैसे छुटकारा पाया जाए। इसके लिए गुथरी ने निम्नलिखित तीन विधियों का प्रतिपादन किया।

1. सीमा विधि
2. थकान विधि
3. परस्परविरोधी उद्दीपन की विधि

इन तीनों विधियों की उपयोगिता शिक्षा मनोविज्ञान के लिए काफी अधिक बताई गई है, जो निम्नांकित है-

1. **सीमा या देहली विधि** - इस विधि में अवांछनीय अनुक्रिय उत्पन्न करनेवाला उद्दीपन को तीव्रता की देहल से नीचे करके व्यक्ति के सामने उपस्थित किया जाता है। स्वाभाविक है कि इससे व्यक्ति प्रारंभ में कोई अनुक्रिया नहीं करेगा। जब उद्दीपन की तीव्रता देहली से ऊपर हो जाती है, तो भी व्यक्ति उसके प्रति कोई अनुक्रिया नहीं कर पाता है क्योंकि तब तक उसमें उस उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया न करने की नई आदत सी बन जाती है। इस विधि का शिक्षा मनोविज्ञान में काफी स्वागत किया गया है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि का प्रयोग कर बच्चों में डर, क्रोध आदि जैसे संवेगात्मक अनुक्रिया को कम करने में अच्छी सफलता प्राप्त की।

2. **थकान विधि**- इस विधि में बालकों की बुरी आदतों अवांछनीय अनुक्रिया को दूर करने के लिए बाल से उस अनुक्रिया को बार-बार तब तक कराया जाता है जब तक वह थक न जाए। स्वाभाविक है कि थक जाने पर उसमें उस अनुक्रिया को पुनः न करने की इच्छा उत्पन्न हो जाएगी और इस तरह से बालक की बुरी आदत समाप्त हो जाएगी। इस विधि का भी शिक्षा मनोवैज्ञानिकों द्वारा काफी स्वागत किया गया और बालक की अवांछनीय आदतों को दूर करने में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया।
3. **परस्पर विरोधी उद्दीपन की विधि**- इस विधि में अवांछित अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपन को अन्य उद्दीपन जो अवांछित अनुक्रिया के विरोधी अनुक्रिया उत्पन्न कर सकता है के साथ व्यक्ति के सामने बार-बार दिया जाता है। कुछ प्रयासों के परिणाम यह होता है कि मूल उद्दीपन (जिससे अवांछित अनुक्रिया उत्पन्न होती थी) नई अनुक्रिया (यानी अवांछित अनुक्रिया के विरोधी अनुक्रिया अर्थात् वांछित अनुक्रिया) के साथ संबंधित होती जाती है और इस तरह से व्यक्ति में अवांछित अनुक्रिया अपने आप कम हो जाती है। गुथरी इस विधि का प्रयोग एक कालेज छात्रा, जो ध्यानभंग करने वाला आवाज के कारण पाठ्य पुस्तक का अध्ययन नहीं कर पाती थी। इस सफलतापूर्वक किया। छात्रा ने इस तरह की आवाज में पाठ्य पुस्तक छोड़कर मनोरंजक उपन्यास पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रक्रिया को कई दिनों तक दुहराया गया। धीरे-धीरे उस छात्रा की आवाज के बीच आदत बन गई। बाद में फिर वह अपनी पाठ्य पुस्तक की उस तरह से आवाज के बीच भी बिना किसी तरह की ध्यानभंगता का अनुभव किए ही पढ़ने में सफल हो गई। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने विशेषकर स्क्वांज तथा रिली एवं लेविस ने इस विधि को शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में एक अनुपम देन माना है।

स्किनर ने जो एक प्रमुख परवर्ती व्यहारवादी है, शिक्षा एवं शिक्षा मनोविज्ञान में असमानान्तर योगदान किया है। इनके योगदानों ने शिक्षा के क्षेत्र ने एक नया अध्याय प्रारंभ किया है। स्कीनर का प्रोग्राम सीखना तथा भाषा विकास का सिद्धान्त ने शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में हलचल मचा दिया। अतः इन दोनों पर प्रकाश डालना आवश्यक है-

1. **प्रोग्राम या कार्यक्रमित सीखना** - स्किनर वर्ग में शिक्षक द्वारा अध्यापन किए जाने की पौराणिक विधि जो मूलतः भाषण के माध्यम से होता था, काफी असंतुष्ट थे, क्योंकि इस विधि में सभी शिक्षार्थी को सीखने का मौका समान नहीं मिल पाता था। तेज बुद्धि के शिक्षार्थी जल्द सीख लेते थे परन्तु औसत तथा मन्द बुद्धि के शिक्षार्थी काफी पीछे रह जाते थे। इसे दूर करने के उद्देश्य से स्किनर ने प्रोग्राम सीखना विधि का प्रतिपादन किया। इस विधि में सीखे जाने वाले पाठ को कई छोटे-छोटे भागों या एकांशों में बाँट दिया जाता है। ऐसे भाग को फ्रेम कहा जाता है। प्रत्येक फेम को शिक्षार्थी के सामने एक एक करके उपस्थिति किया जाता है। शिक्षार्थी को उसका उत्तर लिखना होता है। इसके बाद अध्यान

मशीन के माध्यम से उस फ्रेम का उत्तर दिख दिया जाता है। यदि शिक्षार्थी द्वारा लिखा गया उत्तर सही हुआ तो वह एक पुनर्बलन का कार्य करता है और उसे शिक्षार्थी सीख लेता है। यदि उत्तर गलत हो जाता है तो भी उसे सही उत्तर जानने का एक मौका मिलता है जिसका लाभ उठाकर वह भविष्य में पुनर्बलन पाने की कोशिश करता है। इस तरह से एक-एक करके यह प्रोग्राम के सभी फ्रेमों के सही उत्तर को सीख लेता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होता हैं कि इसमें शिक्षार्थी दिए हुए पाठ को अपनी गति से छोटे-छाटे खण्डों में सीखते हैं। इस तरह से स्पष्ट है कि स्किनर का प्रोग्राम सीखना में सतत पुनर्बलन की भूमिका महत्वपूर्ण है। आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक इसे एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अध्यापक विधि मानते हैं और अनेक तरह के पाठों को सिखाने में उन्हें सफलता भी मिल चुकी है।

2. **भाषा विकास का सिद्धान्त** - शिक्षा मनोविज्ञान के लिए स्किनर की एक अनुपम देन भाषा विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाना है। उन्होंने यह बताया कि बच्चों में भाषा विकास अनुकरण तथा पुनर्बलन के कारण होता है। बच्चे वयस्क के समान बोलने का अनुकरण करते हैं और अपने प्रयास में सफल होने पर वयस्क उनकी तारीफ तथा प्रशंसा करते हैं जो एक तरह का पुनर्बलन का काम करता है। इसके परिणाम स्त्रुप बच्चे उस शब्द या वाक्य को बारबार दुहराते हैं और वे धीरे-धीरे उसे सीख लेते हैं। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को स्किनर द्वारा प्रतिपादित भाषा विकास के इस सिद्धानत द्वारा बालकों के भाषा विकास में हुई विभिन्नता की सहज ढंग से व्याख्या करने में काफी सफलता प्राप्त हुई है।

इस तरह स्पष्ट है कि व्यवहारवाद का योगदान शिक्षा एवं शिक्षा मनोविज्ञान में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा है।

शिक्षा मनोविज्ञान की इस पृष्ठभूमि में आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था की तुलना में काफी परिवर्तित हो चली। शिक्षा के स्वरुप, उद्देश्य, क्षेत्र, दृष्टिकोण आदि बहुत अंशों में परिवर्तित हो गये। वर्तमान शिक्षा ज्ञानकेन्द्रित या विषय केन्द्रित न होकर बालकेन्द्रित हो गयी है बालकों का सर्वांगीण विकास ही आज शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है। शिक्षा मनोविज्ञान इसी उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर है।

अभ्यास प्रश्न

11. मनोविज्ञान के ________ सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे।
12. व्यवहारवाद की स्थापना __________ द्वारा की गई।

2.7 सारांश

आपने इस ईकाई ले जाना कि शिक्षा-मनोविज्ञान का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। छात्र और शिक्षक की अनेक समस्याओं के समाधान का इसमें प्रयास किया जाता है। अध्यापक के लिए इसका ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। शिक्षण में सुधार लाने की दृष्टि से यह अत्यंत उपयोगी है। छात्र के व्यक्तित्व, बुद्धि, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास की प्रकृति एवं गति से परिचित होकर अध्यापक अपने शिक्षण को प्रभावी बना सकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है। इसमें शिक्षार्थी सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप तथा परिस्थिति, मापंन एवं मूल्यांकन आदि का विशेष रुप से अध्ययन कर शिक्षा को अर्थपूर्ण एवं लाभप्रद बनाने का प्रयास किया जाता है।

मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों तथा उनकी विशेषताओं से अवगत हुए, संरचनावाद, कार्यवाद, व्यवहारवाद तथा गेल्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के महत्वपूर्ण योगदानों से शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय परिवर्तन आए।

2.8 शब्दावली

- सर्वांगीण विकास - व्यक्तित्व के सभी पहुलओं (मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, शारीरिक, नैतिक, चारित्रिक) का विकास।
- परिमार्जन - सकारात्मक परिवर्तन
- अधिगम अनुभव - सीखने की प्रक्रिया के दौरान विभिन्न क्रियाओं द्वारा होने वो अनुभव।
- **CARVD-** Completion Arithmetic, Reasoning, Vocabulary & Direction Test**.**
- निर्देशन - ऐसी प्रक्रिया जिसमें एक व्यक्ति को किसी जानकार द्वारा सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह अपनी क्षमताओं को समझकर अपनी विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में सफलतापूर्वक उपयोग कर पाता है।
- अन्र्तदर्शन - स्वयं का अवलोकन करना।
- पुनर्बलन -पुनर्बलन से तात्पर्य किसी अपेक्षित अनुक्रिया के प्रतिफल के रूप में किसी ऐसे सुखकारी उद्दीपक की प्रस्तुति है जो प्राणी को अपेक्षित अनुक्रिया बार बार करने के लिये प्रेरित करता है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सर्वांगीण
2. व्यवहार
3. शैक्षिक
4. असत्य
5. सत्य
6. मनोविज्ञान
7. अधिगम/सीखने
8. शिक्षा मनोविज्ञान की अध्यापक के संदर्भ में कोई दो उपयोगिता निम्न हैं-
   i. अध्यापको को शिक्षा सम्बन्धी उचित दृष्टिकोण प्रदान करता है।
   ii. अध्यापकों को बालक के स्वभाव से परिचित कराता है।
9. लिण्डग्रेन द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान के प्रमुख कार्यक्षेत्रों को सूचीबद्ध कीजिए।
   i. शिक्षार्थी
   ii. सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप
   iii. सीखने की परिस्थिति
   iv. मापन एवं मूल्यांकन
   v. निर्देशन तथा मानसिक स्वास्थ्य
10. निर्देशन निम्न स्तरों पर किया जाता है-
   i. व्यैक्तिक निर्देशन
   ii. शैक्षिक निर्देशन
   iii. व्यावसायिक निर्देशन
11. संरचनावाद
12. जे0 बी0वाटसन

2.10 संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, डा0 एस0पी0, (2007) शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. सिंह, अरुण कुमार (2001), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।
3. सुलेमान, डा0 मुहम्मद (2007), उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली।
4. वालिया, डा0 जे0एस0 (2008) अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, अहम पाल पब्लिशर्श जालन्धर।

5. मंगल, एस0के0, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेन्तीस हाल प्राइवेट लि0, नई दिल्ली।
6. माथुर, डा0 एस0एस0, (2007) शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
7. पाण्डेय, डा0 राम शक्ल, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
8. माथुर, डा0 एस0एस0, (2007) शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
9. पाण्डेय, डा0 राम शक्ल, (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
10. Chauhan, S.S. (1987) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi.

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को समझाते हुए उसकी उपयोगिता तथा कार्यक्षेत्र का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. व्यवहारवाद तथा गेस्टाल्ट सम्प्रदाय में तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

इकाई 3- शिक्षा में मनोविज्ञान की विधियाँ
Methods of Psychology in Education

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अन्तर्निरीक्षण विधि या आत्मगत प्रेक्षण विधि
3.4 प्रेक्षण विधि
3.5 प्रयोगात्मकविधि
3.6 सहसंबंधात्मक विधि
3.7 जीवन-वृत विधि
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान सभी प्रकार के सजीव पदार्थों के व्यवहार के अध्ययन से अपना सम्बन्ध रखता है। व्यवहार के अध्ययन हेतू मनोविज्ञान में जिन विभिन्न विधियों की सहायता ली जाती है उन्हें निम्न प्रकार लिपिबद्धकिया जा सकता है -

- अन्तदर्शन विधि Introspection Method
- प्रेक्षण विधि Observation Method
- मनोविश्लेषण विधि Psycho-analytic
- प्रयोगात्मक विधि Experimental Method
- सर्वेक्षण विधि Survey Method
- उपचारात्मक विधि Clinical Method
- वैयक्तिक अध्ययन विधि Case-study Method

किसी विधि का प्रयोग व्यवहार अध्ययन के लिए कब किया जाए यह कई बातों पर निर्भर करता है।किसके व्यवहार का अध्ययन करना है । इस व्यवहार अध्ययन का क्या प्रयोजन है। व्यवहार अध्ययन के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ तथा उपकरण उपलब्ध है आदि बातों पर विचार करके ही व्यवहार अध्ययन के लिए किसी उपयुक्त विधि का चयन किया जाता है । यह अध्ययन अधिक से अधिक तर्क समत विज्ञानमय वस्तुनिष्ठ हो तथा इसके परिणामों की सत्यता तथा वैधता आदि की परख भलीभॉंती हो सके सोचकर मनोविज्ञान अध्ययनकर्ता तथा मनोविज्ञानकों द्वारा समयानुसार उपयुक्त विधियों के अनुसरण का ही प्रयत्न किया जाता है । ऐसी ही कुछ उपयुक्त प्रमुख विधियों की चर्चा हम आगे के पृष्ठोंमें कर रहे हैं ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- मनोविज्ञान की विभिन्न विधियों की सूची बना पायेंगे।
- अन्तर्निरीक्षण विधि या आत्मगत प्रेक्षण विधि की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रेक्षण विधि का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रयोगात्मकविधि की विवेचना कर पायेंगे ।
- सहसंबंधात्मक विधि का अपने शब्दों में वर्णन कर पायेंगे।
- जीवन-वृत विधि की चर्चा कर पायेंगे।

3.3 अन्तर्निरीक्षण विधि Introspection Method

मनोविज्ञान अध्ययन भी एक विधि है जिस पर किसी सम्प्रदाय विशेष का एकाधिकार नहीं हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इस विधि का काफी बोलबाला रहा । निरिक्षण करने की यह एक विशिष्ट पद्धति है जिसे मनोविज्ञान नेकाफी लम्बे समय तक अपनाया । मनोविज्ञान में यह विधि प्रभाव की विधि के नाम से जानी जाने लगी । जिसके अन्तर्गत इन्द्रिय संवेदना सम्बंधी प्रयता शास्त्र किए गए और उनका विश्लेषण किया गया ।

अन्तर्निरीक्षण का अर्थ एवं संकल्पना

अन्तर्निरीक्षण का अर्थ होता है अन्तस या अन्दर का निरिक्षण । दूसरे श्ब्दों में, जब कोई व्यक्ति अपने भीतर की अनुभूतियों का स्वयं निरीक्षण करता है तो इसे अन्तर्निरीक्षण कहा जाता है । इस विधि का प्रतिपादन विलियम वुण्ट तथा उनके शिष्य टिचेनर ने जिन्होंने संरचनावाद नामक स्कूल

की स्थापना की, द्वारा किया गया। इन लोगों ने मनोविज्ञान की चेतन अनुभूति का विज्ञान कहकर परिभषित किया था और बतलाया था कि चेतन अनुभूतियें कोअध्ययन करने की विधि सिर्फ अन्तर्निरीक्षण ही है। इन लोगों ने चेतन अनुभूति के तीन तत्व बताएँजो इस प्रकार - संवेदन ,भाव तथा प्रतिमा यदि कोई व्यक्ति अपने चेतन अनुभूति का वर्णन इन तत्वों के रूप में करता है तो यह वर्णन निश्चित रूप से अन्तर्निरीक्षण कहलायेगा।

जब व्यक्ति अपनी चेतन अनुभूतियों का वर्णन इस प्रकार करता है कि उसमें एक खास संवेदन, भाव एवं प्रतिमा सम्मिलित होती है, तो उसे इम अन्तर्निरीक्षण की संज्ञा देते हैं। कभी-कभी देखा गया है कि व्यक्ति अपने चेतन अनुभूति के संवेदन,भाव एंव प्रतिमा आदि का वर्णन नहीं करता है।

टिचेनर के अनुसार अन्तर्निरीक्षण विधि की सफलता निम्नांकित बातों पर निर्भर करती है।

1. अन्तर्निरीक्षण करने वाले व्यक्ति में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह तथा पक्षपात की भावना न हो।
2. अन्तर्निरीक्षण करने वाले व्यक्ति को अपने ध्यान या अवधान की प्रकिया पर पूर्ण नियंत्रण हो।
3. अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से तरोताजा हो। उसमें थकान तथा मानसिक उब आदि की भाव न हो।
4. अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति को अन्तर्निरीक्षण की प्रक्रिया में अभिरूचि हो तथा उसकी चितप्रकति शांतहो।

गुण

अन्तर्निरीक्षण विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित है -

1. अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं जैसे - उसकी इच्छाओं , भावों का अध्ययन एवं विश्लेषण ठीक ढंग से हो पाता है। कुछ मानसिक समस्याएँ ऐसी होती हैं जिन्हें सिर्फ अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है। जैसे -यदि कोई अध्ययनकर्ता यह देखना चाहता है कि चिन्तन की प्रक्रियाओं में मानसिक प्रतिमाओं का हाथ है या नहींतो इसका अध्ययन अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा ही ठीक ढंग से हो सकता है।
2. अन्तर्निरीक्षण विधि एक तरह का आत्म-निरीक्षण है। यदि हम आत्मर्निरीक्षण निष्पक्ष एवं बिना किसी दबाव के करते हैं तो मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इससे बढ़कर और कोई दूसरी विधि नहीं हो सकती है।
3. अन्तर्निरीक्षण विधि मनोविज्ञान की सबसे पहली तथा पुरानी विधि के सहारे ही मनोवैज्ञानिक चेतन अनभूतियों का अध्ययन कर मनोविज्ञान का दर्शनशास्त्रसे अलग कर एक प्रयोगात्मक रूप दे पाये। अत: यह कहा जा सकता है कि अन्तर्निरीक्षण विधि एक ऐसी विधि है जिसके सहारे मनोविज्ञान को एक प्रयोगत्मक स्तर मिल पाया है।

दोष

अन्तर्निरीक्षण विधि के कुछ दोष भी हैं। इसके प्रमुख दोष निम्ननांकित हैं -

1. मनोवैज्ञानिकों न अन्तर्निरीक्षण विधि का सबसे बड़ा दोष यह बतलाया है कि यह विधि व्यक्तिगत तथा आत्मनिष्ठ होती है। व्यक्ति अन्तर्निरीक्षण करके जो भी कह रहा है, उसे मानना ही है। ऐसा भी संभव है कि उसे अनुभूति कुछ और हो रही हो और वह कह कुछ और ही बतारहा हो।
2. व्यक्ति जब अपने चेनत अनुभूतियों का अन्तर्निरीक्षण करना शुरू करता है तो ऐसा देखा गया है कि धीरे-धीरे अनुभूतियाँअपने आप ही परिवर्तित होना शुरू हो जाती है। फलत: उनका अन्तर्निरीक्षण ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।जैसे - क्रोध की अवस्था में होने वाले अनुभूतियों का आत्मनिरीक्षण क्रोध की अवस्था के समाप्त होने के तुरंत बाद कर लेना चाहिए। इस तरह की प्रकिया को मनोवैज्ञानिक ने अनुदर्शन की संज्ञा दी है। यद्यपि अनुदर्शन द्वारा अन्तर्निरीक्षण विधि का यह दोष कुछ हद तक कम हो जाता है, परन्तु यदि अनुदर्शन कुछ समय बाद यदि किसी कारण से किया जाता है तो इससे भी कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल पाता है।
3. कुछ अनुभूतियाँ स्वभाव से होती है जिनका अध्ययन अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा करना संभव नहीं होता है क्योंकि व्यक्ति इन अनुभूतियों से अवगत तो रहता है, परंतु उसकीअभिव्यक्ति भाषा के रूप में नहीं कर सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के दोष को अन्तर्निरीक्षण विधि को दोष न मानकर भाषा का दोष माना है। सच्चाई यह है कि इसमें भाषा का दोष तो है ही परन्तु इस विधि का भी दोष है। कोई विधि उस समय वैज्ञानिक न रहकर अवैज्ञानिक हो जाती है भाषा - संबंधी दोष से ग्रसित हो जाती है। इसका मतलब तब यह हुआ कि अन्तर्निरीक्षण विधि वैज्ञानिक नहीं है।
4. अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग पशु, पक्षियों,छोटे,छोटे बालकों एवं पागलों आदि पर नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे किसी भी परिस्थितिमेंअपनी चेतना अनुभूतियों को अध्ययन कर उसकी अभिव्यक्ति भाषाद्वारा ठीक से नहीं कर सकते हैं।
5. अन्तर्निरीक्षण विधि में अनुभव करने वाला तथा अनुभूतियों का निरिक्षण करनेवाला व्यक्ति एक ही होता है। अत: एक ही व्यक्ति को दोहरा कार्य करना पड़ता है। इस तरह का दोहरा कार्य सभी व्यक्ति ठीक ढंग से सभी तरह की मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में नहीं कर सकते हैं। कुछ लोग यदि ऐसा कर भी लेते हैं तो वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उचित नहीं हो पाता है क्योंकि कुछ ऐसी मानसिक प्रक्रियाए हैंजिन्हें व्यक्ति चाहकर भी ठीक ढंग से अनुभव एवं निरीक्षण साथ-साथ नहीं कर सकता है।
6. कुछ मनौवैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग हर परिस्थिति में संभव नहीं है। जैसे-जब व्यक्ति लापरवाह, मस्तमौला तथा मानसिक रूप् से अधिक चंचल होता है, तो वह अपनी मानसिक प्रक्रियाओं यानी अनुभूतियों का अध्ययन ठीक ढंग से नहीं कर पायेगा। फलत: अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग उचित नहीं होगा।

इस तरह से हम देखते हैं कि अन्तर्निरीक्षण विधि के दोष तथा गुण दोनों ही हैं। इन गुणों एंव दोषों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि अन्तर्निरीक्षण विधि को मनोविज्ञान की विधि के रूप में पुर्णरूपेण अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि आज भी इस विधि का उपयोग प्रयोगात्मक विधि के पूरक के रूप में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. अन्तर्निरीक्षण विधि की दो विशेषताएं लिखिए।
2. अन्तर्निरीक्षण विधि के कोई दो दोषलिखिए।
3. विलियम वुण्ट ने किस विधि का प्रातिपादन किया है ?
4. चेतन अनुभूति के तीन तत्व कौन - कौन से हैं ?
5. टिचेनर के अनुसार अन्तर्निरीक्षण विधि की सफलता किन -किन बातों पर निर्भर करती है ?

3.4 प्रेक्षण विधि या अवलोकन विधि Observation Method

निरीक्षण विधि व्यवहार के अध्ययन करने की एक सुविधाजनक और उपयुक्त विधि है। अपने दिन - प्रतिदिन की जिन्दगी में बालक जिस प्रकार का व्यवहार करते है। उनका उसी रूप निर्रीक्षण करते रहने से उनके व्यवहार और व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों से भली-भाँति परिचित हुआ जा सकता है। कई बार हमें जिस प्रकार के व्यवहार और व्यक्तित्व सम्बन्धी गणों का विशेष रूप से पता लगाना होता है उन व्यवहारों को घटित होने के लिए ऐसी परिस्थितियाँभी पैदा करनी होती है जैसे किसी व्यक्ति की ईमानदारी की परीक्षा लेने के लिए जानबूझ कर कोई मूल्यावान वस्तु या धनराशि उसके लिए छोड़ दी जाए। परिस्थिति चाहे स्वाभविक रूप से पैदा हो या कृत्रिम रूप से पैदा की जाएं उनमें जिस प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से बालकों द्वारा किया जाता है उसका निरिक्षणकर उनके व्यवहार एवं व्यक्तित्व गुणों के बारे में निष्कर्ष निकालना प्रेक्षण विधि के कार्यक्षेत्र में आता है।

प्रेक्षण विधि का अर्थ एवं संकल्पना

मनोविज्ञान की दूसरी प्रमुख विधि है सन् 1913 में जब वाटसन ने व्यवहारवाद की स्थापना की तो मनोविज्ञान को नये ढंग से परिभाषितकरते हुए यह कहा गया कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है जिसकी अध्ययन विधि अन्तर्निरीक्षण न होकर प्रेक्षण विधि है। तभी से प्रेक्षण का जन्म हुआ औरवाटसन इसके प्रतिपादक हैं।आज भी यह विधि मनौविज्ञानिक अध्ययनोंकी एक प्रमुख विधि बनीहुई है।

इस विधि में अध्ययनकर्ता प्राणियोंके ही व्यवहारों को निष्पक्षभावसे प्रेक्षण या अवलोकन करता है। अपने अवलोकन के आधार पर वह एक विशेष रिपोर्ट तैयार करता है जिसका विश्लेषण करवह उस प्राणी के व्यवहारों का अवलोकन वह भिन्न-2 परिस्थितियों में करता है।

वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण की मुख्य दो विशेषताएँहोती हैं -

1. प्रेक्षण हमेशाउद्देश्यपूर्ण तथा सूक्ष्म होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षक किसी उद्देश्य से प्राणी के व्यवहार के किसी खास पहलू पर अधिक ध्यान देते हुए प्रेक्षण करता है।
2. प्रेक्षण का उद्देश्य अध्ययन नियमों से संबंधित चरों के बीच पारस्परिक संबंधों को पता लगाना का पता लगाना होता है।

प्रेक्षण निम्नांकित तीन प्रकार के होते हैं -

(क) सहभगी प्रेक्षण

(ख) असहभगी प्रेक्षण

(ग) स्वाभविक प्रेक्षण

इन तीनों तरह के प्रेक्षण का वर्णन निम्नांकित हैं -

(क) सहभगी प्रेक्षण - प्रेक्षण की इस विधि में प्रेक्षक उन व्यवहारों में हाथ बटाते हुए प्रेक्षण करते हैं जिनका उन्हें अध्ययन करना होता है। यहाँ प्रेक्षक भी लोगों के काम को उनके साथ मिलाकर करते हैं तथा उनके व्यवहार का प्रेक्षण भी करते जाते हैं। जैसे - उद्योग या किसी व्यवसाय में कार्यरत श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए संभव है कि मनोवैज्ञानिक इस उद्योग या व्यवसाय में एक श्रमिक के रूप में अपने आप को नामांकन कराकर उनके साथ मिलकर कार्य करें तथा साथ ही साथ उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता जाए।

(ख) असहभगी प्रेक्षण -प्रेक्षण की इस विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के उन व्यवहारों में हाथ नहीं बाँटता है जिनका उसे प्रेक्षण करना होता है प्रेक्षक दूर से ही व्यक्ति के व्यवहारों के प्रेक्षण प्रायः इस विधि से किया जाता है।

(ग) स्वाभविक प्रेक्षण-जब प्रेक्षण का उपयोग एक स्वाभाविक परिस्थिति में विशेष कर पषुओं के व्यवहारों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है , तो इस तरह के प्रेक्षण को स्वाभाविक प्रेक्षण कहा जाता है। जैसे मनोवैज्ञानिक प्रायः बन्दरों,मधुमक्खियों, प्यार,सामाजिक संगठन जैसे व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। प्राय: ऐसे पशुओं में वे आक्रामकता,प्यार ,सामाजिक संगठन जैसे व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। इस तरह के प्रेक्षण का उपयोग कभी-2 मानव शिशुओं के कुछ व्यवहारों के

अध्ययन में भी किया जाता है। इस तरह के प्रेक्षण की मुख्य विशेषतायह है कि प्राणी के व्यवहारों का अध्ययन उसमें बिना किसी तरह के फेर-बदलाव या जोड़-तोड़ के ही अर्थात जैसे वे अपने वास्तविक रूप में घटित होते हैं , अध्ययन किया जाता है। क्षेत्र अध्ययन विधि का विस्तृत वर्णन हम आगे एक स्वतंत्र विधि के रूप में करेंगे क्योंकि इसकी महता मनोविज्ञान में अन्य प्रेक्षणों की तुलना में अधिक है । ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेक्षण विधि वस्तुनिष्ठ है जिसमें अध्ययनकर्ता निष्पक्ष रूप से प्राणी के व्यवहारों का निरीक्षण एक विशेष परिस्थिति में करता है।

प्रेक्षण विधि द्वारा ही एक प्रेक्षण कर जोन्स तथा जोन्स ने यह दिखला दिया है कि भय एक जन्मजात संवेग नहीं बल्कि अर्जित संवेग होता है । इस अध्ययन में 15 बच्चों जिनकी औसत उम्र 15 से 21 महीनाथी, का एक समूह लियागया तथा 90 कॉलेज के छात्रों का दूसरा समूह लिया गया । इन दोनों समूहों के बीच बारी-2 से एक 6 फुट का लम्बा विषरहित साँप रखा गया। परिणाम में यह देखा गया कि 15 बच्चों में से दो बच्चे ही सांप देखकर डरे जबकि 90 में से 60 कॉलेज के छात्र विषरहित साँप को देखकर डर गये। इस अध्ययन के आधार पर जोन्स तथा जोन्स ने यह बतलाया कि कॉलेज के छात्र पहले से ही साँप को देखकर डरना सीख चुके थे। परन्तु छोटे बच्चों में ऐसी बात नहीं थी। यह अध्ययन निश्चित रूप से वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण का उदाहरण है क्योंकि प्रेक्षण स्वाभाविक परिस्थिति में किया गया और अध्ययनकर्ता ने निष्पक्ष भाव से बच्चों एवं कॉलेज के छात्रों के डर में होने वाले संवेगात्मक व्यवहार का प्रेक्षण कर विश्लेषण किया।

गुण

प्रेक्षण विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. इस विधि में प्रेक्षण वस्तुनिष्ठ तथा अवैयक्तिक होता है । फलस्वरूप, इससे प्राप्त निष्कर्ष काफी विश्वसनीय तथा वैध होते हैं । एक उदाहरण लीजिए अगर कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में जोर-2 से बोल रहा है एवं उसकी आँखें तथा चेहरा लाल है तो इसका प्रेक्षण करके कोई व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि व्यक्ति क्रोधित है। इस तरह से स्पष्ट है किइस विधि में जो प्रेक्षण होता है ,वह वस्तुनिष्ठ एवं अवैयत्कि होता है जिससे व्यक्ति को सही निष्कर्षपर पहुँचने में मदद मिलती है।
2. इस विधि ने मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र काफी विस्तृत कर दिया है। अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रयोग सिर्फ वयस्क व्यक्तियों पर ही किया जाता था।फलस्वरूप मनोविज्ञान में सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों की मानसिक प्रकियाओं का अध्ययन किया जाता था। परन्तु प्रेक्षण विधि का प्रयोग छोटे-2 बच्चों, वयस्कों , पागलों , अपाहिजों ,पशुओं आदि पर भी आसानी से किया जाता है। फलस्वरूप विधि के उपयोग से मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है।

3. इस विधि द्वारा एक समय में एक से अधिक प्राणियों के व्यवहारों का निरीक्षण आसानी से किया जा सकता है।जैसे यदि अध्ययनकर्ता भीड़ व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है तो विधि का प्रयोग काफी आसानी से करके उस तरह के व्यवहार के बारे में जाना जा सकता है।
4. इस विधि से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण काफी आसानी से किया जा सकता है क्योंकि प्रायः आँकडें आवृति प्रतिशतआदि में प्राप्त होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रेक्षण विधि से प्राप्त निष्कर्ष की वैधता काफी बढ़ जाती है।
5. चूँकि प्रेक्षण विधि में सांख्यिकीय विश्लेषण संभव है तथा साथ-2 इसके द्वारा कई व्यक्तियों का एक साथ अध्ययन किया जा सकता है, अत: इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण अन्य दूसरे व्यक्तियों के लिये भी काफी दृढ़ता से की जा सकती है।

दोष

इस विधि के प्रमुख दोश निम्नांकित है -

1. प्रायः यह देखा गया है कि प्रेक्षण करते समय प्रेक्षण की अपनी पूर्वाग्रह आवश्यकताएँ मनोवृतियाँआदि का भी प्रभाव उनके प्रेक्षण पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कह जा सकता है कि प्रेक्षण द्वारा किया गया प्रेक्षण वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में प्राप्त निष्कर्ष बहुत अथिक विश्वसनीय तथा वैध नहीं रह जाता।
2. इस विधि में प्राणी के व्यवहारों का प्रेक्षण कर उसके मानसिक क्रियओं के बारे में जानने की कोशिश की जाती है। परन्तू इस दिशा में हमेशा सफलता प्रेक्षक को नहीं भी मिल सकती है ।एक उदाहरण लीजिए गाँव में अभी भी जब दो स्त्रियाँ एक -दूसरे से काफी दिन पर मिलती है तो अपनी खुशी प्रकट करने के लिये रोतीं हैं। अब कोई भी प्रेक्षक रोने के इस व्यवहार का प्रेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि दोनों स्त्रियाँ किसी कारण से दु:खी है जबकी सच्चाई यह है कि ये दोनों स्त्रियाँ अपनी खुशी प्रकट कर रही हैं। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण के आधार पर हमेशा मानसिक प्रकियाओं का सही-2 अर्थ निकालना संभव नहीं है।
3. इस विधि में प्रेक्षण स्वाभाविक एंव अनियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्राप्त निष्कर्ष की व्याख्या उचित कारण-परिणाम संबंध के रूप में नहीं की जा सकती है। जैसे उपर में जोन्स तथा जोन्स के ही अध्ययन को लें। कॉलेज के छात्र साँप देखकर डर जाते हैं ।यहाँ डरने की सांवेगिक प्रकिया किस कारण हुई ,कहना मुश्किल है। साँप के आकार से भी छात्रों में डर हो सकता है , उसके भयावह रूप से भी डर हो सकता है , उसके चाल से भी डर उत्पन्न हो सकता है, आदि। अत: परिणाम (डर) किस कारण से उत्पन्न हुआ, नहीं कहाँ जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इस विधि में कारण-परिणाम संबंध का पता लगाना कठिन है क्योंकि प्रेक्षण अनियंत्रित एवं स्वाभविक परिस्थिति में की गयी थी।

4. प्राणियों के कुछ व्यवहार ऐसे भी होते है जिनका अध्ययन वस्तुनिष्ठ विधि से करना संभव नहींहै।उदाहरणार्थ, स्त्री-पुरूष के लैंगिक व्यवहार का अध्ययन प्रेक्षण विधि करना संभव नहीं है क्योंकि कोई भी स्त्री-पुरूश ऐसा नहीं चाहेंगे कि उसके लैंगिक व्यवहार का प्रेक्षण कोई दूसरा व्यक्ति करे।

इस तरह से हम देखते हैं कि वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि के गुण तथा दोनों ही है। इन दोनों हीं हैं। इन गुण-दोष को ध्यान में रखते हुए यही कहा जा सकता है कि इस विधि को मनोविज्ञान का एक अभिन्न विधि माना जा सकता है क्योंकि समूह व्यवहारों को अध्ययन में यह विधि से विशेष रूप से उतम समझा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

6. वाटसन ने कौन सी विधि का प्रतिपादन किया ?
7. प्रेक्षण विधि के मुख्य तीन प्रकार कौन -2 से हैं ?

3.5 प्रयोगात्मकविधिExperimental Method

मनोविज्ञान कीसबसे प्रमुख एवं वैज्ञानिक विधि प्रयोगात्मक विधि है। प्रयोगात्मक विधि में परीक्षण और प्रयोगों के आधार पर व्यवहार सम्बन्धी निष्कर्ष निकालने पर जोर दिया जाता है। वैज्ञानिक विषयों में जिस प्रकार प्रयोगशालाओं में तथा वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि में व्यवस्थित एवं नियन्त्रित परिस्थितियों में वस्तुओं एवं प्राणियों पर प्रयोग करके उनके गुण,व्यवहार एवं क्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है,वैसे ही मनोविज्ञान की दुनियाँमें पशु,पक्षियों तथा व्यक्तियों पर प्रयोग करके उनके व्यवहार के अध्ययन का प्रयत्न किया जाता है। प्रश्न उठता है कि प्रयोगात्मक विधि क्या है ? प्रयोगात्मक विधि को कहा जाताहै जिसका आधार प्रयोग होता है।अब प्रश्न उठता है। कि प्रयोग किसे कहते है ? साधारणतः किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया को किसी नियंत्रित अवस्था मेंअध्ययन या प्रेक्षण करना ही प्रयोग कहलाता है। इस परिभाषासे स्पष्ट है कि प्रयोग में व्यवहारों का अध्ययन किसी नियंत्रित अवस्था में की जाती है। व्यवहारों का अध्ययन चरों के माध्यम से किया जाता है।अब प्रश्न उठता है कि चर किसे कहते है ? शाब्दिक अर्थ में चर किसी भी ऐसी घटना परिस्थिति या व्यक्ति का गुण होता है जिनका मान परिवर्तनशील होता है। वैज्ञानिक अर्थ में चर वैसी घटना परिस्थिति या व्यक्ति का गुण होता है जिसे मापा जा सकता है तथा जो परिमाणात्मकरूप से परिवर्तित होता है। जैसे- उम्र,वृद्धि,थकान आदि कुछ चर के उदाहरण हैं जिन्हें मापा भी जा सकता है तथा जो परिमाणात्मक रूप से परिवर्तित भी होता है। किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग में मुख्यत: तीन तरह के चर होते हैं

- स्वतंत्र चर - जिसके प्राभव को दूसरे चर पर अध्ययन किया जाता है।
- नियंत्रण चर - प्राय: मनोविज्ञान के प्रयोग में कुछ ऐसे भी चर होते हैं जिनके प्रभाव कोप्रयोगकर्ता नियंत्रित करके रखता है क्योंकि वह आश्रित चर पर उन चरों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करना चाहता है। ऐसेचर को संगत चर या नियंत्रण चर कहा जाता है।
- आश्रित चर- चर को कहा जाता है सिके बारे में प्रयोगकर्ता प्रयोग करके पूर्वकथन करना चाहता है। इसे आश्रित चर इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें होने वाला परिवर्तन स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ पर निर्भर करता है।

प्रयोग विधि के मुख्य तीन उद्देश्यहोते हैं जो निम्नांकित हैं -

1. प्रयोगात्मक विधि में स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर के बीच का संबंध पता लगाया जाता है। इन दोनों के संबंध को पता लगाने के लिए प्रयोगकर्ता पहले से एक खाका तैयार कर लेता है जिसमें इस बात का साफ-2 उल्लेख होता है कि स्वतंत्र चर में कैसे जोड़-तोड़ किया जायेगा, प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह कितने होंगे इनका संगठन कैसे किया जायेगा आदि। इस खाके को मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक डिजाइन(Experimental Design) की संज्ञा दी है।
2. प्रयोगात्मक विधि द्वारा किसी सिद्धान्त या शोध द्वारा किये गएपूर्वकथन की जाँच होती है।
3. प्रयोगात्मक विधि किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन के लिये महत्वपूर्ण आँकड़े प्रदान करती है।

गुण

प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं -

1. प्रयोगात्मक विधि में प्राणी या जीव के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओ से संबद्ध चरों का अध्ययन एक नियंत्रित अवस्था में (यानी सामन्यतः प्रयोगशाला में) किया जाता है। परिणामस्वरूप् इससे प्राप्त निष्कर्ष की आन्तरिक वैधता काफी अधिक होती है। अपने इसी गुण के कारण प्रयोगात्मक विधि अन्य विधियों से भिन्न है क्योंकि इतनीअधिक नियंत्रित परिस्थिति दूसरी विधि में नहीं मिल पाती है।चरों पर सख्त नियंत्रण करने की क्षमता ही प्रयोगात्मक विधि को प्रेक्षण के अन्य विधियों से अलग करती है।
2. प्रयोगात्मक विधि में पुरनावृत्ति का गुण होता है। एक प्रयोगकर्ता स्पष्ट रूप से अपने रिपोर्ट में यह लिखता है किउसका प्रयोगात्मक डिजाइन क्या था,उसमें प्रयोज्य की संख्या क्या थी, उसने स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ कैसे कियाआदि। यदि किसी दूसरे अध्ययनकर्ताकोपहले अध्ययनकार्ता द्वारा प्राप्त निष्कर्ष पर किसी प्रकार काशक है तो वह उसे दोहराकर निष्कर्ष की जाँच आसानी से कर सकता है। इस तरहकी सुविधा दूसरी विधिमेंनहीं है।

3. प्रयोगात्मक विधि काफी वस्तुनिष्ठ होती है क्योंकि इसमें प्रयोगकर्ता को एक ,खास ढंग से एवं खास विधि से प्रयोग करना होता है। चाहकर भी वह किसी प्रकार का पक्षपात या पूर्वाग्रह आदि नहीं कर पाता है। चूँकि विधि वस्तुनिष्ठ होती है, अत: प्राप्त आँकडों का गुणात्मक तथा परिमाणात्मक विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।
4. प्रयोगात्मक विधि में स्वतंत्र चरों को जोड़-तोड़ काफी अधिक एवं उचित ढंग से हो पातीहै। फलस्वरूप प्रयोगकर्ता किसी मनोवैज्ञानिक समस्या का अध्ययन कई तरह से कर सकने में समर्थ होते हैं।

दोष

प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं -

1. प्रयोगात्मक विधि का सबसे महत्वपूर्ण दोष यह है कि प्रयोग की नियंत्रित अवस्था वास्तविक न होकर कृत्रिम होती है। फलस्वरूप, इसका संबंध जीवन के वास्तविक परिस्थिति से कम होता है। इसलिए प्रयोगात्मक विधि से प्राप्त निष्कर्षका सामान्यीकारण वास्तविक परिस्थितिके लिए संभव नहीं है।मार्गन,किंग तथा रॉबिन्सन ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है प्रयोग से प्राप्त निष्कर्ष कृत्रिमप्रयोगात्मक परिस्थिति तक सीमित है तथा इसका सामान्यीकरण वास्तविक या स्वाभाविक परिस्थिति के व्यवहारों के बारे में नहीं की जा सकती है।
2. प्रयोगात्मक विधि में कुछ विशेष प्रकार को दोष स्वाभविक रूप से सम्मिलित होता है। प्रयोक्ता पूर्वाग्रह तथा प्रतिदर्श पूर्वाग्रह दो ऐसे महत्वपूर्ण दोष हैं। प्रयोक्ता पूर्वाग्रह में प्रयोगकर्ता या प्रयोक्ता की अपनी उम्मीद या प्रत्याषाएँ पक्षपात आदि प्रयोग के परिणाम तथा प्रेक्षण प्रक्रिया को प्रभावित करता है। प्रतिदर्शपूर्वाग्रह से तात्पर्य प्रयोज्यों को प्रतिनिधिक न होने से होता है। कभी -2 ऐसा देखा गया है कि प्रयोगकर्ता को जो भी व्यक्ति सुविधानुसार मिल रहा है, सभी को वह प्रयोज्य बना लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे प्रयोज्य उन समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करते जिनके बारे में प्रयोग करके पूर्वकथन करता होता है। इतना ही नहीं, कभी-2 यह भी देख गया है कि प्रयोग में प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह तुल्य नहीं होते हैं। फलत: उसका परिणाम वैध तथा विश्वसनीय नहीं हो पाता है।
3. कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं जिन्हें पशु पर तो किया जा सकता है परन्तु मनुष्योंपर नहीं किया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रयोगात्मक विधि का कार्य-क्षेत्र सीमित हो जाता है। उदाहरणर्थ, यदि प्रयोग ऐसा है कि उसमें शरीर का काई अंग जैसे मस्तिष्क का ही एक विशेष अंग को काटकर निकाल देना है और उसका प्रभाव व्यवहार पर क्या पड़ता है , यह देखना है तो मनुष्य के साथ इस ढंग का प्रयोग करना अनैतिक माना जायेगा और शायद कोई मनुष्य ऐसा करवाने के लिये तैयार भी नहीं होगा। परन्तु पशुओं के साथ

आसानी से इस तरह का प्रयोग किया जा सकता है और किया जा भी रहा है। पशुओं के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष कोमनुष्यों के लिये भी सही लिया जाता है, हालांकि इसमे कुछ त्रुटि (error)की संभावना बनी रहती है। इन दोषों(demerits)के बावजूद भी प्रयोगात्मक विधि मनोविज्ञान की सबसे वैज्ञानिक विधि मानी गयी है। आज मनोविज्ञान में उन सिद्धान्तों एवं तथ्यों की कोई मान्यता नहीं है जिनका प्रयोगात्मक समर्थन (experimental support)नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

8. प्रयोगात्मक विधि एक वैज्ञानिक विधि है। (सत्य/असत्य)
9. प्रयोग किसे कहते है ?
10. स्वतंत्र चर से आप क्या समझते हैं।
11. आश्रित चर का कोई एक उदाहरण दीजिये।
12. नियंत्रित चर क्या है ?

3.6 सहसंबंधात्मक विधि Correlation Method

बहुत सारी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनसे प्रयोगात्मक शोध करना संभव नहीं हो पाता है। जैसे , क्या तनाव से बीमारी होती है ? क्या धुम्रपान से कैंसर होता है ? क्या मैजीयुआना के सेवन से शैक्षिक निष्पादन कम हो जाता है ? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका अध्ययन प्रयोगात्मक शोध से न कर अन्य विधि जैसे सहसंबंधात्मक विधि से करना संभव हो पाता है।

इस विधि में शोधकर्ता दो घटनाओं, चरों या व्यवहारों के बीच सहसंबध ज्ञात करता है। अध्ययन करने के लिए प्रयोज्यों का एक समूह का चयन किया जाता है और प्रत्येक प्रयोज्य का मापन अभिरूचि वाले चरों पर किया जाता है तथा फिर मिले प्राप्तांकों के बीच सहसंबंध विशेष तरह के सांख्यिकीय सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है। प्राप्त सांख्यिकीय मूल्य को सहसंबंध गुणांक कहा जाता है। सहसंबंध गुणांक एक आंकिक मूल्य होता है जो दो चरों के बीच सहसंबंध की मात्रा तथा दिशा को बतलाता है। सहसंबंध गुणांक $1.00 (जिससे एक पूर्ण धनात्मक सहसंबंध) से 0.00 (कोई सहंबंध नहीं) से -1.00 (जिससे एक पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध) तक का होता है।सहसंबंध के चिन्ह से यह पता चलता है कि दो चर एक ही दिशा में या उससे विपरीत दिशा में परिवर्तित हो रहे है।धनात्मक सहसंबंध यह बतलाता है कि दो चर एक ही दिशा में परिवर्तित होते है। जैसे, अध्ययनोंके आधार पर यह पाया गया है कि तनाव तथा बीमारी के बीच एक साधारण परंतु धनात्मक सहसंबंध होता है जब तनाब बढ़ता है तो बीमारी भी बढ़ती है तथा जब तनाव कम होता है तो बीमारी भी कम हो जाती है। उसी तरह से नकारात्मक सहंसंबंध यह दर्शाता है कि एक चर में वृद्वि होने से दूसरे चर में कमी होती है। जैसे , सिगरेट पीने तथा जीवन अवधि में नकारात्मक सहसंबंध पाया गया है

अर्थात जितना ही अथिक संख्या में व्यक्ति पीता है , उसकी जीवन अवधि उतनी ही कम होती है। सहसंबंध विधि का सबसे उत्तम उपयोग पूर्वकथन में होता है। जब दो चरों के बीच मजबूत सहसंबंध होता हैपूर्वकथन उत्तम होता है। जब यह सहसंबंध पूर्ण होता है तो पूर्णत: सहीपूर्वकथन करना संभव हो पाता है। सहसंबधं विधि का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा उन समस्याओं का अध्ययन आसानी से हो जाता है जिनका अध्ययन प्रयोगात्मक शोध तथा नैतिक कारणों से नहीं किया जा सकता है।

दोष

1. सहसंबंध विधि मे चरों के बीच के संबध का अध्ययन किया जाता है। उसके बीच कारण परिणाम की व्यख्या नहीं की जाती है। जब दो चरों के बीच सहसंबंध होता है तो इसका मतलब यह नहीं कि उनमें से कोई एक दूसरे का कारण है। अत: सहंसंबध कारण के तुल्य नहीं होता है चरोंके बीच कारण परिणाम की व्याख्या मात्र प्रयागोत्मक शोध के ही आधार पर किया जाता है। जब तनाव तथा बीमारी आपस से सहसंबंधित है , तो इसके आधार पर किया जा सकता है जब तनाव तथा बीमारी आपस से सहसंबधित है, तो इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि तनाव से बीमारी उत्पन्न होती है या तनाव, बीमारी का कारण है।
2. सहसंबंध विधि एक अप्रयोगात्मक विधि होती है जिसमें स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करना संभव नहीं हो पाता है। इतना ही नहीं इनमें सभी अवांछित चरों का नियंत्रण भी संभव नहीं हो पाता है। फलत: सहसंबंध विधि में आंतरिक वैधता की कमी होती है।
3. सहसंबंध में वैधता भी नहीं होती है क्योंकि इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण बहुत विश्वास के साथ नहीं किया जा सकता है। इन दोषों के बावजूद सहसंबंध विधि को मनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन की एक प्रमुख विधि माना गया है और अधिकतर शोधों में इसका उपयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

13. ______________ विधि में शोधकर्ता दो घटनाओं, चरों या व्यवहारों के बीच सहसंबध ज्ञात करता है।
14. पूर्वकथन में सहसंबध विधि का उपयोग सबसे अधिक होता है। (हाँ या नहीं)

3.7 जीवन-वृत विधिClinical or Case Study Method

मनोविज्ञान की यह एक प्रमुख विधि हैं। इसे मनोवैज्ञानिकों ने चिकित्साशास्त्र से ग्रहण किया है इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिको द्वारा व्यक्तियों के रोगात्मक लक्षणोंके पहचान करने तथा

उसके कारणों का पता लगाने में किया जाता है यही कारण हैकि इसे नैदानिक विधि भी कहाँ जाता है। इस विध में मनोवैज्ञानिक किसी एक व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए उसके जीवन के सभी तरह की घटनाओं जा उसके साथ माँ के गर्भ में आने के समय से ही घटित हो रहा होता है, एक विस्तृत इतिहास तैयार करते है इस लिए इस विधि को केस विवरण विधि भी कहा जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के गुण-दोष अथवा असामान्यतों के अध्ययन में जीवन -वृत विधि से काम लिया जाता है। यह विशेषतया मानसिक चिकित्सा में रोगों के कारण पता लगाने के लिए प्रयोग की जाती है। इसमें शिक्षा मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की परिस्थिति का निरीक्षण करता है। इसमे व्यक्ति के परिवार, स्कूल या दफ्तर तथा उसके नाते-रिश्तेदार और दोस्त,आदि सभी के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करना जरूरी हो जाता है। इसमें व्यक्ति के जीवन वृत का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में विश्लेषण द्वारा यह पता लगाने की चेष्टा की जाती है कि व्यक्ति के असमान्य व्यहवहार या मानसिक व्याधि का मूल कारण क्या है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक शिक्षा मनोवैज्ञानिक के पास एक ऐसा बालक आता है जिसका आचरण असामान्य और बिगड़ा हुआ है। बालक उदण्ड, अशिष्ट तथा लड़ाकू है। वह धमकियों और सजा की परवाह नहीं करता और कई बार घर से भाग भी चुका है ऐसी दशा में शिक्षा मनोवैज्ञानिक उस बालक को अनेक प्रकार से निरीक्षण करता है। वह उसको एक अलग कमरे में ले जाकर उससे सहानुभूतिपूर्वक बहुत सी बातें जानने की कोशिशकरता है। वह उसके प्रति उसके माता पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का पता लगाता है। वह उसके स्कूल का परिस्थिति का पता लगाता है और यह मालुम करता है कि उसके दोस्त कौन-2 और कैसे है तथा आवश्यकता पड़ने पर उनसे पूछताछ भी करता है। संक्षेप में वह बालक से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के उसके प्रति व्यवहार की है। संक्षेप में , वह बालक से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के उसके प्रति व्यवहार की तथा उसकी प्रत्येक परिस्थिति की पूरी छानबीन करके तथा उनसे बातचीत करके और अन्य प्रकार से यथासम्भव परीक्षा करके उसके उदण्ड और अशिष्ट व्यवहार के कारणों का पता लगाने की कोशिश करता है।

अब तक के मनोवैज्ञानिकों में जिन्होंने इस विधि का सर्वाधिक उपयोग किया है, वे हैं- सिगमंड फ्रायड जिन्होंने कुछ केसेज का अध्ययन करके व्यक्तित्व तथा मानसिक बिमारी के लिए मषहुर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। केस विवरण तैयार करते समय मनोवैज्ञानिक निम्नांकित तथ्यों पर अधिक ध्यान देते हैं –

1. **प्रारंभिक सूचनाएँ**- इसके अन्तर्गत व्यक्ति के नाम,उम्र,यौन,माता-पिता की उम्र,शिक्षा ,पेशा,सामाजिक स्तर,परिवार में सदस्यों की संख्या आदि जैसे तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है।
2. **गत इतिहास**-इसके अन्तर्गत गर्भधारण से वर्तमान समय तक का इतिहास तैयार किया जाता है। जब व्यक्ति माँ के गर्भ में होता है , तो उस समय माँ की स्थिति कैसी थी ,माँ में उस समय कोई भयंकर शारीरिक या मानसिक बीमारी हुई थी या नहीं ,जन्म लेते समय की अवस्था कैसी थी , क्या जन्म सामान्य ढंग से हुआ था या नहीं, किसी प्रकार की शारीरिक

आघात आदि की घटना हुई थी या नहीं, से सम्बन्धि तथ्य एकत्रितकिये जाते हैं । इसके अलावा बालक का जन्मक्रम ,शारीरिक बीमारी या प्रभाव आदि से सम्बन्धित तथ्यों को इकठ्ठा किया जाता है ।

3. **वर्तमान अवस्था**- केस विवरण तैयार करने में व्यक्ति के वर्तमान अवस्था के बारे में भी एक लेखा-जोखा तैयार कर लिया जाता है । जैसे-बालक की बुद्धि स्तर,उसकी रूचि,शौक,अभिक्षमता,सांवेगिक स्तर, शैक्षिक उपलब्धि के बारे में तथ्य इकठ्ठा किया जाता है । केस विवरण तैयार करने में मनोवैज्ञानिक विभिन्न प्रविधियों जैसे-साक्षात्कार, प्रश्नावली व्यक्ति के अलावा उनके माता-पिता, दोस्त,पड़ोसियों आदि का भी साक्षात्कार लेते है । केस विवरण तैयार करने के बाद उसका विश्लेषण किया जाता है और उस विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

गुण

इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. नैदानिक विधि में मनोवैज्ञानिक चूँकि प्रत्येक अध्ययन किये जाने वाले व्यक्ति का एक अलग विस्तृत इतिहास तैयार करके उसके कारणोंका पता लगाते हैं, इसलिए इस विधि द्वारा व्यक्ति का गहन अध्ययन सम्भव है ।
2. नैदानिक विधि द्वारा व्यक्ति के मानसिक तथा शारीरिक विकासक्रम को अच्छी तरह जाँचा जा सकता है । इस विधि द्वारा अध्ययन करने में मनोवैज्ञानिकों को इस बात की भरपूर जानकारी हो जाती है कि व्यक्ति किन-किन वैयत्विक अवस्थाओं से गुजर चुका है तथा उनका प्रभाव उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास पर क्या पड़ता है ।
3. नैदानिक विधि में चूँकि अध्ययन का आधार केस विवरण होता है, अतः इस विधि में व्यक्ति की समस्याओं एवं उनके संभावित कारणों पर सीधा प्रकाश डालने का सुनहरा अवसर मनोवैज्ञानिक को प्राप्त होता है ।

दोष

इन गुणों के बावजूद इस विधि के कुछ प्रमुख अवगुण है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है-

1. नैदानिक विधि में व्यवहार के अध्ययन का आधार व्यक्ति का गत इतिहास होता है जो व्यक्ति के माता-पिता, दोस्त तथा पड़ोसियों द्वारा दिये गये सूचनाओं पर आधारित होता है । अक्सर देखा गया है कि माता-पिता,दोस्त या पड़ोसी व्यक्ति की सच्ची घटनाओं या तथ्योंको विशेषकर वैसी घटनाओं या तथ्यों को जिनका संबंध नैतिकता से होता है, छिपा लेते है। फलस्वरूप, उनके द्वारा प्रदत सूचनाएँदोष पूर्ण हो जाती है और उनके आधार पर जो अध्ययन किया जाता है , वह अधिक निर्भर योग्य नहीं रह जाता है ।

2. व्यक्ति के बारे में पूर्ण विवरण तैयार करने में जो सूचनाएँ प्राप्त् होती हैं या जो इतिहास तैयार होता है , उसकी सत्यता की जाँच करने का कोई उपयुक्त तरीका नैदानिक विधि में नहीं है।
3. नैदानिक विधि द्वारा व्यक्ति की समस्या का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक काफी प्रशिक्षित हो तथा उन्हें साक्षात्कार तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उतम ज्ञान हो। प्रायः देखा गया है किइस विधि का उपयोग एक साधारण मनोवैज्ञानिक भी करने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में इनसे प्राप्त तथ्यों पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है।
4. नैदानिक विधि में वस्तुनिष्ठता कम तथा आत्मनिष्ठता एवं अंतरदर्शिता अधिक होती है। व्यक्ति के एक ही केस विवरण का विश्लेषण यदि अलग-2 मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है तो उसमें एकरूपता की कमी पाईजाती है। इससे नैदानिक विधि की विश्वनीयता में कमी आ जाती है।
5. केस अध्ययन में यदि अध्ययन में सम्मिलित किया गया व्यक्ति का स्वरूप कुछ अनोखा है? तो इससे प्राप्त निष्कर्ष कासामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

15. _____________विधि मनोवैज्ञानिकों ने चिकित्साशास्त्र से ग्रहण किया है।
16. जीवन-वृत विधिसर्वाधिक उपयोग मनोवैज्ञानिक_____________किया है।

3.8 सारांश

अत: हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत अध्याय बहुत संक्षेप में मनोवैज्ञानिक अध्ययनों की पुरातन एवं नवीन उन्मुख्ताओं का वर्णन करता है। यह मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न दृष्टिकोणों को मनोविज्ञान के सम्प्रदायों के अन्तर्गत प्रस्तुत करता हैशिक्षा मनोविज्ञान की नीव सम्प्रदायों ने सीखने की प्रक्रिया बौद्धिक विकास और व्यक्तित्व विकास का गहन अन्वेषण करके शिक्षा प्रक्रिया को काफी प्रभावित किया है। अन्तदर्शनवादी मनोविज्ञान से हमें इंद्रीय संवेदना के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। व्यवहारवादियों ने अन्त:प्रेक्षण पर विशेष आपत्ति की। प्रेक्षणावादियों का कहना था कि गेंद के उठा कर भार महसूस कर लेने के बाद अपने मन में बनी प्रतिभाओं की सहायता से वह व्यक्ति भार की तुलना करता था। लेकिन व्यवहारवादियों ने इस व्याख्या को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि वह व्यक्ति प्रत्येक बार भार उठाने की क्रिया में माँशपेशियों में सामंजस्य उत्पन्न करता है। न कि भार के सम्बन्ध में मानसिक प्रतिमाएं बनाता है। निरीक्षण विधि व्यवहार के अध्ययन करने की एक सुविधाजनक और उपयुक्त विधि है। अपने दिन-प्रतिदिन की जिवनमें बालक जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं, उनका उसी रूप में निरीक्षण करते रहने से उनके व्यवहार और व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों से भली-भाँति परिचित हुआ जा सकता है। निरीक्षण विधि के द्वारा सीमित साधनों में व्यवहार

का सफलता से अध्ययन कर पाना सम्भव है। एक अच्छा निरीक्षक अपनी लगन सेसमुचित अध्ययन कर सकता है। प्रयोगात्मक विधि नियन्त्रित परिस्थितियों और वातावरण में व्यवहार का अध्ययन करने की एक महत्वपूर्ण विधि है। जब नैतिक कारणों से चरों के बीच कारण परिणाम सम्बन्ध कायम नहीं किया जा सकता है तो सहसंबधात्मक विधि से इसका अध्ययन करना सम्भव होता है।

3.9 शब्दावली

1. अन्तर्निरीक्षण -अन्तस या अन्दर का निरिक्षण।
2. प्रेक्षण -किसी भी प्राणी बाह्य व्यवहार का नीरीक्षण करेने की विधि।
3. प्रयोगात्मक विधि -जिसका आधार प्रयोग होता है।
4. प्रयोग- किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया को किसी नियंत्रित अवस्था मेंअध्ययन या प्रेक्षण करना।
5. चर- किसी भी ऐसी घटना परिस्थिति या व्यक्ति का गुण होता है जिनका मान परिवर्तनशील होता है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अन्तर्निरीक्षण विधि के गुण-
   i. अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं जैसे - उसकी इच्छाओं , भावों का अध्ययन एवं विश्लेषण ठीक ढंग से हो पाता है।
   ii. अन्तर्निरीक्षण विधि एक तरह का आत्म-निरीक्षण है।
2. अन्तर्निरीक्षण विधि केकोई दो दोष
   i. अन्तर्निरीक्षण विधि व्यक्तिगत तथा आत्मनिष्ठ होती है।
   ii. अन्तर्निरीक्षण विधि में अनुभव करने वाला तथा अनुभूतियों का निरिक्षण करने वाला व्यक्ति एक ही होता है। अत: एक ही व्यक्ति को दोहरा कार्य करना पड़ता है। इस तरह का दोहरा कार्य सभी व्यक्ति ठीक ढंग से सभी तरह की मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में नहीं कर सकते हैं।
3. विलियम वुण्ट ने अन्तर्निरीक्षण विधि का प्रातिपादन किया है।
4. चेतन अनुभूति के तीन तत्व हैं - संवेदन, भाव एवं प्रतिमा।
5. टिचेनर के अनुसार अन्तर्निरीक्षण विधि की सफलता निम्नांकित बातों पर निर्भर करती है।
   i. अन्तर्निरीक्षण करने वाले व्यक्ति में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह तथा पक्षपात की भावना न हो।

ii. अन्तर्निरीक्षण करने वाले व्यक्ति को अपने ध्यान या अवधान की प्रकिया पर पूर्ण नियंत्रण हो।

iii. अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से तरोताजा हो। उसमें थकान तथा मानसिक उब आदि की भाव न हो।

iv. अन्तर्निरीक्षण करने वाला व्यक्ति को अन्तर्निरीक्षण की प्रक्रिया में अभिरूचि हो तथा उसकी चित प्रकति शांत हो।

6. प्रेक्षण विधि ने प्रेक्षण विधि का प्रतिपादन किया।
7. प्रेक्षण विधि के मुख्य तीन प्रकार हैं-

   (क) सहभगी प्रेक्षण

   (ख) असहभगी प्रेक्षण

   (ग) स्वाभविक प्रेक्षण
8. सत्य
9. किसी व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रिया को किसी नियंत्रित अवस्था मेंअध्ययन या प्रेक्षण करना ही प्रयोग कहलाता है।
10. स्वतंत्र चर - जिसके प्राभव को दूसरे चर पर अध्ययन किया जाता है।
11. नियंत्रण चर - प्राय: मनोविज्ञान के प्रयोग में कुछ ऐसे भी चर होते हैं जिनके प्रभाव कोप्रयोगकर्ता नियंत्रित करके रखता है क्योंकि वह आश्रित चर पर उन चरों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करना चाहता है। ऐसेचर को संगत चर या नियंत्रण चर कहा जाता है।
12. आश्रित चर- चर को कहा जाता है सिके बारे में प्रयोगकर्ता प्रयोग करके पूर्वकथन करना चाहता है। इसे आश्रित चर इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें होने वाला परिवर्तन स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ पर निर्भर करता है।
13. सहसंबंधात्मक विधि
14. हाँ
15. जीवनवृत विधि
16. सिगमंड फ्रायड

3.11 संदर्भ ग्रंथ

1. आलपोर्ट जी. डब्ल्यू.ए साइकोलाजिकल इन्टरप्रिटेशन,हेनरी हॉल्ट न्यूयानियन।
2. क्रॉनवेक एल. जे.,एजूकेषनल साकोलाजी,हारकार्ट क्षेस,न्यूर्याक,1954।
3. क्रो,एल. जे.,एजूकेशनल माइकोलाजी अमेरिकन बुक कं. न्यूर्याक।
4. स्टाउड जेम्स बी ,साइकोलोजी इन एजूकेशन, लायमैन्स ग्रीन इन्ड कम्पनी।
5. माथुर एस. एस,शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

6. लाल एवं जोशी,शिक्षा मोनविज्ञान एवं प्रारम्भिक साँख्यिकी,आर.लाल बुक डिपो मेरठ।
7. कुलश्रेश्ठ, एस. पी.,शिक्षा मनोविज्ञान ,आर लाल बुक डिपो मरेठ।
8. पाठक,पी.डी.,शिक्षा मनोविज्ञानिक अग्रवाल प्रकाशन आगरा।
9. सिहं,अरूण कुमार,उच्चार सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल,बनारसीदास।
10. गुप्ता ,एप पी.,शिक्षा मनोविज्ञान, माड़रन पब्लीशर्स,दिल्ली।
11. मंगल, एस.के.,विधार्थी विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रकिया।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अर्तनिरीक्षण विधि से आप क्या समझते हैं ? इस विधि के गुण तथा दोष क्या-क्या हैं ?
2. प्रेक्षण क्या है ? प्रेक्षण विधि किसी व्यक्ति के व्यवहार को समझने में किस तरह उपयोगी है ? विस्तार से वर्णन करो।
3. प्रयोगात्मक विधि की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिएतथा इसके मुझ्य उद्देश्यों को लिखिए।
4. जीवनवृत विधि प्रेक्षण विधि से किस तरह भिन्न है स्पष्टकिजिए। जीवनवृत विधि के दोष क्या-क्या हैं ?
5. संहसम्बन्धात्मक विधि से आप क्या समझते हैं ? इस विधि की व्याख्या करते हुए इसके गुण तथा दोषोंको लिखिए।

इकाई –4 मानव वृद्धि एवं विकास
Human Growth and Development

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वृद्धि का अर्थ
4.4 विकास का अर्थ
4.5 वृद्धि एवं विकास में अन्त
4.6 विकास की विशेषताएं
4.7 वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
4.7.1 परिपक्वता बनाम अधिगम
4.7.2 आनुवंशिकता बनाम वातावरण
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विकास प्राणी की एक ऐसी विशेषता है जिसका प्रारंभ गर्भाधान से ही हो जाता है तथा यह जीवन पर्यन्त चलता रहता है। कुछ विकास अवस्था विशेष में जाकर बन्द हो जाता है जिसे वृद्धि कहते हैं जबकि कुछ विकास प्रकार्यात्मक स्वरूप का होता है जो अनवरत चलता रहता है।

प्रस्तुत इकाई में आप वृद्धि एवं विकास के अर्थ एवं महत्व को समझ पायेंगे तथा विकास की विभिन्न विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त, इस इकाई के अन्तर्गत आप विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का अध्ययन करेंगे तथा विकास के निर्धारण के रूप में परिपक्वता बनाम अधिगम एवं आनुवंशिकता बनाम पर्यावरण को जान पायेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

1. आप वृद्धि एवं विकास का अर्थ समझ सकें।
2. वृद्धि एवं विकास में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
3. विकास के नियमों एवं विशेषताओं का उल्लेख कर सकें।
4. विकास के निर्धारकों को रेखांकित कर सकें तथा
5. विकास में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को पहचान सकें।

4.3 वृद्धि का अर्थ

मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसकी कुछ-न-कुछ लम्बाई होती है, उसका कुछ-न-कुछ वजन होता है। किसी हॉस्पीटल या नर्सिंग होम में जन्में बच्चे की लम्बाई और उसका वजन डाक्टर द्वारा नोट किया जाता है। आप ने अपने इर्द-गिर्द, आस-पड़ोस में पैदा हुए बच्चों के बारे में सुना होगा कि उसका बच्चा 7 पौंड या 7.5 पौंड या फिर 3 कि0ग्रा0 या 3.5 कि0 ग्राम का है। सामान्य से कम वजन है या अधिक है। घने बाल वाला लम्बा है, या हल्का बाल है, बहुत लम्बा नहीं है, आदि-आदि।

जन्म के बाद बच्चे की लम्बाई और भार या वजन में परिवर्तन होने लगता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, उसकी लम्बाई और भार में भी वृद्धि होती जाती है और फिर क्रियात्मक विकास, भाषा विकास, सामाजिकता का विकास, संवेग का विकास होने लगता है। विकासात्मक मनोविज्ञान में 'वृद्धि' और 'विकास' दो ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग प्रायः पर्यायवाची सम्प्रत्यय के रूप में होता है, परन्तु वास्तव में दोनों में कुछ भिन्नता है।

वृद्धि से तात्पर्य सम्पूर्ण जीवन-काल में आने वाले भौतिक और दैहिक परिवर्तनों से है। ये परिवर्तन सामान्यतः मात्रात्मक स्वरूप के होते हैं और प्रायः गर्भाधान से लेकर लगभग बीस वर्ष की उम्र तक परिलक्षित होते हैं। यानी, वृद्धि एक विशेष प्रकार के विकास को संकेतित करती है। साधारण अर्थ में तो वृद्धि का मतलब शारीरिक आकार में परिवर्तन से है जो प्रायः गर्भाधान के दो सप्ताह के बाद प्रारंभ हो जाती है। आकार का यह परिवर्तन लगभग 20 वर्ष की आयु तक चलता है। इस आयु के बाद आकार का परिवर्तन वृद्धि नहीं बल्कि मोटापा कहलाता है।

स्पष्ट है कि गर्भाधान के बाद से ही शिशु के आकार, भार आदि में पोषाहार एवं उचित देखभाल से वृद्धि होने लगती है और वह शारीरिक परिपक्वता के स्तर को प्राप्त करने लगता है। ऐसी शारीरिक वृद्धि न सिर्फ मानव प्राणी में वरन् संसार के प्रत्येक प्राणी में देखी जाती है और इसका स्वरूप सार्वभौमिक होती है। इसे स्पष्ट करते हुए **गेसेल** नामक मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि ''वृद्धि एक ऐसी जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है जिसमें प्रबल स्थिरता लाने वाले कारक केवल बाह्य ही

नहीं वरन् आन्तरिक भी होते हैं जो बालकों के प्रतिरूप तथा उसकी वृद्धि की दिशा में संतुलन बनाये रखते हैं।''

4.4 विकास का अर्थ

अभी तक हम लोग वृद्धि के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे। गर्भाधान के पश्चात् व्यक्ति के आकार और भार में होने वाले मात्रात्मक परिवर्तन की बात कर रहे थे। परन्तु यदि हम गौर करें तो हम पाते हैं कि मानव जीवन के प्रारंभ से ही विभिन्न प्रकार के गुणात्मक परिवर्तन भी घटित होते हैं और इन परिवर्तनों का सिलसिला जीवन पर्यन्त चलता रहता है। इन्हीं अनवरत परिवर्तनों का नाम विकास है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत आने वाले सभी गुणात्मक परिवर्तन मानव विकास के अन्तर्गत आते हैं। विकास का यह क्रम स्थिर नहीं रहता, अवरिाम गति से चलता रहता है। विकास क्रम में नयी विशेषताओं का समावेश होता है तथा पुरानी विशेषताएं लुप्त होती जाती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन्हीं परिवर्तनों, गुणों और विशेषताओं की क्रमिक एवं नियमित उत्पत्ति को विकास कहा है। हरलॉक (1968) के अनुसार ''विकास प्रगतिशील परिवर्तनों का एक नियमित, क्रमबद्ध एवं सुसम्बद्ध पैटर्न है।'' गेसेल ने विकास को एक तरह का परिवर्तन कहा है जिससे बच्चों में नवीन विशेषताओं एवं क्षमताओं का विकास होता है। इसी प्रकार, यदि हम स्टैट (1974) के विचारों पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि ''विकास समय के साथ होने वाला परिवर्तन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रेक्षण प्रतिफलों के अध्ययन द्वारा किया जा सकता है।''

कुल मिलाकर विकास प्रगतिशील परिवर्तन की प्रक्रिया ही कहा जायेगा जो नियमित होती है तथा इसकी दिशा अग्रगामी होती है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के अभियोजन की क्रियाओं में उन्नतिशील परिवर्तनों के घटित होने से है। यानी, विकास द्वारा जो परिवर्तन लक्षित होता है वह व्यक्ति की पिछली अवस्था से आगे आने वाली अवस्था की ओर अग्रसर होता है। जन्म के समय जहां शिशु निःसहाय होता है, वहीं विकास क्रम में वह हर प्रकार की क्रियाओं, जैसे-उठने-बैठने, चलने-फिरने, दौड़ने-भागने आदि में सक्षम हो जाता है।

हरलॉक ने विकास में होने वाले परिवर्तन में क्रमिकता की बात कही है क्योंकि इसके अन्तर्गत आने वाले सभी परिवर्तन क्रमबद्ध होते हैं। कोई एक निश्चित परिवर्तन एक विशेष परिवर्तन के पहले या बाद घटित होता है। जैसे- गतिक क्रियाओं के विकास क्रम में बच्चा पहले रेंगता है, फिर खिसकता है, फिर बैठता है और फिर चलना शुरू करता है। ऐसा नहीं होता कि वह पहले चलने लगता है, फिर रेंगना शुरू करता है। कहने का मतलब कि विकास का एक निश्चित क्रम होता है जिसका अनुसरण उस अवस्था विशेष के सभी बच्चों द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि अवस्था विशेष में होने वाली क्रियाओं का पूर्व-कथन किया जाता है।

इसी प्रकार विकास में सुसम्बद्धता का गुण पाया जाता है। यानी, विकास क्रम में होने वाले परिवर्तनों में सुसंगति एवं सुसम्बद्धता देखी जाती है। प्रायः जिस बच्चे का क्रियात्मक विकास शीघ्र

होता है, उसका भाषाई विकास, संवेगात्मक और सामाजिक विकास भी अपेक्षाकृत शीघ्र होता है। फलतः विकास के विविध पक्ष और स्वरूप आपस में सार्थक रूप से जुड़े होते हैं तथा इनमें सुसम्बद्धता होती है।

4.5 वृद्धि और विकास में अन्तर

ऊपर आपने वृद्धि और विकास के अर्थ का अध्ययन किया और दोनों की विशेषताओं को जाना। आपने देखा कि वृद्धि हो या विकास दोनों ही स्थिति में व्यक्ति में कुछ-न-कुछ परिवर्तन घटित होते हैं। इन परिवर्तनों का स्वरूप अलग-अलग होता है। वृद्धि और विकास कभी-कभी तो बिल्कुल एक-दूसरे के पर्याय लगते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने कुछ खास-खास आधार पर दोनों में अन्तर स्पष्ट किया है-

1. विकास एक व्यापक संप्रत्यय है जबकि वृद्धि एक विशेष प्रकार के विकास का सूचक है। विकास अनवरत चलता रहता है जबकि वृद्धि की सीमा तय है जहाँ आकर वह रूक जाती है।
2. विकास का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं से है जबकि वृद्धि के द्वारा मूलतः दैहिक या भौतिक परिवर्तन घटित होते हैं। प्राणी में विकास वृद्धि से पहले प्रारंभ होता है और जीवन-पर्यन्त चलता रहता है जबकि वृद्धि एक खास अवस्था में प्रारंभ होती है और पुनः समाप्त हो जाती है। सामान्यतः वृद्धि गर्भाधान के दो सप्ताह बाद प्रारंभ होती है और लगभग बीस वर्ष की उम्र के आस-पास समाप्त हो जाती है।
3. वृद्धि एक धनात्मक विकास है जिसमें शरीर के आकार, भार आदि में बढ़ोत्तरी नजर आती है जबकि विकास धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। यही कारण है कि विकास का स्वरूप गुणात्मक होता है जबकि वृद्धि का स्वरूप मात्रात्मक। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है- वृद्धावस्था, जिसमें घटित परिवर्तन का स्वरूप ऋणात्मक होता है क्योंकि व्यक्ति की दृष्टि-क्षमता, श्रवण-क्षमता, जनन-क्षमता आदि में भारी गिरावट देखी जाती है।
4. विकास का सम्बन्ध प्रकार्यात्मक परिवर्तनों से है जबकि वृद्धि संरचनात्मक परिवर्तनों तक ही सीमित है। वृद्धि की प्रक्रिया में समन्वय का होना आवश्यक नहीं है जबकि प्रत्येक प्रकार का विकास समन्वित और समाकलित होता है।
5. विकास का एक निश्चित पैटर्न होता है जबकि वृद्धि के पैटर्न में घोर वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण स्वरूप, प्रत्येक बच्चा पहले बैठना प्रारंभ करता है, फिर चलना, यदि उसने बैठना नहीं सीखा तो वह चलना भी नहीं सीखेगा परन्तु यदि चार साल का कोई बच्चा ढाई फीट लम्बा है तो उसका वजन 10 किलो हो सकता है जबकि इसी उम्र का दूसरा बच्चा सवा दो फीट का होकर भी 12 किलो का हो सकता है।

6. वृद्धि मूलतः परिपक्वता का परिणाम होती है जबकि विकास परिपक्वता और अधिगम दोनों का प्रतिफल होता है। वास्तव में विकास परिपक्वता और अधिगम की अन्तःक्रिया का परिणाम है।

4.6 विकास की विशेषताएँ

विकासात्मक अध्ययनों से विकास प्रक्रिया के विषय में कुछ मौलिक और पूर्वकथनीय तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। ये तथ्य विकास की प्रणाली को समझने के लिए आवश्यक हैं। इन्हें विकास के नियमों या विशेषताओं के रूप में जाना जाता है। बच्चे जिस विकास-प्रक्रिया से गुजरते हैं उसकी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो सभी विकासशील बच्चों में समान रूप से पायी जाती हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन नीचे प्रस्तुत है।

विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है

1. विकास के क्रम में आकार बड़ा होता है, नयी विशेषताएँ उभरती हैं, पुरानी विशेषताएँ लुप्त होती हैं इत्यादि। ये सभी परिवर्तन पूरी तरह नियमित ढंग से तथा एक प्रणाली के अनुसार होते हैं। विकास तो जन्म लेने वाले सभी प्राणियों में होता है और प्रत्येक जाति के प्राणी-विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है। गेसेल का विचार है कि किन्हीं दो बच्चों का विकास एक समान नहीं होता परन्तु सबों की विकास-प्रणाली एकदम एक समान होती है। विकास की प्रत्येक अवस्था पिछली अवस्था से निकली हुई होती है और अगली अवस्था के लिए आधार होती है। यह बात भी एक प्रणाली-स्वरूप ही है। बच्चों के शरीर और गति-विकास को ही लें तो इनमें दो स्पष्ट प्रणालियाँ दिखाई देती हैं- क. शीर्ष-पुच्छ क्रम तथा ख. निकट-दूरस्थ क्रम।

    (क) शीर्ष-पुच्छ क्रम

    जन्म से पहले और जन्म के बाद, दोनों अवस्थाओं के विकास की यह प्रणाली स्पष्ट दिखाई देती है। जन्म के समय बच्चों के शारीरिक आकार को देखें तो सबसे बड़ा सिर उससे कम विकसित गर्दन, हाथ और छाती तथा सबसे कम विकसित पांव हाता है, अतः जन्म से पहले सर्वाधिक विकास शरीर के ऊपरी भागों में हुआ और निचले भागों में क्रमशः विकास कम हुआ। गति-विकास को देखें, बच्चा पहले गर्दन पर नियंत्रण करता है, तब छाती और हाथ की क्रियाओं पर उसके बाद कमर पर नियंत्रण होता है, तब ठेहुना पर और अन्त में घूटना की क्रियाओं पर, नियंत्रण होता है। स्पष्ट हुआ कि विकास ऊपर से नीचे की ओर, अर्थात् शीर्ष से पुच्छ की ओर बढ़ता है।

    (ख) निकट-दूरस्थ क्रम-

शीर्ष-प्रच्छ क्रम से ही संबन्धित विकास का एक लक्षण निकट-दूरस्थ क्रम भी है। हमारे हाथ पाँव के भी शीर्ष और पुच्छ होते हैं। कन्धा के पास बाँह का शीर्ष है और कमर के पास पाँव का शीर्ष है। बाँह को ही लें, बच्चा पहले सम्पूर्ण बांह की क्रिया पर नियंत्रण प्राप्त करता है, तब केहुनी की क्रियाओं पर नियंत्रण होता है, तब कलाई और अन्त में उंगलियों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त होता हे। इसी प्रकार पाँव के गति-विकास में पहले जाँघ की क्रियाएँ विकसित होती हैं, तब ठेहुने, फिर घुटने और अन्त में पाँव की अंगुलियों पर नियंत्रण होता है। इस विकास क्रम से स्पष्ट है कि शारीरिक अंगों के जो भाग केन्द्र के निकट होते हैं उनकी क्रियाओं का विकास पहले होता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना शरीर के केन्द्र माने जाते हैं। हाथ और पाँव का जो भाग सुषुम्ना के निकट है उसकी क्रिया पहले विकसित होती है और केन्द्र से दूर के भागों में विकास बाद में होता है। यही निकट दूरस्थ विकासक्रम है जो स्पष्टतः शीर्ष-पुच्छ क्रम के ही समान है। किसी अंग के निकटवर्ती भाग उसके शीर्ष के समान हैं जो पहले विकसित होते हैं और दूरस्थ भाग पुच्छ-रूपी हैं जो बाद में विकसित होते हैं।

विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है। यह बात केवल शारीरिक और क्रियात्मक विकास में ही नहीं बल्कि मानसिक विकास, संवेग, भाषा, सामाजिकता आदि के विकास में भी एक निश्चित क्रम और संगठन पाया जाता है। संवेग का ही विकास देखें, पहले बच्चों में एक सामान्य उत्तेजितावस्था होती है, फिर आयु बढ़ने पर प्रसन्नता और खेद के संवेग विकसित होते हैं। आयु जब और बढ़ती है तो प्रसन्नता और खेद, दोनों से अनेक निश्चित संवेग विकसित होते हैं।

2. विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है-

प्रारम्भ में बच्चों की सभी शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सामान्य ढंग की होती हैं। अर्थात् उनका कोई निश्चित रूप नहीं होता है। इन्हीं सामान्य क्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ विकसित होती हैं। आरम्भ में शरीर के किसी भी भाग को उत्तेजित करें, सम्पूर्ण शरीर में एक सामान्य क्रिया उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे वह केहुनी, फिर कलाई और अन्त में अंगुलियों पर भी नियंत्रण कर लेता है। संवेग के विकास में यह विशेषता और स्पष्ट दिखाई देती है। पहले सभी उद्दीपनों पर सामान्य उत्तेजना रहती है, आगे चलकर उत्तेजना के दो रूप हो जाते हैं- प्रसन्नता और खेद, और अधिक विकसित होने पर प्रसन्नता से अनेक निश्चित संवेग उत्पन्न होते हैं, जैसे- हर्ष, उल्लास, स्नेह, प्रेम, इत्यादि। इसी प्रकार खेद से भी निश्चित संवेगों, जैसे-क्रोध, शोक, ईर्ष्या इत्यादि विकसित होते हैं। भाषा सम्बन्धी विशिष्ट क्रियाएँ सामान्य स्वरोच्चारण से उत्पन्न होती हैं। बलबलाना एक सामान्य क्रिया है जिससे विशिष्ट स्वरों का उच्चारण विकसित होता है। प्रत्यय के विकास में यह विशेषता बहुत स्पष्ट मिलती है। पहले बच्चा सभी पशुओं को ‘गाय, कह सकता है, फिर धीरे-धीरे गाय, बैल, भैंस, आदि में भेद करने लगता है। और विकसित होने पर गाय और बाछी में भी भेद करता है।

स्पष्ट हुआ कि बाल-जीवन के सभी पक्षों का विकास निर्विवाद रूप से सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है।

3. विकास अविराम गति से होता है
गर्भाधान के समय जो विकास-प्रक्रिया आरम्भ होती है वह निरन्तर बिना किसी विराम के मृत्यु के समय तक चलती रहती है। कोई भी विशेषता अचानक उत्पन्न नहीं होती और न विकास की कोइ्र अवस्था अचानक टपक पड़ती है, बल्कि बहुत धीरे-धीरे उनका विकास होता है। हर नई विशेषता पुरानी विशेषता से विकसित होती है। कहने को तो विकास की कई अवस्थाएँ मानी जाती हैं, जैसे- शैशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, इत्यादि परन्तु, यह कभी नहीं समझना चाहिए कि दो अवस्थाओं के बीच कोई खाई होती है, बल्कि हर नई अवस्था किसी पुरानी अवस्था की ही कड़ी होती है। अवस्थाओं की कल्पना तो केवल वर्णन की सुविधा के लिए की जाती है, किसी रिक्तता या विकास के रूक-रूक कर चलने के लिए नहीं। विकास-प्रक्रिया एक क्षण के लिए भी नहीं रूकती है। बच्चे में जो विशेषता आज प्रकट हुई उसकी शुरूआत बहुत पहले हो चुकी होती है। जन्म क्रन्दन ही भाषा-विकास का आरम्भ बिन्दु है। दाँत बनने की प्रक्रिया तो बच्चे में गर्भ के पाँचवें महीने से ही आरम्भ हो जाती है जबकि जन्म के छह महीने बाद दाँत प्रकट होता है। मानसिक क्रियाओं के विकास में भी विकास की निरन्तरता और अखण्डता स्पष्ट दिखाई देती है।

4. विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नता होती है और यह भेद स्थायी होता है-
विभिन्न बच्चों की विकास-गति में भेद होता है। नवजात बच्चे भी अलग-अलग लम्बाई और वजन के होते हैं। उनकी मानसिक योग्यताओं में भी भेद होता है। विकास की मात्रा का यह भेद विकास गति के भेद के कारण होता है। कुछ बच्चे तेज गति से और कुछ बच्चे धीमी गति से विकसित होते हैं। कोई बच्चा पाँच महीने में बैठता है और कोई-कोई तो 12 महीने में बैठता है। विकास गति का यह भेद प्रधानतः आनुवंशिक भेदों के कारण होता है। चूँकि आनुवंशिकता बदलती नहीं है इसलिए विकास गति का यह भेद स्थायी हुआ करता है। यह विश्वास गलत है कि विकास की कोई कमी आगे चलकर पूरी हो जाएगी। बाल्डविन का विश्वास है। बच्चे में जो कमी आज है वह सब दिन रहेगी, कि इलिंगवर्थ ने लड़कों और लड़कियों की लम्बाई और वजन की तुलना जन्म के समय से लेकर 13 वर्षो तक छः-छः महीनों के मध्यान्तर पर किया और जन्म के समय का भेद 13 वर्ष की आयु में भी वर्तमान था। मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं में भी स्थायी वैयक्तिक भेद होते हैं। टर्मन के अनुसार प्रतिभाशाली बच्चे लड़कपन से चमकते रहते हैं। हरलॉक मानती हैं कि जो बच्चा आरम्भ में मन्द बुद्धिवाला है वह बाद में बुद्धिमान नहीं होगा, बुद्धि-लब्धि स्थायी होती है।

5. शरीर के विभिन्न अंगों की विकास-गति अलग-अलग होती है-

विकास तो शरीर के सभी अंगों और सभी मानसिक क्रियाओं में हर समय अविराम गति से होता रहता है, परन्तु समय-विशेष में सभी शारीरिक अंगों, उनकी क्रियाओं और मानसिक क्रियाओं का विकास एक गति से नहीं होता है। यही कारण है कि बच्चों की सभी विशेषताएँ एक साथ परिपक्व नहीं होती है। जन्म के बाद सिर की तुलना में पाँव अधिक तेजी से विकसित होता है। संवेदी विकास के अनुसार विभिन्न बौद्धिक योग्यताएँ भी अलग-अलग गति से विकसित होती हैं, जैसे-सर्जनात्मक कल्पना बाल्यावस्था में तेजी से बढ़ती है और युवावस्था तक परिपक्व हो जाती है जबकि तर्कणा धीमी गति से बहुत दिनों तक विकसित होती रहती हैं।

6. बच्चों के अधिकांश गुणों का विकास सह-सम्बन्धित होता है-
पहले एक अवैज्ञानिक विश्वास फैला हुआ था कि विभिन्न गुणों के विकास में बच्चे भले ही एक-दूसरे से आगे पीछे हों परन्तु सभी गुणों के विकास का औसत बराबर होता हैं ऐसा विश्वास था कि यदि कोई बच्चा एक गुण में पीछे है तो दूसरे गुण में आगे होगा जिसके फलस्वरूप गुणों का औसत बराबर हो जाता है। यह विश्वास गलत सिद्ध हो चुका है। मुहसम ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया है कि यदि बच्चा किसी एक गुण में औसत से आगे है तो दूसरे गुणों में भी औसत से आगे ही रहेगा, अर्थात् गुणों के विकास में सह-सम्बन्ध होगा। यदि बच्चे की बुद्धि अधिक है तो उसकी भाषा, सामाजिकता, आदि भी अधिक ही होगी। हरलौक के अनुसार बुद्धिमान बच्चों का लैंगिक विकास बुद्धिहीन बच्चों से पहले होता है। मन्दबुद्धिवालों का शारीरिक विकास भी कुंठित रहता है। स्पष्ट हुआ कि बाल-विकास के विभिन्न क्षेत्रों के बीच घनात्मक सह-सम्बन्ध रहता है।

7. विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है-
लिखा जा चुका है कि विकास नियमित ढंग से होता है। जाति-विशेष के सभी व्यक्तियों के विकास में एकरूपता होती है। विकास की इन दोनों विशेषताओं के आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है। कि कोई बच्चा विकसित होकर कैसा होगा। इस ढंग की भविष्यवाणी बच्चों के शारीरिक विकास के सम्बन्ध में भी हो सकती है और मानसिक विकास के सम्बन्ध में भी, यद्यपि गेसेल के अनुसार मानसिक विकास की भविष्यवाणी शारीरिक विकास की भविष्यवाणी की तुलना में अधिक सही हुआ करती है।

8. प्रत्येक विकासात्मक अवस्था का अपना विशिष्ट गुण होता है-
बाल-विकास विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। यद्यपि विकास एक अखण्ड और निरन्तर प्रक्रिया है और इसकी सभी अवस्थाएँ एक-दूसरे से अटूट ढंग से जुटे रहते हैं फिर भी इसकी प्रत्येक अवस्था की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उन अवस्थाओं की पहचान होती है। उदाहरण के लिए, 2 वर्ष की आयु तक बच्चा अपने विभिन्न अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने, भाषा सीखने, वातावरण की विभिन्न अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने, भाषा सीखने, वातावरण की विभिन्न चीजों को

जानने पहचानने, आदि में लगा रहता है। इसके विपरीत 3 से 6 वर्ष के बीच वह अपने को जिक बनाने में व्यस्त रहता है। कुछ अवस्थाओं में बच्चे पूरी तरह अभियोजित रहते हैं और कुछ अवस्थाओं में उन्हें अभियोजन की कठिनाइयों का अनुभव होता है। बुहलर के अनुसार 15 महीने, 1,1/2 वर्ष, और 10 से 15 वर्ष की आयु में बच्चे अभियोजन की कठिनाइयों के कारण असंतुलित रहा करते हैं, अन्य दिनों में वे सामान्य रूप से संतुलित रहते हैं।

9. बहुत से व्यवहार जिन्हें अनुचित समझा जाता है विशेष आयु के लिए सामान्य और उचित है-

   व्यवहारों को हम प्रायः सामान्य और असामान्य नामक वर्गो में बाँटते हैं। यह वर्गीकरण व्यवहारों के स्वरूप से निर्धारित नहीं होता है बल्कि इस बात से निर्धारित होता है कि किस आयु में बच्चा वैसा व्यवहार कर रहा है। 2 वर्ष का बच्चा यदि बिस्तर पर पेशाब कर दे तो उसे अनुचित व्यवहार नहीं कहेंगे। यदि 10 वर्ष का बच्चा बिस्तर पर पेशाब करे तो इस व्यवहार को असामान्य और अनुचित कहेंगे। इसी प्रकार तुतलाना, दाँत से नाखून काटना, गालियाँ बोलना, जमीन पर लेटना, स्कूल से भागना, इत्यादि व्यवहार कम आयु के बच्चों के लिए उचित और सामान्य माने जाते हैं जबकि इन्हीं व्यवहारों को अधिक आयु के बच्चों के लिए अनुचित और असामान्य माना जाता है। वस्तुतः प्रत्येक आयु के बच्चों से कुछ सामाजिक प्रत्याशाएँ होती हैं और जो व्यवहार उन प्रत्याशाओं के अनुकूल होती हैं उन्हें उचित व्यवहार कहते हैं तथा जो व्यवहार उन प्रत्याशाओं के अनुकूल नहीं होती हैं उन्हें अनुचित व्यवहार कहते हैं।

10. सभी व्यक्ति विकास की सभी प्रमुख अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं-

    विकास एक नियम और प्रणाली का अनुसरण करता है। इसी से लगी विकास की यह भी विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति विकास की सभी अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बड़ी कठिनाइयों के कारण विकास की गति कुछ समय के लिए धीमी हो सकती है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि किसी अवस्था को छोड़कर विकास उससे आगे की अवस्था में प्रवेश कर जाए। विकास की गति तेज भी हो सकती है परन्तु किसी अवस्था को छोड़ कर अगली अवस्था में प्रवेश नहीं कर सकती है। बैइने के बाद बच्चा खड़ा होगा और उसके बाद चलेगा, ऐसा नहीं होगा कि बैठने के बाद ही वह चलना आरम्भ कर दे। मानसिक क्रियाओं का विकास भी सभी अवस्थाओं से क्रमशः गुजरता है।

4.7 वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

बालक के विकास पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। कुछ तत्व उसके विकास में सहायक होते हैं और कुछ विकास को कुण्ठित या विलम्बित कर देते हैं। बालक के विकास पर जिन तत्वों का प्रभाव

पड़ता है उनमें से कुछ तो स्वयं उसके अन्दर विद्यमान होते हैं और कुछ उसके वातावरण में पाये जाते हैं। विकास को प्रभावित करने वाली कुछ बातों पर संक्षेप में नीचे प्रकाश डाला गया है-

बुद्धि

विकास पर जिन तत्वों का प्रभाव पड़ता है उनमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व बालक की बुद्धि समझी जाती है। परीक्षणों और प्रयोगों से इस बात को प्रमाणित किया गया है कि तीव्र बुद्धि के बालकों का विकास मन्दबुद्धि के बालकों के विकास की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। इस बाम की पुष्अि दो-एक मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से सरलतापूर्वक हो जायेगी। टरमन ने एक अध्ययन में पता लगाया कि बहुत प्रखर बुद्धि के बालकों में चलने की क्रिया 13 महीने और बोलने की क्षमता 11 महीने में प्रकट हुई जबकि बहुत दुर्बल बुद्धि के बालकों में ये क्रियाएँ क्रमशः 30 और 15 महीनों में उत्पन्न हुई। इसी प्रकार बुद्धि और काम-शक्ति के विकास में भी यही सम्बन्ध पाया जाता हे। प्रतिभाशाली और उत्कृष्ट बुद्धि के बालकों में काम-शक्ति का प्रथम उदय सामान्य बुद्धि के बालकों की अपेक्षा एक या दो वर्ष पूर्व ही हो जाता है। दुर्बल बुद्धि के बालकों में या तो काम-शक्ति परिपक्व ही नहीं होती या उसकी परिपक्वता काफी विलम्बित होती है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि बुद्धि बालक के विकास को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

यौन

बुद्धि की भाँति यौन-भेद का प्रभाव न केवल शारीरिक विकास पर ही पड़ता है बल्कि मानसिक गुणों का विकास भी इसके द्वारा प्रभावित होता है। जन्म के समय लड़के लम्बाई में लड़कियों से कुछ अधिक होते है परन्तु बाद में लड़कियों का विकास अधिक तेजी से होता है और लड़कों की अपेक्षा पहले ही परिपक्वता को प्राप्त हो जाती है। काम-शक्ति लड़कियों में लड़कों से एक या दो वर्ष पूर्व ही परिपक्व हो जाती हैं। दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था में पहुँचकर समान आयु की लड़की लड़के की अपेक्षा कुछ लम्बी हो जाती है। बुद्धि-परीक्षणों से पता चलता है कि मानसिक विकास में भी लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा कुछ पहले ही मानसिक परिपक्वता को प्राप्त हो जाती हैं। ये सारी भिन्नताएँ यौन-भेद के कारण ही दिखलायी पड़ती है। अतः यह कहा जा सकता है कि बालक के विकास पर उसके पुरूष या स्त्री होने का प्रभाव पड़ता है।

आंतरिक ग्रन्थियाँ

मनुष्य के शरीर के भीतर बहुत सी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं इन ग्रन्थियों के कारण शरीर के भीतर विभिन्न प्रकार के रसों की उत्पत्ति होती रहती है। इन रसों पर अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकास निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए, गले में स्थित पैराथायराइड ग्रन्थि कैल्शियम उत्पन्न करती है जिससे शरीर में हड्डियों का निर्माण होता हैं थायराइड ग्रंथि द्वारा आयोजित उत्पन्न किया जाता है जो शरीर के विकास के लिए आवश्यक है। सीने में स्थित थाइमस ग्रन्थि और मस्तिष्क में स्थित पीनियल ग्रन्थि की अति-क्रियाशीलता के कारण शरीर का सामान्य विकास रूक

जाता है और बालकों के भीतर बचपना बहुत दिनों तक बना रहता है। गोनड की मन्द क्रियाशीलता से तरूणावस्था आने में विलम्ब होता है और उसके अधिक क्रियाशील हो जाने से यौन परिपक्वता जल्दी आ जाती है।

जाति

बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास पर जाति का भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ते हुए देखा गया है। इस बात की पुष्टि अनेक उदाहरणों द्वारा की जा सकती है। निग्रो, भारतीय, नेपाली, भूटानी और चीनी बालकों का विकास यूरोपीय जातियों के बालकों की अपेक्षा धीरे-धीरे होता है। इस भिन्नता का कारण जातीय भिन्नता ही मानी जाती है। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से न केवल शारीरिक गठन, वर्ण एवं आकृति में ही भिन्न होते हैं बल्कि जातीय भिन्नता का प्रभाव उनकी बौद्धिक, नैतिक तथा अन्य मानसिक क्षमताओं के विकास पर भी दूर तक पड़ता है।

पोषाहार

पोषाहार की गणना उन तत्वों में की जाती है जो बालक को बाहरी वातावरण से प्राप्त होते हैं। बुद्धि, यौन, ग्रन्थि और जाति के समान यह बालक के भीतर जन्म से नहीं विद्यमान होता। पोषाहार का प्रभाव शारीरिक व मानसिक क्रियाओं के विकास पर जिस सीमा तक पड़ता है सभी को विदित है। परन्तु बालक के विकास में भोजन की मात्रा का उतना महत्व नहीं होता जितना भोजन के भीतर पाये जाने वाले पोषक तत्वों जैसे विभिन्न विटामिन आदि का। शारीरिक दुर्बलता और दाँत तथा चर्म सम्बन्धी बीमारियों का कारण पौष्टिक भोजन का अभाव होता है।

रोग

शारीरिक बीमारियों और आघातों का शारीरिक विकास पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। बचपन की गंभीर बीमारियां जैसे टायफाइड आदि अथवा मस्तिष्क आघात का प्रभाव बहुत दिनों तक बना रहता है जिसके फलस्वरूप बालक उचित शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नहीं प्राप्त कर पाता। इसके विपरीत जो बालक स्वस्थ रहता है उसका विकास सामान्य ढंग से चलता है और वह ठीक समय पर परिपक्वता प्राप्त कर लेता है।

घर का वातावरण

बालक के विकास पर वातावरण का वंशपरम्परा के समान ही प्रभाव पड़ता है। बालक को उसके घर का वातावरण अन्य वातावरणों से पहले ही प्राप्त हो जाता है। अतः उसका प्रभाव उसके विकास पर काफी दूर तक पड़ता है। जिस घर में बालक अन्य बालकों को नहीं पाता वहाँ उसका विकास अपेक्षाकृत मंदगति से चलता है। परन्तु इसके विपरीत जिस परिवार में कई बालक होते हैं वहाँ सबसे छोटे बालक को अनुकरण का पर्याप्त अवसर मिलता है और इसलिए उसका विकास अधिक तेजी के साथ होता है। अतः परिवार में किसी बालक का कौन सा स्थान है यह बात भी उसके विकास को प्रभावित करती है।

अभ्यास प्रश्न

1. वृद्धि से तात्पर्य सम्पूर्ण जीवन-काल में आने वाले ___________ और____________ परिवर्तनों से है।
2. यह कथन किसका है- ''वृद्धि एक ऐसी जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है जिसमें प्रबल स्थिरता लाने वाले कारक केवल बाह्य ही नहीं वरन् आन्तरिक भी होते हैं जो बालकों के प्रतिरूप तथा उसकी वृद्धि की दिशा में संतुलन बनाये रखते हैं।''
3. हरलॉक के अनुसारविकास क्या है?
4. विकास का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति की _____________ से है।
5. किसी अवस्था विशेष में मानव शरीर के आकार, भार, कार्य-शक्ति आदि में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं -

(क) विकास (ख) वृद्धि

(ग) ठहराव (घ) इनमें से कोई नहीं

परिपक्वता बनाम अधिगम

विकासात्मक, मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में दो कारक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं -

1. परिपक्वता तथा
2. अधिगम या सीखना

परिपक्वता का सम्बन्ध बच्चों की आनुवंशिकता से है और सीखने का सम्बन्ध उनके वातावरण से है। विकास में आनुवंशिकता का महत्व कितना है और किस हद तक विकास वातावरण पर निर्भर करता है, यह एक बड़े विवाद का विषय रहा है। आज तक इस विवाद का संतोषजनक समाधान नहीं हो सका है। ऐसा लगकता है कि शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ कुछ अंशों में परिपक्वता पर निर्भर करता हे। पहले परिपक्वता और अधिगम के अर्थ अच्छी तरह स्पष्अ करना लाभप्रद होगा।

परिपक्वता

प्राणी में जो विशेषताएँ आनुवंशिकता द्वारा जीन के माध्यम से प्राप्त होती हैं वे कालक्रम में स्वतः एक विशेषक्रम में और एक विशेष गति से प्रकट होती जाती हैं। आनुवंशिक गुणों के इसी क्रमिक और स्वतः विकसित होने की प्रक्रिया की परिपक्ता कहते हैं। बच्चों की जातिगत विशेषताएँ जैसे रेंगना, खिसकना, बैठना, चलना, इत्यादि परिपक्वता द्वारा ही विकसित होती हैं। परिपक्वता द्वारा विकसित होने वाले गुणों की विकास गति को प्रशिक्षण से बढ़ाया नहीं जा सकता है। यदि बच्चों की

स्वाभाविक गतियों, हाथ-पाँव चलाने, रेंगने खिसकने, आदि को रोक दें तो परिपक्वन से प्राप्त होने वाले ये गुण कुछ देर से विकसित होंगे।

अधिगम

कुछ विशेषताएं किसी-किसी व्यक्ति में होती हैं, सम्पूर्ण जाति में नहीं। ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएं जो व्यक्ति के प्रयास से उत्पन्न होती हैं सीखने या अधिगम का परिणाम मानी जाती हैं। अभ्यास करके व्यवहारों में कुछ परिवर्तन लाने या नये व्यवहार प्राप्त करने को सीखना या अधिगम कहते हैं। लिखना-पढ़ना, साइकिल चलाना, अंग्रेजी बोलना, इत्यादि सीखने के दृष्टान्त हैं। यदि बच्चा प्रयास करने से योग्यता भी अधिक विकसित होगी। बच्चों के सीखने में सयानों द्वारा मार्गदर्शन की जरूरत होती हैं। किसी कार्य को स्वयं बार-बार दुहराकर या दूसरों का अनुकरण करके, या दूसरों के विचारों, विश्वासों मान्यताओं या अभिप्रेरकों को अपना कर भी सीखा जाता है।

परिपक्वता तथा अधिगम में भेद

परिपक्वता और अधिगम, दोनों ही बाल-विकास के आधार हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं से बच्चों में नई-नई विशेषताएं उत्पन्न होती हैं और बच्चा विकसित होता जाता है। परन्तु इन दोनों सूत्रों से होने वाले विकास में कुछ भेद होते हैं जिन्हें नीचे स्पष्ट किया गया है।

1. परिपक्वता से होने वाले विकासात्मक परिवर्तनों के लिए बच्चे को किसी प्रकार के अभ्यास या प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। ये परिवर्तन स्वतः होते रहते हैं। इसके विपरीत सीखने के फलस्वरूप जो परिवर्तन होते हैं उनके लिए बच्चे को प्रयास करना पड़ता है। यदि बच्चे स्वयं प्रयास नहीं करें तो अधिगम से होने वाले विकासात्मक परिवर्तन नहीं होंगे।
2. परिपक्वता से बच्चों की शारीरिक विशेषताओं में परिवर्तन आते हैं, जैसे शरीर का आकार बड़ा होना, दाढ़ी मूंछ का निकलना, इत्यादि। इसके विपरीत सीखने के कारण बच्चों में व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, जैसे- लम्बे वाक्य बोलना, नई भाषा सीखना, अधिक बच्चों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना, इत्यादि।
3. परिपक्वता से होने वाले विकास का एक निश्चित समय होता है और उसकी एक निश्चित गति होती है। समय से पहले हमारी आपकी कोशिश से बच्चा खड़ा नहीं होगा और जब परिपक्वता एक निश्चित मात्रा में हो जाएगी तो बिना हमारे प्रयास के ही बच्चा स्वयं खड़ा होने लगेगा। दूसरे शब्दों में, परिपक्वन की गति को हम अपनी इच्छा से घटा-बढ़ा नहीं सकते। इसके विपरीत सीखने की गति घटाई-बढ़ाई जा सकती है। यदि 1 घंटा रोजाना प्रयास करने पर बच्चा 10 दिनों में साइकिल चढ़ना सीखता है तो 2 घंटा प्रयास करने पर कुछ कम ही दिनों में सीख जायेगा।
4. परिपक्वता से होने वाले परिवर्तनों से सम्पूर्ण जाति के सभी सदस्यों में समानताएँ उत्पन्न होती है। सभी बच्चे एक विशेष आयु में बैठने लगते हैं, लगभग एक ही आयु में खड़े होते हैं, इत्यादि। इसके विपरीत सीखने के कारण बच्चों में भेद उत्पन्न होते हैं। किसी ने चार वर्ष

की आयु में लिखना सीखा और किसी को उर्म भर लिखना नहीं आया चूंकि उसने नहीं सीखा। यदि बच्चों पर से सीखने के प्रभाव समाप्त कर दें तो बच्चों में केवल समानताएँ ही होंगी, वैयक्तिक भिन्नताएँ बहुत कम रह जाएंगी।

5. परिपक्वता का सम्बन्ध बच्चे की आनुवंशिकता से है। आनुवंशिक विशेषताएँ परिपक्वन से प्रकट होती हैं। इसके विपरीत अधिगम से वातावरण का परिचय मिलता है। वातावरण के उद्दीपनों के अनुरूप ही बच्चा सीखता है। अधिक उद्दीपनों वाले वातावरण में बच्चा अधिक सीखता है।
6. परिपक्वता सीखने की सीमाएँ निर्धारित करता है और उन्हीं सीमाओं के अन्दर सीखने के कार्य हो सकते हैं। प्रत्येक अधिगम के लिए परिपक्वन की एक निश्चित मात्रा का होना आवश्यक है। जब तक उंगलियाँ परिपक्व नहीं होंगी बच्चा कलम नहीं पकड़ सकेगा। अतः स्पष्ट है कि परिपक्वन पर ध्यान रखते हुए बच्चों को सिखाने का प्रयास होना चाहिए, अन्यथा असफलता होगी।
7. अधिगम (सीखना) विरले हील परिपक्वता की अन्तिम सीमा तक पहुंच पाता है। बच्चा ही नहीं, सभी प्राणी अपनी सम्पूर्ण योग्यता का इस्तेमाल नहीं करते हैं बल्कि उसका कुछ भाग बचा रखते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिससे प्राण-रक्षा भी होती है। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि बच्चे अपनी परिपक्वता सीमा तक पहुँचने से पहले ही सीखने का कार्य छोड़ देते हैं। अतः बच्चा जितना वास्तव में सीखता है उससे अधिक सीखने की योग्यता अथवा परिपक्वता उसमें रहती हैं।
8. परिपक्वता से विकसित योग्यताएँ विभिन्न प्रकार के व्यवहार, कलाकौशल, इत्यादि के रूप में प्रकट हो सकें, इसके लिए आवश्यक है कि बच्चे को वातावरण के उद्दीपनों से प्रभावित किया जाए, अर्थात बच्चों को सीखने के अवसर दिए जाएं या उन्हें सिखाया जाए अन्यथा उनमें योग्यताओं के बावजूद कुशल व्यवहार विकसित नहीं हो सकेंगे। इस अर्थ में परिपक्वन और सीखना एक-दूसरे से बहुत अधिक संबन्धित हैं।

परिपक्वता और अधिगम केबीच अन्तःक्रिया

विकास के लिए परिपक्वन और अधिगम एक गाड़ी के दो चक्कों के समान हैं। बच्चों का पूरा विकास दोनों के तालमेल से ही संभव है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है परिपक्वन का महत्व क्रमशः कम होता जाता है। जन्म से पहले की अवस्था में विकास के लिए परिपक्वन का महत्व अधिक होता है यद्यपि, सौन्टैग (1966) के अनुसार, गर्भस्थ शिशु यदि अधिक क्रियाशील रहा तो जन्म के बाद भी वह अधिक सक्रिय रहता है और अपेक्षाकृत कम आयु में ही कौशल विकसित करने लगता है। अधिक सक्रिय होने का अर्थ है अधिक अभ्यास करना अथवा सीखना। जन्म के बाद की अवस्था में परिपक्वन और अधिगम के बीच और अधिक गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। बुहलर (1971) के अनुसार आनुवंशिक योग्यताओं और वातावरण की सामाजिक तथा सांस्कृतिक

शक्तियों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही विकास होता है। कॉल्डवेल (1970) के अनुसार यदि गरीबी के कारण या माता-पिता द्वारा छोड़ दिए जाने के कारण या किसी अन्य कारण से बच्चे का वातावरण प्रचुर नहीं रह सका अर्थात उसमें उद्दीपनों का अभाव हो गया तो बच्चों की आनुवंशिक योग्यताएँ पूरी तरह विकसित नहीं हो पाती है। टेलर (1968) के अनुसार अनाथालयों में पलने वाले बच्चों का शब्द भण्डार छोटा होता है, उनका संबोधन कमजोर होता है तथा उनका ध्यान बहुत अधित भटकता रहता है जिससे वे अपने अनुभवों को संगठित नहीं कर पाते। इन सभी त्रुटियों का कारण यही होता है कि अनाथालयों का वातावरण बहुत दरिद्र अथवा उद्दीपनहीन रहा करता है।

जेलाजो (1972) के अनुसार बच्चों को आरम्भ से पर्याप्त उद्दीपन, अवसर और प्रशिक्षण देने से विकास के लक्षण कुछ पहले प्रकट होते हैं। इसके विरूद्ध गौट्स (1972) का विचार है कि समय से पहले बच्चों को कुछ सिखाने का प्रयास करने से उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा पर खतरा हो सकता है, जैसे-समय से पहले ही बच्चे को यदि बेसहारा खड़ा कर दें तो वह गिर सकता है जिससे उसके मुलायम सिर में घातक चोट लग सकती है। परन्तु मैकग्रौ (1939) के प्रयोग पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि समय से पहले अर्थात बिना परिपक्वन हुए प्रशिक्षण देने से भी कुछ लाभ होता है। मैक्गौ ने जौनी और जिम्मी नामक दो जुड़वें बच्चों को लिया। जौनी को चलने का प्रशिक्षण दिया और उस अवधि में जिम्मी को ऐसा अवसर नहीं दिया। जौनी को उस समय तो कोई लाभ नहीं हुआ परन्तु जीवन भर वह जिम्मी से अधिक फुरतीला रहा। ढ़ाई वर्ष की आयु में एक्सरे से पता चला कि जौनी के पाँव की पेशियाँ जिम्मी से अधिक विकसित थीं। 10 वर्ष की आयु में भी यह भेद वर्तमान था। फाउलर (1971) का विश्वास है कि प्रशिक्षण चाहे किसी भी आयु में दिया जाय बच्चे अवश्य लाभान्वित होते हैं और यह लाभ जटिल कार्यो में अधिक होता है।

स्किनर (1975) का विचार है कि विकास में परिपक्वन-अधिगम भेद करना ही गलत है। यदि यह कहा जाए कि अमुक विशेषता सीखने से विकसित हुई तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि उस अवधि में परिपक्वन की प्रक्रिया रूकी हुई थी। जातिगत विशेषताएँ तो बिना सीखे ही विकसित होती हैं, व्यक्तिगत गुण सीखे जाते हैं और यह सीखना परिपक्वन पर ही आधारित होता है।

आनुवंशिकता बनाम वातावरण

व्यक्ति में पाये जाने वाले विभिन्न गुणों का विकास माँ-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, से प्राप्त जीनों द्वारा होता है या फिर घर-परिवार, आस-पड़ोस, स्कूल-कालेज आदि में उपलब्ध वातावरण के द्वारा होता है-यह आज भी एक विवाद का विषय है।

आनुवंशिकता को मानने वालों का कहना है कि व्यक्तित्व गुणों का विकास आनुवंशिक नियमों द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में मेंडेल, गाल्टन, लैमार्क आदि के विचार महत्वपूर्ण हैं। मेण्डेल ने जहां माता और पिता से प्राप्त 23-23 क्रोमोजोम्स और उससे प्राप्त जीनों के विभिन्न संयोगों को गुणों के निर्धारण में सहायक माना वहीं गाल्टन ने संतान के गुणों के विकास में आनुवंशिकता को

सर्वाधिक शक्तिशाली कारक माना। लैमार्क ने भी दावा किया कि माता-पिता या अन्य पूर्वजों के अर्जित गुण भी सन्तान को आनुवंशिकता द्वारा मिलते हैं। परन्तु वातावरणवादी मानवीय गुणों के विकास की व्याख्या उसके समस्त वातावरण से प्राप्त प्रेरकों और अभिप्रेरणाओं के आधार पर करते हैं। अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि व्यक्ति को न सिर्फ जन्म के बाद का वातावरण बल्कि जन्म पूर्व का वातावरण भी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करना है। दरअसल जन्मपूर्व वातावरण के दो रूप होते हैं- आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक वातावरण से तात्पर्य वह वातावरण है जो गर्भस्थ शिशु के शरीर के अन्दर रहता है और बाह्य वातावरण से तात्पर्य गर्भाशय का सामान्य वातावरण है जिसमें गर्भस्थ शिशु पड़ा रहता है। आन्तरिक वातावरण के कई पक्ष होते है, जैसे बच्चे के शरीर की प्रत्येक कोशिका के अन्दर की स्थिति कैसी है, विभिन्न कोशिकाओं के बीच के सम्बन्ध कैसे है, इत्यादि। प्रत्येक कोशिका के अन्दर के वातावरण को आन्तराकोशिका वातावरण कहते हैं। विभिन्न कोशिकाओं के बीच के वातावरण को अन्तर्कोशिक वातावरण कहते हैं। शरीर के अन्दर के आन्तराकोशिक और अन्तर्कोशिक वातावरण लिए हुए बच्चा गर्भाशय के एक विशेष प्रकार के वातावरण में 280 दिनों तक रहता है। गर्भाशय के अन्दर का यह वातावरण बच्चे के लिए बाह्य वातावरण है यद्यपि यह माँ के शरीर के अन्दर है। जन्मपूर्व वातावरण प्रधानतः शरीर क्रियात्मक और रासायनिक स्वरूप का होता है। गर्भाशय के वातावरण में कुछ भौतिक अंगों का प्रभाव भी रहता है।

जन्मोत्तर वातावरण भी दो प्रकार का होता है-बच्चों के शरीर के अन्दर का वातावरण और शरीर के बाहर का वातावरण। बाहरी संसार की ठंडक, गर्मी, हवा, रोशनी, आदि बाह्य वातावरण के भौतिक अंग हुए। वातावरण में दूसरे लोगों की उपस्थिति, उनसे आपसी सम्पर्क, उनके बीच क्रिया-प्रतिक्रिया, इत्यादि सामाजिक वातावरण हुआ जो बच्चों के विकास को व्यापक रूप से प्रभावित करता है और जन्म के बाद ही ऐसे अंगों का प्रभाव आरम्भ होता है। बच्चों के व्यवहार विकास में सामाजिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है।

अब इस बात पर विचार करें कि बच्चों के विकास में आनुवंशिकता का महत्व अधिक है या वातावरण का। यदि एक अनपढ़ किसान से भी पूछें कि तुम्हारी खेती में बीज का महत्व अधिक है या मिट्टी, हवा, खाद, पानी, रोशनी, आदि का तो वह निश्चित ही उत्तर देगा कि बीज अच्छा नहीं है तो खाद-पानी की अच्छी से अच्छी व्यवस्था करने पर भी अच्छी फसल नहीं होगी। इसी प्रकार अच्छा से अच्छा बीज रहने पर भी यदि खाद-पानी की उचित व्यवस्था नहीं हो तो अच्छी फसल नहीं उग्रगी।यदि बीज भी उन्नत हो और अच्छी मिट्टी तथा पर्याप्त खाद और पानी हो तो अधिकतम उपज होगी। बाल-विकास का अध्ययन करने वाले विज्ञानियों में किसानों जितनी सच्चाई भी नहीं पायी गयी है। इनका एक दल गाल्टन के नेतृत्व में कहता है कि आनुवंशिकता ही विकास का एकमात्र निर्धारक है तो दूसरा दल वाट्सन के नेतृत्व में दावा करता है कि मुझे एक दर्जन सामान्य बच्चे दो जिन्हें हम केवल वातावरण के हेर-फेर से व्यापारी, वकील, डाक्टर, जो चाहें बना देंगे, यहां

तक कि चोर-डाकू भी बना दे सकते हैं। ऐसे ही एकतरफा दावों के कारण आनुवंशिकता प्रति वातावरण का विवाद खड़ा हुआ है।

विकास में आनुवंशिकता और वातावरण के महत्व निर्धारित करने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि ये दोनों अंग एक दूसरे से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते। व्यक्ति का एक क्षण भी ऐसा नहीं बीतता जिसमें वह केवल आनुवंशिकता के प्रभाव में हो और वातावरण रूका हुआ हो या केवल वातावरण के प्रभाव में हो और आनुवंशिकता रूकी हुई हो। इस कठिनाई के बावजूद कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। आनुवंशिक गुण व्यक्ति के प्रयास बिना ही विकसित होते हैं जबकि वातावरण से अर्जित गुणों के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है। अब कुछ अध्ययनों के प्रकाश में इस विवाद को देखें।

केलौग एवं केलौग ने अपने 10 महीने के बेटे डोनैल्ड को गूआ नामक साढ़े सात महीने की माद चिम्पैंजी के साथ 9 महीने तक पोसा और दोनों को यथासंभव एक वातावरण में एक साथ रखा। जितनी बातें डोनैल्ड को सिखाई गयीं उतनी ही बातें गूआ को भी सिखाई गयीं। कपड़े पहनना, दो पाँव पर चलना, टेबुल पर खाना, कुछ मौखिक आदेशों को समझना, इत्यादि, गूआ सीख गयी, परन्तु उसे बोलना कभी नहीं आया। डोनैल्ड की भाषा और बौद्धिक योग्यता क्रमशः बढ़ती ही गयी। स्पष्ट हुआ कि गूआ की आनुवंशिकता में भाषा-योग्यता नहीं थी इसलिए वह बोल नहीं सकी। आनुवंशिकता के कारण ही गूआ का बौद्धिक विकास पहले ही रूक गया और डोनैल्ड आगे बढ़ता गया।

केलौग और केलौग ने एक पशु को मानव-समाज में पाला परन्तु उसे मानव-भाषा नहीं दे सके।डा0 इटार्ड ने एक ऐसे मानव बच्चे का अध्ययन किया जो पशु वातावरण में पाला गया। यह बच्चा ऐवेरौन के जंगल में पाया गया था, इसी कारण उसे ऐवेरौन का जंगली लड़का कहते हैं। यह बच्चा पशुओं की बोली बोलता था, चारों हाथ-पाँव पर चलता और कच्चा गोश्त खाता थां प्रयास के बावजूद उसमें बोलने या दूसरे बौद्धिक कार्य करने की योग्यता विकसित नहीं हो सकी। यह बच्चा अधिक दिनों तक मानव समाज में जीवित भी नहीं रह सका। कमला और बिमला नामक दो बच्चियाँ भारत के जंगलों में भी मिलीं जिनका पालन पोषण आरम्भ से ही पशुओं ने किया था। जिस समय ये बच्चियाँ मिलीं उनमें सारे लक्षण पशुओं जैसे थे। ये बच्चियाँ भी मानव समाज में अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकी। पशु वातावरण में पाले गये मानव बच्चों के अध्ययन से पता चलता है कि कुछ विशेषताएँ जिन्हें हम मानव-विशेषता कहते हैं वे मानव-समाज की देन हैं, मानव आनुवंशिकता की नहीं। ये दोनों अध्ययन वातावरण के महत्व को दर्शाते हैं।

गाल्टन बहुत बड़े आनुवंशिकतावादी थे। उन्होंने परिवार के विभिन्न व्यक्तियों और विभिन्न परिवारों के व्यक्तियों के बीच समानता का अध्ययन किया। उनके अध्ययनों से पता चला कि एक परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के अन्दर शरीर के रंग-रूप तथा मानसिक योग्यताओं की जितनी समानता होती है उतनी समानता दो परिवार के व्यक्तियों के बीच नहीं होती है। उन्होंने इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यिक,

दर्शनशास्त्री, विज्ञानी तथा राजनीतिज्ञ परिवारों के 977 व्यक्तियों का अध्ययन करके हेरेडिटरी जीनियस (1869) नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें दावा किया कि आनुवंशिकता की समानता के कारण बड़े बाप के बेटे भी महान होते हैं। उनका विश्वास था कि आनुवंशिकता के कारण मेधावी परिवार के सभी लोग मेधावी होते हैं। यह ठीक है कि गाल्टन ने जिन बड़े लोगों का अध्ययन किया उनकी सन्तान भी ऊँचे पदों पर थी, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या केवल आनुवंशिकता के कारण बड़ों के बच्चे बड़े हुए या इसमें वातावरण का भी कुछ योगदान था। बड़े लोगों के परिवार का वातावरण भी विकसित हो जाता है, बड़े लोगों से उनके सम्पर्क भी हो जाते हैं जिससे ऊँचेपदों पर पहुँचने में सहायता मिलती है, इत्यादि। यह बिल्कुल संभव है कि हक्सले परिवार का बच्चा किसी गरीब के घर पलता तो वह भी साधारण व्यक्ति हो जाता और गरीब परिवार का बच्चा हक्सले-परिवार में पलता तो वह भी हक्सले के बेटों के समान बड़ा विज्ञानी और महान हो जाता।

गाल्टन ने कलाकार परिवार के बच्चों की तुलना सामान्य परिवार के बच्चों से की। कलाकार माता-पिता के 64 प्रतिशत बच्चे कलाकार पाये गये जबकि सामान्य परिवार के केवल 21 प्रतिशत बच्चे कलाकार मिले। इस भेद की व्याख्या भी गाल्टन ने आनुवंशिकता के भेद के आधार पर की जो स्पष्टतः गलत है क्योंकि यह भेद तो वातावरण की देर मालूम होता है।

गोडार्ड की रिपोर्ट है कि कैलिकैक नामक एक सैनिक ने एक बुद्धिहीन स्त्री से शादी की जिससे हुए अधिकांश बच्चे बुद्धिहीन, अपराधी और कदाचारी हुए। कैलिकैक ने एक शादी एक सामान्य बुद्धिवाली महीला से भी की थी जिससे हुए अधिकांश बच्चे सामान्य थे। गोडार्ड ने कैलिकैक की दोनों पत्नियों की सन्तान के भेद की व्याख्या आनुवंशिकता भेद के आधार पर की जो सही नहीं है। बुद्धिहीन महिला ने खराब वातावरण बनाया होगा जिसमें पलने वाले बच्चे भी खराब हो गये होंगे।

बिनशिप की रिपोर्ट है कि एडवर्ड नामक एक व्यक्ति की एक पत्नी तीव्र बुद्धिवाली थी और दूसरी पत्नी साधारण बुद्धिवाली। बुद्धिमान पत्नी से जन्मे सभी बच्चे ऊँचे और प्रतिष्ठित पदवाले हुए जबकि कम बुद्धिवाली पत्नी से हुए सभी बच्चे साधारण और नीचे व्यक्ति ही हुए। बिनशिप ने भी निष्कर्ष निकाला कि बच्चों के इन दोनों समूहों का भेद दोनों माताओं की बुद्धि के भेद के कारण हुआ। ऐसा ही निष्कर्ष गोडार्ड का था जिस पर हम ऊपर संदेह कर चुके हैं।

एक अध्ययन डुगडेल एवं एस्टाब्रूक ने किया। ज्यूक्स नामक एक अमरीकी मछुआ साधारण बुद्धि का आदमी था जिसने एक भ्रष्ट स्त्री से विवाह किया। ज्यूक्स और उसकी भ्रष्टा पत्नी से चले परिवार के 1000 बच्चों में 30 प्रतिशत तो बचपन में ही मर गये, 31 प्रतिशत भिखारी हो गये, 24 प्रतिशत सदा बीमार रहे और 13 प्रतिशत किसी न किसी अपराध में जेल गये। इनमें से केवल 20 प्रतिशत ने सामान्य ढंग से जीवन बिताया। डुगडेल ने भी ज्यूक्स परिवार के बच्चों की यह दुर्गति माँ की दूषित आनुवंशिकता के कारण माना, परन्तु इसमें भी वातावरण के प्रभाव को अवैज्ञानिक ढंग से दबाया गया है।

गाल्टन के प्रिय विद्यार्थी पीयरसन ने 2000 भाई-बहनों का अध्ययन करके निष्कर्ष दिया कि उनकी शारीरिक और मानसिक समानता का आधार उनकी आनुवंशिकता थी। गोडार्ड ने मन्द बुद्धिवाले 300 परिवारों का अध्ययन करके निष्कर्ष दिया कि इन परिवारों के 77 प्रतिशत दोष आनुवंशिकता के दोषों के कारण थे। इसके विपरीत डौल के अनुसार केवल 33 प्रतिशत बुद्धिमन्दता दूषित आनुवंशिकता के कारण उत्पन्न होती है।

प्रायः बुद्धि को आनुवंशिकता की देन माना जाता है जो सही नहीं है। टर्मन के अनुसार बुद्धि आनुवंशिकता की देन है जबकि गोर्डन के अनुसार नाव पर रहने वाले मछुओं की बुद्धि अच्छा वातावरण नहीं मिलने के कारण घट गयी और उनकी बुद्धि का पिछड़ापन आयु बढ़ने के साथ और बढ़ता ही गया। प्रेसी एर्व थौमस ने देखा कि गाँव में रेने वाले बच्चों की तुलना में शहर के बच्चे कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि बुद्धि के विकास में आनुवंशिकता का प्रमुख स्थान है परन्तु उसमें कुछ हाथ वातावरण का भी है।

आयोवा विश्वविद्यालय में अनाथालय में रेने वाले बच्चों का अध्ययन हुआ। इन बच्चों के दो वर्ग बनाए गये, एक को लिखने पढ़ने की सुविधाएँ दी गयीं और दूसरे वर्ग को वंचित रखा गया। सुविधाओं वाला वर्ग बुद्धि में देसरे वर्ग से कुछ ऊपर था। शिकागो में भी ऐसा ही अध्ययन हुआ और निष्कर्ष आयोवा-अध्ययन जैसे ही प्राप्त हुए। इन सभी अध्ययनों से स्पष्अ होता है कि वातावरण की सुविधाओं से बुद्धि में कुछ वृद्धि अवश्य होती है। व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता और वातावरण की भूमिका कुछ भिन्न दिखाई देती है। अभिन्न यमजों की आनुवंशिकता बिल्कुल एक होती है। न्युमैन ने मेबुल और मेरी नामक दो बहनों का अध्ययन किया जो अभिन्न यमजा थीं और दा वातावरण में पाली गयी थीं। दोनों के स्वभाव और व्यक्तित्व में काफी अन्तर पाया गया। न्युमैन और उनके सहयोगियों ने रेमण्ड और रिवार्ड नामक दो भाइयों में शारीरिक विशेषताओं और बौद्धिक योग्यताओं में काफी समानता थी किन्तु उनके स्वभाव और व्यक्तित्व में बड़े भेद थे। अतः व्यक्तित्व विकास में वातावरण की स्पष्ट भूमिका होती है।

सबसे बड़े वातावरणवादी, वाट्सन ने भी 'सामान्य बच्चा' ही माँगा जिन्हें वे वातावरण के हेर-फेर से व्यापारी, वकील और इंजीनियर या चोर, डाकू और हत्यारा बना सकते थे। अतः छिपकर उन्होंने भी आनुवंशिकता के महत्व को स्वीकारा। वाट्सन जीवन भर प्रयास करके भी केलॉग की गूआ को दो शब्द भी बोलना नहीं सिखा सकते थे। स्पष्ट हुआ कि विकास को आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित सीमाओं से नहीं ले बाहर जा सकते हैं चाहे वातावरण कितना ही अच्छा क्यों न कर दिया जाए।

आनुवंशिकता-वातावरण विवाद में कुछ राजनीतिक दृष्टिकोणों का भी हाथ रहा है। जो लोग पूँजीवादी दृष्टिकोण के हैं वे आनुवंशिकता की प्रधानता मानते हैं। उनके अनुसार भगवान ने ही आनुवंशिकता के माध्यम से किसी को अधिक और किसी को कम योग्यता दी है जिस कारण समाज में कोई ऊँचा और कोई नीचा है। इसके विपरीत समाजवादी दृष्टिकोण वाले यह मानते हैं कि योग्यताएँ तो सबों की समान हैं, केवल समाज में उपलब्ध बसमान सुविधाओं के कारण छोटे-बड़े

का भेद उत्पन्न होता है। दोनों दृष्टिकोण अपने अन्दर आंशिक सत्यता ही रखते हैं। विकास की मात्रा आनुवंशिकता × वातावरण × समय के बराबर होती है। यदि इन तीनों अंगों में से किसी को भी शून्य कर दें तो गुणनफल अर्थात विकास शून्य हो जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

6. परिवार एवं विद्यालय मानव विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं-

   (क) आनुवंशिकता से सम्बद्ध (ख) वातावरण से सम्बद्ध

   (ग) दोनों से सम्बद्ध (घ) इनमें से किसी से सम्बद्ध नहीं

7. निम्नलिखित कथनों में सही/गलत बतायें -
   i. विकास के पैटर्न का पूर्व कथन नहीं हो सकता।
   ii. विकास का एक निश्चित क्रम होता है।
   iii. विकास विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है।
   iv. विकास एक सतत प्रक्रिया है।
   v. विकास में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है।
8. विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों के नाम लिखिए।

4.8 सारांश

वृद्धि और विकास वैसे तो पर्यायवाची शब्द है, परन्तु मानव विकास क परिप्रेक्ष्य में दोनों पदों में थोड़ी भिन्नता है।

वृद्धि से तात्पर्य मानव शरीर के विभिन्न अंगों के आकार, भार तथा प्रकार्य एवं शक्तियों में होने वाली वृद्धि से है जबकि विकास से तात्पर्य गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले परिवर्तनों के प्रगतिशील क्रम से है जिसके कारण व्यक्ति में नवीन विशेषताएं एवं योग्यताएं प्रकट होती है।

मानव विकास एवं वृद्धि जहां परिपक्वता एवं अधिगम का प्रतिफल है वहीं आनुवंशिकता एवं पर्यावरण का भी इसके निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त मानव का विकास उसकी बुद्धि, लिंग, अन्तःस्रावी ग्रंथियां, पोषाहार, प्रजाति, जन्म-क्रम आदि से भी प्रभावित होता है।

4.9 शब्दावली

1. **वृद्धि:** बच्चों में उम्र के अनुसार होने वाला शारीरिक आकार, भार, हड्डियों, मांसपेशियों, दांत, तंत्रिका-तंत्र आदि का समुचित विकास।

2. **विकास**: जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाला क्रमिक तथा संगत परिवर्तनों का उत्तरोत्तर क्रम।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भौतिक, दैहिक
2. गेसेल
3. ''विकास प्रगतिशील परिवर्तनों का एक नियमित, क्रमबद्ध एवं सुसम्बद्ध पैटर्न है।''
4. मानसिक क्रियाओं
5. वृद्धि
6. ख वातावरण से सम्बद्ध
7. सही/गलत
   - i. गलत
   - ii. सही
   - iii. गलत
   - iv. सही
   - v. सही
8. विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों के नाम हैं- परिपक्वता तथा अधिगम या सीखना

4.11 संदर्भ ग्रन्थ

6. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
7. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो मेरठ
8. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्रहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
9. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
10. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
11. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं? वृद्धि एवं विकास में अन्तर स्पष्ट करें।
2. मानव विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना करें।।
3. मानव विकास में निम्नलिखित की भूमिका पर प्रकाश डालें -
   - (अ) परिपक्वता एवं अधिगम
   - (ब) वंशानक्रम एवं वातावरण

इकाई–5 मानव विकास की अवस्थायें
Stages of Human Development

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मानव विकास की अवस्थाएं
5.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं
5.4.1 पूर्व बाल्यावस्था
5.4.2 उत्तर बाल्यावस्था
5.4.3 किशोरावस्था
5.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य
5.5.1 पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
5.5.2 बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
5.5.3 किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ-ग्रन्थ
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने मानव विकास एवं वृद्धि का अध्ययन किया तथा मानव विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के संबन्ध में जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उस अवस्था विशेष में सम्पादित विकासात्मक कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।इस इकाई के अध्ययन से आपको मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं को जानने-

समझने तथा उनकी विशेषताओं एवं विकासात्मक कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त करने की पर्याप्त सामग्री मिल पायेगी।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकेंगे।
2. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकेंगे।
3. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 मानव विकास की अवस्थायें

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच की प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है गर्भाधान से मृत्यु तक का विकासात्मक अवस्थाओं को निम्नलिखित आठ भागों में बाँटा जा सकता है-

	विकास की अवस्था	**जीवन अवधि**
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल या बाल्यावस्था a) पूर्व- बाल्यावस्था b) उत्तर - बाल्यावस्था	3 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 4 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	युवावस्था	20 से 25 वर्ष तक
6.	प्रौढ़ावस्था	26 से 60 वर्ष तक
7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

गर्भकालीन अवस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म के पहले की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनायें होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह की अवस्था, इस अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भ्रूणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भ्रूण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भ्रूण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भ्रूण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपाव में बहुत बड़ा होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भ्रूण का निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को मेसोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहिचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिए, क्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया होता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अट्ठारह इंच तक हो

जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

शैशवावस्था

जन्म से लेकर तीन वर्षों की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नये वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिये आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते।

बाल्यावस्था

जैसा पहले अध्याय में बताया जा चुका है, विकासात्मक मनोविज्ञान में ‘बाल्यावस्था’ का प्रयोग प्रायः उसके व्यापक अर्थ में किया जाता है। व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो ‘बाल्यावस्था’ का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

अपने संकुचित अर्थ में बाल्यावस्था तीन से बारह वर्ष की अवस्था होती है। परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए इस लम्बी अवस्था को पूर्व-बाल्यावस्था सात से बारह वर्ष तक मानी जाती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है। परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द्व आदि का

विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द्व और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भली- भाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठोरताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

वयःसन्धि

वयःसन्धि वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है। यद्यपि इस अवस्था का विस्तार बहुत छोटा होता है फिर भी इसका कुछ भाग बाल्यावस्था में और कुछ किशोरावस्था में पड़ जाता है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता काम-शक्ति का प्रथम उदय और तत्संबंधी इन्द्रियों की परिपक्वता मानी जाती है। चूँकि यौन-भिन्नता और व्यक्तिगत भिन्नता के कारण काम-शक्ति का प्रथम उदय और जनेन्द्रिय की परिपक्वता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग आयु में पायी जाती है, इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वयःसन्धि किस वर्ष से शुरू होती है। बालिकाओं में यह अवस्था सामान्यतः ग्यारह से तेरह वर्षो के बीच शुरू होती है। बालकों में इसके एक वर्ष बाद। इस अवस्था में होने वाले यौन-सम्बन्धी विकासों के कारण बालक अपने संवेगात्मक और सामाजिक नियन्त्रण को प्रायः खो बैठता है। अन्य शारीरिक और मानसिक विकासों की गति इस अवस्था में बड़ी तीव्र होती है।

किशोरावस्था

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्व समझा जाता है। इस अवस्था का सविस्तार उल्लेख एक अलग अध्याय में किया गया है। अतः यहाँ केवल दो शब्दों में इसका संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है।

किशोरावस्था जीवन की सुनहली अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था की अनेक विशेषतायें होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखलाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक न तो अपना शारीरिकऔर न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है। अतः शिशु की ही भाँति उसे वातावरण के साथ अपना नवीन समायोजन प्रारम्भ करना पड़ता है।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है। परन्तु सत्य यह है कि किशोर बालक-बालिकाओं की इन अद्भुत उमंगों के पीछे उनकी यौन-परिपक्वता कार्य करती है। कामेच्छा जाग्रत हो जाने के कारण किशोरों को यह अवस्था बड़ी प्रिय और आनन्दमयी लगने लगती है। इसीलिए कोई किशोरावस्था को अपने जीवन की सुनहली अवस्था कहकर पुकारता है और कोई उसे अपने जीवन का बसन्त समझता है।

युवावस्था

सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में विगत 50-60 वर्षों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अवधि में वृद्धि हुई है। इन दोनों के मध्य की अवस्था को 'युवावस्था' का नाम दिया गया है। 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था में अयक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करने अथवा रोजगार के अवसरों की तलाश में रहता है। इस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। वर्तमान में भारतवर्ष में पुरुषों के लिए इस अवस्था के औसत आयु 26 वर्ष तथा महिलाओं की औसत आयु 22 वर्ष है। रोजगार के अवसर त्वरित गति से सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। सम्यक रोजगार प्राप्त होने अथवा विवाह हो जाने तक के 20 से 25-26 वर्ष के व्यक्ति 'युवावस्था'के अंतर्गत समझे जाते हैं।

प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती हैं।

मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास से लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने लगती है। धनाज्रन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती है। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथ प्रतिक्रिया की गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में व्यक्ति का का सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास सामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिये सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्अि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का वमुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. जन्म से लेकर तीन वर्षों की अवस्था को ____________ कहा जाता है।
2. मानव विकास की वह अवस्था जो 12-13 वर्ष से लेकर 19-20 वर्ष तक रहती है.................. कहताली है। (बाल्यावस्था,युवावस्था,किशोरावस्था)
3. ____________ वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है।
4. ____________ बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है।
5. 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था को कहा ____________ जाता है।
6. ____________ का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है।
7. प्रौढ़ावस्था अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। (सत्य/असत्य)
8. ____________ जीवन की अंतिम अवस्था होती है।

5.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं

यदि हम विकासात्मक अवस्थाओं को शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में देख तो पाते है कि बाल्यावस्था और किशोरावस्था का शिक्षा ग्रहण करने का ख्याल से विशेष महत्व है। इन दोनों ही अवस्थाओं को पुनः पूर्व एवं उत्तर अवस्था के उपभागों में बाँटा गया है। इस प्रकार शिक्षा के दृष्टिकोण से ये अवस्थाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ इन विकासात्मक अवस्थाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

पूर्व बाल्यावस्था

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांवेगिक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. **बाल्यावस्था एक समस्या अवस्था होती है-**इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक तथा बेकहा होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। बुरनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल का होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।
3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक्स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक्स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।

4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है**-इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमेशा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।
5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है**-इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **उत्तर बाल्यावस्था को माता-पिता द्वारा एक उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है**-इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट-फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।

2. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है-** उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-** शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मद्द मिलती है। इस अवस्था में छात्र पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाजुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा ह्याईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर अवस्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो अपने-आपमें इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।
4. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लिए काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।
5. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में सर्जनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

किशोरावस्था

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यों में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19-20 साल तक की होती है और इस तरह से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक्किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण अवस्थाहै-**किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों की देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्अ रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।
2. **किशोरावस्था एक परिवर्ती अवस्था होती है-**किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती है, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मद्द करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में एक अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है-**इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्अ होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चा के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?''

4. **किशोरावस्था एक समस्या उम्र होती है**-ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए है। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से अनभिज्ञ होते हैं। फलतः, वे किशोरावस्था की अधिकतर समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।
5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है**-किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने 'अहम पहचान की समस्या' कहा है।
6. **किशोरावस्था अवास्तविकताओं का समय होता है**-किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।
7. **किशोरावस्था वयस्कावस्था की दहलीज होती है**-किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 18-19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मंदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. पूर्व बाल्यावस्थाइसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। (सत्य/ असत्य)
10. किस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसन्द करते हैं?

क. पूर्व बाल्यावस्था
ख. उत्तर बाल्यावस्था
ग. पूर्व किशोरावस्था
घ. उत्तर किशोरावस्था

11. मानव विकास की किस अवस्था को माता-पिता द्वारा एक ''उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है?

क. पूर्व बाल्यावस्था
ख. उत्तर बाल्यावस्था
ग. पूर्व किशोरावस्था
घ. उत्तर किशोरावस्था

12. ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?'' यह टिप्पणी किसकी है?

5.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य

प्रत्येक समाज में बच्चा एक विशेष उम्र में एक खास तरह के व्यवहार तथा कौशल को तेजी से सीखता है। यही कारण है कि शिक्षक, माता-पिता तथा समाज के अन्य लोग बच्चों से उनकी उम्र के अनुसार विशेष तरह की सामाजिक उम्मीदें बनाकर रखते हैं। वे लोग उम्मीद करते हैं कि बच्चे जिस उम्र के हो गए है उस उम्र की सारी अनुक्रियाएँ उन्हें करनी चाहिए। इस तरह की सामाजिक प्रत्याशा को हेबिगहर्स्ट (1972) ने विकासात्मक कार्य कहा है। हेबिगहर्स्ट (1972) के अनुसार विकासात्मक कार्य को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''विकासात्मक कार्य वह कार्य या पाठ है जो व्यक्ति की जिंदगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में संबंधित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे आनंद आता है, परंतु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।'' शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विकासात्मक कार्य से निम्नांकित तीन तरह के उद्देश्यों की पूर्ति होती है-

1. विकासात्मक कार्य से शिक्षकों तथा अभिभावकों को यह जानने में सुविधा होती है कि एक खास उम्र पर बालक क्या सीख सकते है और क्या नहीं।
2. विकासात्मक कार्य बालकों को उन व्यवहारों को सीखने में एक प्रेरणा का काम करता है जिसे सामाजिक समूह उसे सीखने के लिए उम्मीद करता है।
3. विकासात्मक कार्य शिक्षकों तथा माता-पिता को यह बताता है कि उन्हें अपने बच्चों से निकट भविष्य तथा सुदूर भविष्य में क्या उम्मीद करनी चाहिए। अतः, विकासात्मक कार्य

शिक्षकों तथा अभिभावकों को अपने बच्चों को इस ढंग से तैयार करने की प्रेरणा देते हैं ताकि वे भविष्य की नई चुनौतियों का सामना कर सके।

हेबिगहर्स्ट (1972) ने पूर्व बाल्यावस्था उत्तर बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था के लिए विकासात्मक कार्य तैयार कर रखा है जिससे शिक्षकों तथा अभिभावकों को बालकों के मार्गदर्शन में काफी सहायता मिली है तथा शिक्षा जगत में इसके परिणाम काफी अच्छे देखने को मिले हैं। इन विकासात्मक कार्यो का वर्णन अवस्था विशेष हेतु निम्नांकित है-

पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने से पूर्व की अवस्था यानी 10 वर्ष से पहले की अवस्था के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. चलना सीखना
2. ठोस आहार लेना सीखना
3. बोलना सीखना
4. मल-मूत्र त्याग करना सीखना
5. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना
6. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना
7. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना
8. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ सांवेगिक रूप से संबंधित करना सीखना
9. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने की अवस्था, यानी 5-6 साल की अवस्था से लेकर प्राक्-किशोरावस्था, यानी, 11-12 साल की अवस्था तक के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।
2. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
3. अपनी ही उम्र के साथियों के साथ् मिलना-जुलना सीखना।
4. उपयुक्त पुरूषोचित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
5. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करना से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
6. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
7. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।

8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
9. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

किशोरावस्था की तीनों अवस्थाओं (प्राक्-किशोरावस्था, पूर्व किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था) यानी, 12-13 साल से लेकर 19-20 साल की अवधि तक के विकसात्मक कार्य निम्नलिखित हैं-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।
3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलताओं को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

अभ्यास प्रश्न

13. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखनाउत्तर बाल्यावस्था काविकासात्मक कार्य है। (सत्य/असत्य)
14. ''उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएं सीखना'' एक विकासात्मक कार्य है-
    क. बाल्यावस्था
    ख. किशोरावस्था की
    ग. वयस्कावस्था की
    घ. इनमें से किसी की नहीं

5.6 सारांश

मानव विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं- गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था। शैक्षिक दृष्टिकोण से

बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का विशेष महत्व है क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति को आगामी जीवन के लिए आवश्यक व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती है तथा अवस्था विशेष के अपने विकासात्मक कार्य होते हैं।

5.7 शब्दावली

1. **गिरोह अवस्था:** उत्तर बाल्यावस्था जो 5-6 वर्ष से लेकर 10-12 वर्ष तक रहती है तथा जिसमें बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।
2. **विकासात्मक कार्य:** विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति की जिन्दगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में सम्बन्धित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और बाद के कार्यो को करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और बाद के कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।

5.8 अभ्यास-प्रश्नों के उत्तर

1. शैशवावस्था
2. किशोरावस्था
3. वयःसन्धि
4. युवावस्था
5. किशोरावस्था
6. प्रौढ़ावस्था
7. सत्य
8. वृद्धावस्था
9. सत्य
10. कपूर्व बाल्यावस्था
11. ख उत्तर बाल्यावस्था
12. इरिक्सन की
13. सत्य
14. ख किशोरावस्था की

5.9 संदर्भ-ग्रन्थ

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो मेरठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्रहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन करें।
2. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं? पूर्व एवं उत्तर बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यो का विवरण दें।
3. किशोरावस्था की विशेषताओं का उल्लेख करें तथा इस अवस्था के विकासात्मक कार्यो को रेखांकित करें।
4. टिप्पणी लिखें-
    i. बाल्यावस्था की विशेषताएं
    ii. किशोरावस्था

इकाई- 6 शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Infancy with respect to Physical,Mental, Emotional and Social Development

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 शैशवावस्था
6.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास
6.5 शैशवावस्था में मानसिक विकास
6.6 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
6.7 शैशवावस्था में सामाजिक विकास
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रन्थ
6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

जन्म के समय बालक (शिशु) शारीरिक और मानसिक रुप से विकसित नहीं होता। वह एक मनोशारीरिक प्राणी के रुप में जन्म लेता है। धीरे-धीरे विकास के फलस्वरुप उसकी मानसिक और शारीरिक शक्ति का प्रस्फुटन होता है। बाल विकास की इस प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकों ने चार सोपानों में विभाजित किया है-

शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढावस्था। प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषतएं होती हैं जो कि उसा अवस्था विशेष में परिलक्षित होतीं हैं। इस इकाई में आप मानव विकास की शैशवावस्था का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शैशवावस्था के बारे में जान पायेंगे ।
- शैशवावस्था में मानसिक विकास के बारे में समझ सकेंगे।
- शैशवावस्था में शारीरिक विकास की व्याख्या सकेंगे।
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कर सकेंगे।
- शैशवावस्था में सामाजिक विकास के बारे में जान पायेंगे।
- शैशवावस्था में शिशु के विकास का अध्ययन करने के पश्चात माता-पिता की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 शैशवावस्था (Infancy)

सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 6 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं। शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिये किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं। सामान्यतः तीन वर्ष की आयु तक का बालक शब्दों का सार्थक प्रयोग करना शुरु कर देता है। इसलिये तकनीकी दृष्टि से शून्य से तीन वर्ष की आयु की अवधि को शैशवावस्था कहते हैं। शैशवावस्था बालक का निर्माण काल है तथा शिशु जन्म के पश्चात मानव निर्माण की प्रथम अवस्था है **न्यूमैन (J. Newman)** के शब्दों में-

''पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिये बड़ी ग्रहणशील होती है।''

फ्रायड- मनुष्य को जो कुछ भी बनाना होता है वह प्रथम चार पाँच वर्षों के बन जाता है। सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अवस्था ही वह आधार है जिस पर बालक का भविष्य या उसके जीवन का निर्माण होता है।

शैशवावस्था (जन्म से 6 वर्ष तक) में विकास का तात्पर्य यह है कि यह सामान्य बच्चों के औसत विकास से है। सामान्य का अर्थ यह भी है कि वंशानुक्रम से प्राप्त शक्तियों के आधार पर भी वह सामान्य होते हैं जिनका पर्यावरण भी सामान्य होता है। शिक्षा की दृष्टि से बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास का अधिक महत्व होता है। इसीलिये प्रस्तुत भाग में शैशवावस्था के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास पर ही प्रकाश डालेंगे।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रक्रिया मानव के जन्म से प्रारम्भ होती है और मृत्यु पर्याप्त चलती रहती है। जन्म के समय बच्चे के शरीर की बनावट, बड़े बच्चे से भिन्न होती है, पहले दो सप्ताह का बच्चा नवजात शिशु कहलाता है। नवजात शिशु की त्वचा लाल, सिकुडी हुयी तथा खुरदरी होती है। शिशु 18 से 22 घंटे रोता है। भूख लगने पर उठ जाता है एवं पेट भरने पर फिर सो जाता है।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है। **वाटसन** ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

6.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

आकार एवं वजन (Size and Weight)- शिशु जब इस संसार में आता है उस समय बालक का भार 7.15 और बालिका का भार 7.13 पौंड होता है कभी-कभी उसका भार 5 से 8 पौंड तक तथा सिर का वजन पूर्ण शरीर के वजन का 22 प्रतिशत होता है। पहले 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अन्त में तिगुना हो जाता है। दूसरे वर्ष में शिशु का भार केवल 1/2 पौंड प्रति माह के हिसाब से बढता है एंव पांचवें वर्ष के अन्त में 38 से 43 पौंड के बीच में होता है।

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जन्म से दो वर्ष की आयु तक बालक का विकास तीव्र गति से होता है। 2 वर्ष के बाद की वृद्धि निम्न प्रकार से पायी गयी है।

तालिका - वजन (Weight) पौंड में

वर्ष	**बालक**	**बालिका**
2.5	34.5	35.34
3	36.75	40.5
3.5	39	43.5
4	41.5	46.75
4.5	44	48.75
5	48.25	51.25
5.5	53	54.25
6	56.5	61.25

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत भार (किग्रा0 में)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	3.2	5.7	6.9	7.4	8.4	10.1	11.8	13.5	14.8	16.3
बालिका	3.0	5.6	6.2	6.6	7.8	9.6	11.2	12.9	14.5	16.0

लम्बाई (Length) - जन्म के समय एवं सम्पूर्ण शैशवावस्था में बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20.5 इंच एवं बालिका की 20.3 इंच होती है। अगले 3 या 4 सालों में बालिकाओं की लम्बाई बालको से अधिक होती है। उसके बाद बालको की लम्बाई बालिकाओं से आगे निकलने लगती है। पहले वर्ष में शिशु की लम्बाई

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन के अनुसार - लगभग 10 इंच एवं दूसरे वर्ष में 4 या 5 इंच बढती है। तीसरे चौथे एवं पांचवे वर्ष में उसकी लम्बाई कम बढती है।

तालिका

ऊँचाई इंच में

वर्ष	बालक	बालिका
2.5	38	38
3	39.5	39.75
3.5	41	41.5
4	42.75	43
4.5	44.25	44.75
5	45.5	45.5
5.5	47.25	46.75

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत लम्बाई (से0मी0) में

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	51.5	62.7	64.9	69.5	73.9	81.6	88.8	96.0	102.1	108.5
बालिका	51.0	60.9	64.4	66.7	72.5	80.1	87.2	94.5	101.4	107.4

सिर एवं मस्तिष्क (Head and Brain) - जब बालक जन्म लेता है तब शिशु के मस्तिष्क की माप 350 ग्राम अर्थात पूरे शरीर का 1/4 होती है। शैशवकाल में शिशु का मस्तिष्क तीव्र गति से विकसित होता है तथा पहले दो वर्षो में ही यह तीन गुना हो जाता है। 6 वर्ष की आयु में मस्तिष्क का वजन 1260 ग्राम हो जाता है। जो कि प्रौढ़ व्यक्ति के मस्तिष्क के भार का 90 प्रतिशत तक होता है। स्पष्ट है कि शैशवावस्था में मस्तिष्क का विकास तीव्र गति से होता है।

हड्डियाँ (Bones) - शरीर संरचना वास्तव में हड्डियों का ढाँचा होता है। नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग 270 होती है। शिशु की हड्डियाँ छोटी कोमल (Soft) लचीली (Pliable) होती हैं। उनकी हड्डियों का दृढीकरण तथा अस्थीकरण Ossification कैलिशयम Calcium, फासफोरस Phosphorus तथा अन्य खनिज वस्तुओं Minerals salts के सहयोग से होता है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में अस्थिकरण अधिक शीध्र होता है।

दाँत (Teeth) - जन्म के समय शिशु के दाँत नहीं होते हैं लगभग छठें या सातवें महीने में अस्थायी दूध के दाँत (Deciduous teeth) निकलने लगते हैं सबसे पहले नीचे के अगले दाँत निकलते हैं। एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दाँत निकल जाते हैं इसके पश्चात ये दाँत गिरने लगते हैं तथा पांचवे या छठें वर्ष की आयु में शिशु के स्थायी दाँत निकलने शुरु हो जाते हैं।

माँस पेशियाँ (Muscels) - नवजात शिशु की मांसपेशियों का भार उनके शरीर के कुल भार का लगभग 23 प्रतिशत होता है। मांसपेशियों के प्रतिशत भार में धीरे-धीरे बढोत्तरी होती जाती है।

अन्य अंग (Other Organs) - शिशु की भुजाओं एवं टांगों का विकास भी तीव्र गति से होता है प्रथम दो वर्षो में भुजायें दो गुनी तथा टाँगे लगभग डेढ़ गुनी हो जाती है। जन्म के समय शिशु के हृदय की धडकन अनियमित होती है कभी तेज होती है तो कभी धीमी होती है जैसे- जैसे हृदय बड़ा होता

है। वैसे-वैसे हृदय की धड़कन में स्थिरता आती है। प्रथम माह में शिशु के हृदय की गति प्रति एक मिनट में 140 लगभग बार धडकता है तथा 6 वर्ष की आयु में यह घटकर लगभग 100 हो जाती है। शिशु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास 6 वर्ष की आयु तक हो जाता है। टाँगों एवं भुजाओं का विकास अति तीव्र गति से होता है। शिशु के यौन-सम्बन्धी अंगो का विकास मन्द गति से होता है।

6.5 शैशवावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Infancy)

सोरेनसन (Sorenson) (P 31-32 के शब्दों में जैसे-जैसे शिशु प्रति दिन प्रतिमास, प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियों में परिवर्तन होता जाता है। ये परिवर्तन निम्न है-

1. प्रथम सप्ताह **(First Week)** अर्थात उत्पत्ति के समय- बालक जब इस संसार में अवतीर्ण होता है तो वह कुछ मौलिक प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। जॉन लॉक John Locke का मत है - नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है जिस पर अनुभव लिखता है। फिर भी शिशु जन्म के समय से कुछ जानता है जैसे-छीकना, हिचकी लेना, दूध पीना, हाथ पैर हिलाना, आराम न मिलने पर रोना, भूख की प्रवृत्ति, सर्दी लगने पर कँपकपाहट एवं गर्मी लगने पर गर्मी का अनुभव करता है। रोशनी की चमक तथा तेज स्वर (आवाज) सुनकर चौंकना। जन्म के दो चार घंटे बाद पीड़ा संवेदना का अनुभव करता है तथा 24 घंटे में ही दूध एवं पानी के स्वाद को समझने लगता है।
2. द्वितीय सप्ताह **(Second Week)** - जब शिशु 9-10 दिन का हो जाता है तो वह रोशनी से नही घबराता उसकी ओर देख सकता है। चमकीली एवं बडे आकार की बस्तुओ को ध्यान से देखता है एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय प्रकाश का अनुसरण करता है।
3. पहला महीना **(First Month)**- शिशु कष्ट या भूख का अनुभव होने पर विभिन्न प्रकार से चिल्लाता है और हाथ में दी जानी वाली वस्तु के पकड़ने की चेष्टा करता है।
4. दूसरा महीना **(Second Month)** - इस अवस्था में शिशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाने वाली वस्तु को ध्यान पूर्वक सुनता है आवाज सुनने के लिये सिर घुमता है। वस्तुओं को अधिक ध्यान से देखता हैं उसके पास गाना गाय जो तो ध्यान पूर्वक सुनता है अपनी माँ को देखकर कभी हँसता है तो कभी खुश होता है सब स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न करता है।
5. चतुर्थ महीना **(Fourth Month)**- चार महीने की अवस्था में शिशु चीजों को पकड़ने लगता है। खोये हुये खिलौनों को खोजता है खिलौनों आदि को ध्यान से परखता है। क्रोध भी करने लगता है एवं हँसने भी लगता है। शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियाँ करता है।

6. पंचम महीना **(Fifth Month)** – पाँच महीने की अवस्था में शिशु अपनी माँ को भली प्रकार पहचान लेता है। एवं चीजों को पकड़ने के लिये हाथ आगे बढाता है।
7. छठा महीना **(Sixth Month)** - शिशु सुनी हुयी आवाज का अनुकरण करता है। अपना नाम समझने लगता है, शिशु को सहारा देकर वह बैठने लगता है। वस्तुओं को लेकर अपने मुख के पास ले जाने का प्रयास करता है। कुछ संकेतों को भी समझने लगता है। प्रेम और क्रोध में अन्तर जान लेता है। अपने एवं पराये में अन्तर समझने लगता है।
8. सप्तम् महीना **(Seven Month)** - सात महीने की अवस्था में शिशु मुख से अनेक प्रकार की आवाजें निकालने पर प्रसन्न होता है एवं अपने खिलौने भी पहचाने का प्रयत्न करता है।
9. अष्ठम महीना **(Eight Month)**- इस आयु में शिशु खिलौने को लेने पर पुनः लेने के लिये रोने लगता है। अनेकों खिलौनों के बीच अपनी पसन्द का खिलौना छाँटने का प्रयास करता है। दूसरे बच्चों के साथ खेलने में आनन्द लेता है।
10. नवम् महीना **(Nine Month)** - नौ महीने का होने पर बालक अपने आप बैठने लगता है।
11. दशम महीना **(Ten Month)** - शिशु विभिन्न प्रकार की आवाजों और दूसरे शिशु की गतियों का अनुकरण करता है। शिशु घंटी की आवाज सुनकर उसका अनुसरण करता है एवं ढकी हुयी वस्तुओं को खोलने लगता है तथा अपना खिलौना छिन जाने पर विरोध करता है।
12. प्रथम वर्ष **(First Year)**- शिशु छोटे-छोटे शब्दों को (चार शब्द) को बोलने लगता है दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं का अनुकरण करता है। दर्पण में अपना मुँह देखने लगता है। एक वर्ष की आयु में चलने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है।
13. द्वितीय वर्ष **(Second Year)** - दो वर्ष की आयु में शिशु छोटे-छोटे वाक्यों का उच्चारण करने लगता है या दो शब्दों के वाक्यों का प्रयोग करता है वर्ष के अन्त तक उसके पास 100 से 200 तक शब्दों का भण्डार हो जाता है। चित्र में कुछ पूछने पर वह हाथ रखकर बता देता है तथा इस अवस्था में वह चॉकलेट या टॉफी आदि पर लिपटा कागज खोलने का प्रयास करता है या खोलता है। शिशु का भाषा विकास, सरल प्रश्न करना, समस्याओं को समझना, विकास का प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। परिवेश के प्रत्येक पदार्थ को देखता है एवं जानने का प्रयास करता है।
14. तृतीय वर्ष **(Third Year)**- इस अवस्था में वह पूछने पर अपना नाम बता देता है। हाथ कान, मुख आदि अंगो को पूछने पर हाथ रखकर बता देता है। सीधी या लम्बी रेखा देखकर वैसी ही रेखा खींचने का प्रयत्न करता है। तीन अंको की संख्या दोहराने लगता है एवं छोटे-छोटे वाक्यों को दोहराने लगता है तथा आमतौर पर क्या? क्यों? और कैसे? से प्रश्न आरम्भ करता है। गुडएनफ व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है। वर्ट ने 1938 में एक अध्ययन किया तथा बताया कि 3 वर्ष का

शिशु 4 से 5 मिनट तक तथा 4 वर्ष का शिशु 5-6 मिनट तक अपना ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित कर सकता है।

15. चतुर्थ वर्ष **(Fourth Year)** - छोटी एवं बड़ी रेखाओं में अन्तर जान जाता है। अक्षर लिखना आरम्भ कर देता है। वस्तुओं को क्रम से रखता है। लगभग 12 छोटे-छोटे शब्दों के वाक्यों को दोहराने लगता है। चतुर्भुज की नकल करने लगता है शिशु को ठण्ड, नींद, भूख लगने का अन्तर पूछा जाय तो बता सकता है।
16. पंचम वर्ष **(Fifth Year)**- पाँच वर्ष की अवस्था में शिशु टोपी, खिलौने, गेंद आदि शब्दों की परिभाषा करने लगता है, नीले, पीले, हरे लाल आदि रंगों का अन्तर बता सकता है, हल्की एवं भारी वस्तुओं में अन्तर बता सकता है। अपना नाम लिखने लगता है। संयुक्त एवं जटिल वाक्य बोलने लगता है, 10-11 शब्दों के वाक्यों को स्मरण कर सकता है। विभिन्न वस्तुओं को क्रमानुसार गिन सकता है, छोटी-छोटी आज्ञाओं को मानने लगता है एवं वजन के अन्तर को समझने लगता है।
17. षष्ठम वर्ष **(Sixth Year)**- शिशु गिनती याद कर लेता है सरल प्रश्नों के उत्तर दे देता है तथा चित्र दिखाने पर उसके लुप्त भागों को दिखाता है शरीर के विभिन्न अंगों के नमा बता देता हैं। छोटी-छोटी सुनी कहानी सुनाने का प्रयास करता है। स्मरण शक्ति, विकसित होने लगती है। जिज्ञासा भी उत्पन्न होने लगती है।

अभ्यास प्रश्न

1. Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है _________________ ।
2. पहले दो सप्ताह का बच्चा_________________ कहलाता है।
3. जब बालक जन्म लेता है तब उसके मस्तिष्क का माप___________ होता है।
4. नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग ___________होती है।
5. ''पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिये बड़ी ग्रहणशील होती है।'' यह किसका कथन है?
6. किसने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।
7. _________ ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

6.6 शैशवावस्था में सांवेगिक विकास Emotional development in Infancy

Bridges (व्रिजेज) के अनुसार- शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है।

- शिशु जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है, बच्चे का रोना, चिल्लाना तथा हाथ पैर पटकना आदि शिशु के संवेगात्मक व्यवहार को परिलक्षित करते हैं।
- शिशु के संवेगात्मक व्यवहार में अत्यधिक अस्थिरता होती है उसका संवेग कुछ ही समय के लिये रहता है और फिर समाप्त हो जाता है इच्छापूर्ति में बाधा उत्पन्न होने पर उसमें संवेगात्मक उत्तेजना होती है तथा इच्छा पूर्ण होने पर उसकी उत्तेजना समाप्त हो जाती है। उदारहणार्थ रोता हुआ शिशु खिलौने, दूध, मिठाई या आपनी पसन्द की वस्तु पाकर तुरंत रोना बन्द कर हंसना शुरु कर देता है तथा आयु बढने के साथ-साथ उसकी संवेगात्मक व्यवहार के स्थिरता आ जाती है।
- शिशु की संवेगात्मक अभिव्यक्ति धीरे-धीरे परिवर्तित होती जाती है। आयु बढने के साथ ऋणात्मक संवेगों की तीव्रता में कमी आती है जबकि घनात्मक संवेगों की तीव्रता में बढोत्तरी होती है उदाहरणार्थ दो या तीन माह का शिशु भूख लगने पर तब तक रोता है जब तक उसको दूध (खाना) नहीं मिल जाता है 4 या 5 वर्ष का शिशु इस प्रकार का व्यवहार नहीं करता है।
- प्रारम्भ में शिशु के संवेग अस्पष्ट होते हैं परन्तु धीरे-धीरे उसके संवेगों में स्पष्टता आने लगती है उसके संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। उदाहरणार्थ- शिशु आरम्भ में खुश होने पर मुस्कराता है कुछ समय बाद वह अपनी प्रसन्नता को हँसकर विभिन्न प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करके या बोलकर व्यक्त करता है।
- लगभग दो वर्ष की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है - गेसेल ने अपने अध्ययन में पाया कि 5 सप्ताह के शिशु की भूख, क्रोध एवं कष्ट का चिल्लाहट में अन्तर हो जाता है तथा उसकी माँ उसका अर्थ समझने लगती है।
- मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस अवस्था में कुछ विशेष संवेगों का विकास होता है जो मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होते हैं इस समय शिशु की प्रेम भावना काम प्रवृत्ति पर आधारित होती है। शिशु का अपने अंगों से प्रेम करना, इस प्रवृत्ति को द्योतक है। फ्रायड के अनुसार इस प्रकार के आत्मप्रेम को नारसीसिज्म कहते हैं। इस समय भावना ग्रन्थियों का भी विकास होता है जब शिशु 4 या 5 वर्ष का होता है तो उसमें मातृ प्रेम या पितृ विरोधी

भावना तथा पितृ प्रेम या मातृ विरोधी भावना ग्रन्थि का विकास क्रमशः बालक व बालिका में होता है।

- शिशु कुछ बातों से भयभीत होना सीख जाते हैं। जरसील्ड **(Jersild E.T.- Child Psychology)** के मतानुसार ऊँचा शोर, गिरने का डर, अप्रिय अनुभव और स्मृतियों, भयभीत, व्यक्तियों का अनुकरण आदि। किन्तु जिन बातों से शिशु डरते हैं - अंधेरा कमरा, जानवर, अपरिचित व्यक्ति, अपरिचित पदार्थ, ऊँची आवाज, ऊँचा स्थान शरीर के किसी अंग में पीडा, गिरना, ज्ञानेन्द्रिय पर चोट लगना, शिशु व्यक्ति अनुभवों से ही डरना सीखता है तथा ये व्यक्तिगत अनुभव शिशु के अलग-अलग होते हैं। शिशुओं का भय कई रूपों में प्रकट होता है जैसे रोना, चीखना, साँस का कुछ समय के लिये रूक जाना, काम करते हुये छोड देना मिमियाना, भयजन के स्थिति से दूर भाग जाना, छिप जाना आदि।
- दो से 6 वर्ष का शिशु बड़ी जल्दी क्रोध में आ जाता है क्रोध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ है खिलौने के लिये झगड़ा, कपड़ों के लिये झगड़ा, इच्छापूर्ति में बाधा, दूसरे बालक द्वारा आक्रमण, गाली गलौज क्रोध भी कई प्रकार से प्रकट करते हैं- लोट-पोट हो जाना, शरीर कडा करना, ऊपर नीचे उछलना, लात मारना, चिल्लाना, पैर पटकना, छिप जाना आदि।

Bridges के अनुसार विभिन्न प्रकार के संवेगों के उदय होने की आयु निम्न सारणी में प्रस्तुत है।

तालिका
शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

आयु	संवेग							
जन्म के समय	उत्तेजना	-	-	-	-	-	-	-
3 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	-	-	-	-	-
6 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	-	-
12 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	-
18 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या
24 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या

6.7 शैशवावस्था में सामाजिक विकास(Social Development in Infancy)

प्रथम माह (First Month)- प्रथम माह में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता, किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं करता, तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। रोने एवं नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रिया करता है। जब शिशु को गोद में सुलाया जाता है कन्धे से लगाया जाता है नहलाया जाता है या उसके कपडे बदले जाते हैं तो वह किसी अन्य व्यक्ति की अनुभूति करता है तथा उसकी अनुभूति का साधन स्पर्श है।

द्वितीय माह (Second Month) - शिशु मनुष्य की आवाज पहचानने लगता है। दूसरे व्यक्ति को अपने पास देखकर मुस्कराता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात या ताली बजाना या खिलौना दिखाता है। तो आवाज को सुनकर सिर घुमाता है।

तृतीय माह (Third Month)- शिशु अपनी माँ को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात करता है या ताली बजाता है तो वह रोते-रोते चुप हो जाता है। माँ के उससे दूर जाने पर रोता है तीन मास के शिशु में सामाजिक चेतना आने लगती है।

चतुर्थ माह (Fourth Month) - चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है उसे देखता है, कोई उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है। किसी व्यक्ति की गोद पर आने के लिये हाथ उठाना प्रारम्भ करता है।

पंचम माह (Fifth Month) - पाँचवे माह शिशु प्रेम एवं क्रोध के व्यवहार में अन्तर समझने लगता है यदि कोई उसके सामने हँसता है तो वह भी हंसने लगता है तथा डाँटने पर सहम जाता है।

षष्ठम माह (Sixth Month) - परिचित एवं अपरिचित व्यक्तियों में अन्तर करने लगता है, वह अपरिचितों से डरता है परिचित व्यक्तियों को पहचान लेता है बडों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है, वह बडों के बाल पेन कपडे, चश्मा आदि खीचने लगता है।

अष्टम् माह (Eight Month)- शिशु बोले जाने वाले शब्दों और हाव-भाव का अनुकरण करने लगता है। शिशु दूसरे बालकों की उपस्थिति आवश्यक मानता है।

नवम माह (Nineth Month)- दूसरों के शब्दों, हाव भाव तथा कार्यों का अनुकरण उसी प्रकार से करने का प्रयास करता है। अपनी ही परछाई के साथ खेलने का प्रयास करता है तथा उसे चूमने का प्रयास करता है।

प्रथम वर्ष (First year) - एक वर्ष की आयु में मना किये जाने वाले कार्य को नहीं करता है। घर के सदस्यों से हिल-मिल जाता है। मना करने पर मान जाता है। अपरिचितों के प्रति भय तथा

नापसन्दगी व्यक्त करता है। एक वर्ष का शिशु अपनी सामाजिकता का परिचय कई रुपों में देता है वह घिसटता हुआ अन्य व्यक्ति तक पहुंचता है पदार्थों को उठाता एवं पटकता है। नवीन वस्तुओं में रुचि लेता है।

द्वितीय वर्ष (Second year) - दो वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में कोई न कोई सहयोग देने लगता है इस प्रकार वह परिवार का सक्रिय सदस्य बन जाता है। सामुहिक खेल में खेलने लगता है।

तृतीय वर्ष **(Third year)** - तीसरे वर्ष में वह अन्य बालकों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान-प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालकों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

चतुर्थ वर्ष **(Fourth year)** - इस समय उसका सामाजिक व्यवहार आत्म केन्द्रित हो जाता है। इस अवस्था में वह प्रायः नर्सरी कक्षा (विद्यालयों) में जाने लगता है उसके व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। वह नये-नये सामाजिक सम्बन्ध बनाता है तथा नये सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजित करता है।

पंचम वर्ष **(Fifth year)**- शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है वह जिस समूह का सदस्य बनता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरुप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

हरलॉक ने लिखा है (Hurluck) (P-270)- शिशु दूसरे बच्चों के सामुहिक जीवन से अनुकूलन करना, उनसे लेन-देन करना और अपने खेल के साथियों को अपनी वस्तुओं में साझीदार बनाना सीख जाता है, वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमान के अनुसार अपने को बनाने की चेष्टा करता है।

षष्ठम वर्ष **(Sixth year)** - इस वर्ष में वह प्राथमिक स्कूल में जाने लगता है वहाँ उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ हो जाता है वहाँ वह नये वातावरण से अनुकूलन करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना एवं नये मित्र बनाना सीखता है। लडकियाँ गुडिया खेलती हैं, लडका अनुकरणात्मक खेल खेलते हैं। इस आयु में बच्चे लडते भी हैं तथा वह लडाई क्षणिक होती है। सामुहिक खेलों में भाग लेते हैं।

अभ्यास प्रश्न

8. "शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है" यह कथन किसका है?
9. लगभग _________ की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है।

10. ________में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता।
11. _______________की आयु में शिशु परिवार का सदस्य बन जाता है। लगता है।

6.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शैशवावस्था में शिशु के शरीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास की प्रक्रिया एवं इस प्रक्रिया में होने वाले लक्षणों तथा परिवर्तनो का उल्लेख किया गाया है। शैशवावस्था जन्म के पश्चात की सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण अवस्था है। इस भाग में एक सामान्य शिशु की शैशवावस्था में विकास की चर्चा की गयी है। जो कि सभी क्षेत्रों में सामान्य हो। विकास निरतंर चलने वाली प्रक्रिया है। इस अवस्था में रहकर शिशु अपने जीवन के महत्वपूर्ण काल को पूर्ण करते हुये अगली अवस्था में पहुंचता है। शिशु इस अवस्था में चलने से लेकर बोलना, समझना एवं समाज के नियम कानून (प्रतिमान) के साथ आगे की यात्रा का शुभारम्भ इस अवस्था से करता है। शिशु का मुस्कराना, हँसना, विरोध करना प्रश्न पूछना, क्या? क्यो? कैसे? इस रहस्यमयी संसार के बारे में जानने के लिये उत्सुक रहता है अर्थात शिशु की जिज्ञासा।

कोई भी विकास हो, चाहे वह मानव का हो या अन्य प्राणी का निश्चित अवस्थाओं में होता है। विकास की एक अवस्था दूसरी से भिन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों ने सुविधा के लिये मानव विकास को विभिन्न अवस्थाओं में बांटकर उनके प्रकट होने वाले परिवर्तनों एवं अभिलक्षणों को पहचान कर उनका अध्ययन किया।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।

वाटसन ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

6.9 शब्दावली

शैशवावस्था - सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 3 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं।
इन्फैंट (Infant)-शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिये किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बोलने में अक्षम

2. नवजात शिशु
3. 270
4. 350 ग्राम
5. न्यूमैन (J. Newman) का
6. वैलन्टाइन ने
7. वाटसन
8. Bridges(व्रिजेज) का
9. दो वर्ष
10. प्रथम माह
11. दो वर्ष

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. सारस्वत, डा0 मालती - ''शिक्षा मनोविज्ञान की रूप रेखा'' आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद
2. गुप्ता, डा0 एस0पी0, आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, शरदा पुस्तक भवन 11 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
3. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2
4. भटनागर, डा0 ए0वी, मीनाक्षी, तथा राजाराम,अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. पाण्डेय, डा0 राम शकल, शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
6. मुकर्जी, श्रीमती सन्ध्या, बाल मनोविज्ञान, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड़, लखनऊ।
7. पचौरी, डा0 गिरीश, शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
8. भाई, योगेन्द्रजीत - शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशस, आगरा-2

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैशवावस्था किसे कहते हैं
2. Bridges (व्रिजेज) के अनुसार शैशवावस्था में विभिन्न प्रकार के संवेगों का उल्लेख कीजिये।
3. शैशवावस्था में भार एवं लम्बाई के बारे में लिखिये।
4. शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कीजिए?
5. शैशवावस्था में विकास की प्रक्रिया के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिये।
6. शैशवावस्था में मानसिक विकास किस प्रकार से होता है। समझाइये?

इकाई-7 बाल्यावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Childhood -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 बाल्यावस्था
    7.3.1 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास
    7.3.2 बाल्यावस्था में मानसिक विकास
    7.3.3 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
    7.3.4 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
7.4 बाल्यावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक
7.5 बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

बालक के विकास की प्रक्रिया उसके जन्म से पूर्व माता के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के पश्चात् यह विकास प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में बालक का कई प्रकार से विकास होता है यथा-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास आदि । इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव विकास प्रक्रिया जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त चलती रहती है। जन्म से लेकर 6 वर्ष की आयु

तक शैशवावस्था होती है तथा उसके पश्चात् बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। यह अवस्था बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की अवस्था होती है। बालक में इस अवस्था में विभिन्न आदतों, व्यवहारों, रुचि एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। कोल एवं ब्रूस ने इस अवस्था को जीवन का ‘ अनोखा काल’ बताते हुए कहा है- “ वास्तव में माता-पिता के लिये बाल विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है।’’ इस अवस्था को समझना इसलिये कठिन कहा गया है क्योंकि इस अवस्था में बालक के व्यवहार में अनेकों अनोखे परिवर्तन दिखाई देते हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- बाल्यावस्था की महत्ता की विवेचना कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के मानसिक विकास की व्याख्या सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास के बारे में जान सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालकों की शिक्षा व्यवस्था को समझ सकेंगे।

7.3 बाल्यावस्था

शैशवावस्था के बाद बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। बाल्यावस्था में आने तक बालक इतना परिपक्व हो जाता है कि वह अपने आस-पास के वातावरण से पूर्ण रूप से अपरिचित नहीं रहता है। बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है क्योंकि बाल्यावस्था बालक के व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था होती है। यह बालक की निर्माणकारी अवस्था होती है। इस अवस्था में वह जिस वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यवहार को तथा शिक्षा सम्बंधी बातों को सीखता है वह उसके

भावी जीवन की आधारशिला होती है। बालक के शैक्षिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक विकास की नींव बाल्यावस्था में ही मजबूत होती है, जो आगे चलकर उसे एक परिपक्व मानव बनाती है। बाल्यावस्था में जो व्यवहार बालक के साथ किया जाता है उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर दूरगामी होता है। मानव जीवन में बाल्यावस्था के महत्व पर प्रकाश डालते हुए **जोन्स, सिमसन एवं ब्लेयर** का कहना है- शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन-चक्र में बाल्यावस्था से अधिक महत्वपूर्ण अवस्था और कोई नहीं है। जो अध्यापक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं, उन्हें बालकों की, उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं का और उन परिस्थितियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जो उनके व्यवहार को रूपान्तरित और परिवर्तित करती है।

सामान्यतः बाल्यावस्था लगभग 6 से 12 वर्ष तक मानी जाती है। यह अवस्था आगे आने वाले जीवन की तैयारी की अवस्था होती है। बालक की शिक्षा आरम्भ करने की सबसे उपयुक्त आयु मानी गयी है। इसीलिये मनोवैज्ञानिकों ने इस आयु को 'प्रारम्भिक विद्यालय की आयु' कहा गया है

7.3.1 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

व्यक्ति के विकास में बाल्यावस्था में शारीरिक विकास का बहुत महत्व है। सामान्य रूप में यदि हम देखें तो यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक विकास के अन्तर्गत बालक का कद, भार, शरीर का विकास, लम्बाई आदि आते हैं। वाह्य अंगों के साथ-साथ आंतरिक अंगों का भी विकास होता है और इनका उत्तम प्रकार से विकास बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निर्धारित करता है। बाल्यावस्था में शारीरिक विकास निम्न प्रकार से होता है-

भार

इस अवस्था में बालिकाओं का भार बालकों की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा किशोरावस्था जल्दी आ जाती है। बालिकाओं के वजन में 9 से 12 वर्ष के बीच वृद्धि की दर तीव्र रहती है और प्रतिवर्ष लगभग 14 पौण्ड वजन बढ़ता है। इसके विपरीत बालकों का वजन कम बढ़ता है।

लम्बाई

लम्बाई में होने वाली वृद्धि पर वैयक्तिक भिन्नताओं, संतुलित भोजन, पर्यावरण, बीमारी एवं आनुवांशिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में लम्बाई धीमी गति से बढ़ती है तथा बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की लम्बाई अधिक बढ़ती है।

हड्डियां

इस अवस्था में आते-आते हड्डियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा इनकी संख्या 270 से बढ़कर 350 हो जाती है। बाल्यावस्था में बालक एवं बालिकाओं की हड्डियों में दृढ़ता आनी प्रारम्भ हो जाती हे।

दांत

लगभग 6-7 वर्ष में बालक एवं बालिकाओं के दूध के दांत टूटने लगते हैं तथा उनके स्थान पर स्थाई दांत निकलने लगते हैं तथा 12-13 वर्ष तक सभी स्थाई दांत निकल आते हैं।

अन्य अंगों का विकास

बाल्यावस्था के प्रारम्भ से लेकर, अंत तक बालक एवं बालिकाओं के सभी अंगों का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। बाल्यावस्था में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में विकास प्रक्रिया तीव्र गति से होती है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास

बालक का मानसिक विकास बाल्यावस्था में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। बाल्यावस्था में मानसिक विकास से तात्पर्य बालक की सोचने, समझने, स्मरण करने, विचार करने तथा समस्या समाधान करने, ध्यान लगाने की शक्ति, प्रत्यक्ष ज्ञान और संकल्पना, जिज्ञासा एवं चिंतन आदि से है। बाल्यावस्था में मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। बालक की मानसिक विशेषताओं को निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है-

- बाल्यावस्था के प्रथम वर्ष में अर्थात् छठे वर्ष में बालक सरल प्रश्नों के उत्तर दे सकता है। बिना रुके 15 तक गिनती सुना सकता है। समाचार पत्रों में बने चित्रों के नाम बता सकता है।
- सातवें वर्ष में छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन करने में सक्षम होता है तथा विभिन्न वस्तुओं में समानता एवं अंतर बता सकता है।
- ऑठवें वर्ष में 17-18 शब्दों को वाक्यों को दुहराने के साथ छोटी-छोटी कहानियों एवं कविताओं को कंठस्थ करके सुनाने की क्षमता विकसित हो जाती है।
- नौवें वर्ष में दिन, तारीख बताने के साथ पैसे गिनने की योग्यता उसमें आ जाती है।
- दसवें वर्ष में बालक 3-4 मिनट में 60-70 शब्द कह पाने में समर्थ हो जाता है।
- ग्यारहवें वर्ष में बालक में तर्क, जिज्ञासा एवं निरीक्षण शक्ति का विकास हो जाता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान एवं निरीक्षण द्वारा वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है।
- बाहरवें वर्ष में बच्चा विभिन्न परिस्थितियों की वास्तविकता को जानने का प्रयास करता है। इसमें विवेक एवं बुद्धि होने के कारण दूसरों को सलाह दे सकता है।
- बाल्यावस्था बालक के विकास की महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में अभिभावकों एवं शिक्षकों को बालक के प्रति ज्यादा सजग रहने की आवश्यकता है क्योंकि यह काल ऐसा होता है जिसमें बालक का मानसिक विकास पूर्णता की कगार पर होता है।

7.3.2 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बालक लगभग 6 वर्ष की अवस्था में पारिवारिक वातावरण से निकलकर विद्यालय के सम्पर्क में आता है। बालक के लिये विद्यालय का वातावरण घर की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न होता है। विद्यालय में बालक सामाजिक नियम सीखने के साथ- साथ नये मित्रों के साथ सम्पर्क स्थापित करना सीख जाता है। वह विद्यालय में होने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी अपनी पूर्ण सहभागिता का प्रदर्शन करता है। विद्यालय में अनुकूलन स्थापित होने के पश्चात् बालक के व्यवहार में अनेक परिवर्तन होते है। बालक में चंचलता होने के कारण वह किसी भी मित्र मंडली का सदस्य बन जाता है और यह मित्र मंडली उसे उचित-अनुचित कार्यों के लिये दिशा निर्देश प्रदान करती है जिससे बालक के सामाजिक विकास को नयी दिशा मिलती है। इस अवस्था के अंतिम काल को 'टोली अथवा समूह की आयु' कहा गया है। वह अपने समूह के नियमों एवचं आदर्शों का निष्ठा से पालन करते हैं। परिणामतः बालक में स्वतंत्रता सहायता एवं उत्तरदायित्व के गुणों का विकास होता है। अपने चंचल स्वभाव के कारण बालक अपने शिक्षकों के सम्मान के साथ-साथ उनका उपहास करने से भी नहीं चूकता है।बाल्यावस्था में बालक अपनी कक्षा के सभी सहपाठी को मित्र न बनाकर अपने मित्रों का चुनाव करने लगता है। मित्रों के चुनाव में उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है।

इस अवस्था में बालक में नेता बनने की भावना अधिक दिखाई देती है। अच्छे गुणों के आधार पर वह प्रशंसा का पात्र बन जाता है और अपने समूह का नेता चुन लिया जाता है। बालक अच्छे एवं बुरे किसी भी समूह के सदस्य बन सकते हैं। अच्छे कार्यों में लिप्त समूह को समाज द्वारा स्वीकृति प्राप्त होती है तथा अवांछित कार्यों में लीन समूह समाज में निंदा का पात्र होता है।

इस काल में बालक को अपने प्रिय कार्यों में अत्याधिक रुचि हो जाती है, जो बालक एवं बालिकाओं में पृथक-पृथक होती है। इसी प्रकार बालक में अपने पास-पड़ोस के स्थानों, घटनाओं एवं व्यक्तियों के बारे में जानने की रुचि उत्पन्न हो जाती है और उनके बारे में अपने मित्रों को बताकर स्वयं को गौरान्वित महसूस करते हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था में बालक के वांछित एवं अवांछित व्यवहार में निरंतर प्रगति होती रहती है। इस प्रकार वह एक सामाजिक प्राणी बनने की दिशा में अग्रसर होता है।

7.3.3 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

बालक की बाल्यावस्था को संवेगात्मक विकास का अनोखा काल माना जाता है। सम्पूर्ण बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में अस्थिरता देखने को मिलती है। बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार से होने लगती है। संवेगों में सामाजिकता का भाव आने से समाज के अनुकूल व्यवहार करने के लिये प्रेरित होने लगता है। इस प्रकार वह संवेगों की अभिव्यक्ति पर

नियंत्रण करना सीख जाता है। भाषा ज्ञान सुदृढ़ होने से वह अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करना प्रारम्भ कर देता है। इसके साथ ही साथ बालक के अंदर भय के संवेग सक्रिय हो जाते हैं परन्तु उसमें उत्पन्न भय शैशवावस्था से भिन्न होता है। यह भय उसके भविष्य में सफलता की चिंता, अभिभावको एवं शिक्षकों द्वारा कड़े व्यवहार से जुड़ा होता है।

इसी प्रकार बालक में निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, जिज्ञासा, स्नेह भाव एवं प्रफुल्लता के संवेग देखने को मिलते हैं। इस प्रकार बालक के चरित्र एवं व्यक्तित्व के निर्माण में संवेगों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को उनके संवेगों के उचित दिशा में विकास के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिए ताकि बालक के चरित्र एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके।

शैशवावस्था में बालक के संवेगात्मक व्यवहार में आंधी तूफान जैसी स्थिति होती है और वह सामान्यतः रोना, चीखना, चिल्लाना जैसी गत्यात्मक क्रियाओं से अभिव्यक्त होते हैं परन्तु बाल्यावस्था में विशेषतः बाल्यावस्था के अंतिम वर्षो में बालक अपने संवेगों को उचित माध्यम से अभिव्यक्त करने ने समर्थ हो जाते हैं। वह सांवेगिक रूप से कुछ स्थिर होने लगते हैं, क्योंकि इस अवस्था तक बालक में भाषा का पूर्ण विकास हो जाता है एवं वे कुछ सामाजिक हो जाते हैं।

बाल्यावस्था में प्रदर्शित संवेग

बाल्यावस्था में बालक में अनेक नये संवेगों का प्रादुर्भाव होता है। इस अवस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेग निम्नलिखित हैं-

1. भय
2. क्रोध
3. ईर्ष्या
4. आकुलता
5. स्नेह
6. हर्ष
7. प्रेम
8. प्रसंनता

7.3.4 बाल्यावस्था में संवेगों की विशेषताएं

इस अवस्था में बालकों के संवेग प्रौढ़ों से काफी भिन्नता रखते हैं। इनके संवेगों में अनेक विशेषताएं पायी जाती हैं जो इस प्रकार हैं-

लघु कालिक संवेग

बाल्यावस्था में बालकों के संवेग क्षणिक होते हैं। उनके संवेगों में स्थायित्वता का अभाव होता है। उनके संवेग कुछ मिनट तक ही प्रदर्शित होते हैं, उसके बाद समाप्त हो जाते हैं।

तीव्रता

यद्यपि इस अवस्था में बालक के संवेग लघु कालिक होते हैं तथापि उनमें तीव्रता अधिक पायी जाती है। इस अवस्था के बालक अपने संवेगों का प्रदर्शन अत्यंत द्रुत गति से करते हैं। जैसे यदि बालक में भय का संवेग उत्पन्न होता है तो उसमें अपने भय को छिपाने की क्षमता नहीं होती है, वह तुरन्त प्रदर्शित कर देते हैं।

परिवर्तनशीलता

इस अवस्था में बालकों के संवेग शीघ्र ही परिवर्तित भी हो जाते हैं। उनमें हँसने, रोने, मुस्कुराने, ईर्ष्या, प्रेम आदि संवेग जितनी जल्दी उत्पन्न होते हैं उतनी ही शीघ्रता से परिवर्तित भी हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. ______________ ने बाल्यावस्था को जीवन का 'अनोखा काल' कहा है
2. बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम कालक्यों कहा जा सकता है ?
3. मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यावस्था को _________________ कहा है।
4. बाल्यावस्था में आते-आते हड्डियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा इनकी संख्या 270 से बढ़कर _________ हो जाती है।
5. बाल्यावस्था के अंतिम काल को________________ कहा गया है।
6. सम्पूर्ण बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में ______________ देखने को मिलती है।
7. बाल्यावस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेगों के नाम लिखिए।

7.4 बाल्यावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक

विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के संप्रत्यय का अपना एक विशेष महत्व है। इनके महत्व पर प्रकाश डालने के पहले आपको यह बता देना उचित समझते हैं कि आनुवंशिकता तथा वातावरण जैसे शब्दों का प्रयोग मनोविज्ञान में किस अर्थ में होता है। माता-पिता से उनके बच्चों में शारीरिक गुणों तथा संगठनों का जीन्स द्वारा होने वाले संचरण का अध्ययन करने वाले विज्ञान को आनुवंशिकता की संज्ञा दी जाती है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने माता-पिता से उनके गुणों एवं शारीरिक संगठनों को प्राप्त करता है।

पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है। आनुवंशिकता द्वारा व्यवहार के रचनातन्त्र के आवरण का निर्माण होता है जिसके अन्तर्गत व्यवहार एक निश्चित दिशा में वातावरण द्वारा विकसित होता है। अतः व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार आनुवंशिकता तथा वातावरण दोनों के अन्तःक्रिया का परिणाम तथा दोनों द्वारा ही निर्धारित होता है।

व्यक्ति का जीवन वंशानुक्रम द्वारा ही सम्भव होता है। व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। है। व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। उसकी मनोशारीरिक रचना पर वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक की शारीरिक तथा मानसिक रचना का जनक वंशानुक्रम है। वंशानुक्रम, मानव जीवन सम्भव बनाता है तथा उनमें संवेग, तर्क शक्ति, बात-चीत करने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आन्तरिक शक्ति तथा कार्यात्मक क्षमता का समावेश करता है।

विकास को प्रभावित करने वाले वातावरण और संगठित साधनों के कुछ ऐसे विशेष कारक हैं, जो बच्चे के विकास की दशा पर निश्चित और विशिष्ट प्रभाव डालते हैं। बच्चों के विभिन्न विकासों पर प्रभाव डालने वाले निम्नलिखित प्रकार के कारक हैं:-

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शरीर वैज्ञानिकों ने स्पष्ट कि है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष के शरीर सम्बन्धी जिस प्रकार के पित्रैकों (जीन्स) का संयोग होता है बच्चे के शरीर (लिंग, आकार-प्रकार, लम्बाई-मोटाई, रंग-रूप एवं आँख-नाक आदि की बनावट आदि) का विकास तदनुकूल ही होता है। पित्रैक ही शारीरिक रोगों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करते हैं जो बच्चे किसी रोग के लक्षण साथ में लेकर पैदा होते हैं, वे प्रायः उन रोगों से ग्रस्त रहते हैं और उनका शारीरिक विकास सही रूप में नहीं हो पाता। शरीर वैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया कि गर्भस्थ बच्चे के विकास में अन्तःस्रावी ग्रंथियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास अति तीव्र गति से होता है। उसका शारीरिक विकास अनेक वाह्य एवं आंतरिक कारणों से प्रभावित होता है जिसमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. बालक की शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य अपने माता पिता से प्रभावित होता है। सामान्यतः स्वस्थ माता-पिता के बच्चों को स्वास्थ्य भी अच्छा ही होता है। शारीरिक विकार वाले माता-पिता की संतान भी तदनुरूप शारीरिकरूप से दुर्बल होते हैं।
2. बालक के समुचित विकास पर उसके आस-पास के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। उनके स्वाभाविक विकास में उनका वातावरण जैसे-शुद्ध वायु, स्वच्छता, सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण रूप से सहायक होते हैं। बालक के पहनने के कपड़े एवं रहने का स्थान

स्वच्छ तथा भोजन मे पौष्टिकता उसके शारीरिक विकास को गति प्रदान करता है। बालक के शारीरिक विकास पर उसके द्वारा सेवन किये जाने वाले भोजन का भी प्रभाव पड़ता है। चूंकि इस अवस्था में बालक अधिक क्रियाशील होता है। अतः उसे पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन मिलना आवश्यक होता है अन्यथा इस उम्र के बालकों का शारीरिक विकास उतना नहीं होता जितना कि होना चाहिए।

3. स्वस्थ शारीरिक विकास के लिये दिनचर्या की नियमितता भी आवश्यक है। यदि बालक सोने, खाने, खेलने, पढ़ने जैसे अपने सभी कार्य नियमित रूप से तथा निश्चित समयानुसार करें तो इसका उसके शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा वे सामान्यतः स्वस्थ रहते हैं।
4. शरीर की स्वस्थता के लिये पूर्ण निद्रा एवं विश्राम भी आवश्यक है। बाल्यावस्था में कम से कम 10 घंटे की नींद लेना अत्यंत आवश्यक है ताकि बालक के द्वारा दिन भर किये गये शारीरिक परिश्रम की थकान कम हो सके।
5. माता-पिता का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा शिक्षकों की सहानुभूति एवं सहयोग उनके शारीरिक विकास में सहयोग देता है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

क्लिनबर्ग के अनुसार वृद्धि प्रजाति पर निर्भर करती है। वंशानुक्रम सम्बन्धी जितने भी अध्ययन एवं प्रयोग किए गए हैं उनसे यह स्पष्ट होता है सामान्यता जिस प्रकार का मानसिक स्तर माता पिता का होगा वैसे ही बच्चे भी उसी प्रकार के होगें।

जो इसके अपवाद होते हैं उसका कारण प्रजाति और पूर्वज ही होते हैं और बुद्धि पर निर्भर करती हैं मानसिक शक्तियाँ-स्मरण, कल्पना एवं तर्क आदि। तब कहना न होगा कि मनुष्य के मानसिक विकास का भी मूल आधार वंशानुक्रम ही होता है।

1. बालक के मानसिक विकास पर उसके वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिकतर यही दृष्टिगत होता है कि बुद्धिमान माता-पिता की संतान बुद्धिमान तथा जड़ बुद्धि माता-पिता की संतान जड़ होती है।
2. बालक का पारिवारिक वातावरण भी उसके मानसिक विकास को प्रभावित करता है। चूंकि इस अवस्था में बालक पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुआ होता है जिस कारण उस पर परिवार के वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है।
3. परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी बालक के मानसिक विकास में सहयोग देती है। साधनों की उपलब्धता के कारण उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति से आने वाले बालकों

का मानसिक विकास निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार से आने वाले बालकों की अपेक्षा अधिक होता है।

4. बालक के मानसिक विकास में विद्यालय एक महत्वपूर्ण कारक है। विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा के द्वारा ही बालक के बौद्धिक विकास को उचित दिशा मिलती है। यही कारण है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में बालक का पाठ्यक्रम उनकी रुचि एवं योग्यतानुसार रखा जाता है ताकि प्रत्येक बालक अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार विकसित हो सकें।
5. बालक का शारीरिक स्वास्थ्य उसके मानसिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है क्योंकि जब तक हम पूर्णतः स्वस्थ नहीं होंगे तब तक हम किसी भी कार्य को बुद्धिमत्ता के साथ नहीं कर सकते। अतः बालक की मानसिक स्वस्थता उसकी शारीरिक स्वस्थता से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित है।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामान्यतया व्यक्ति अकेला नहीं रहना चाहता क्योंकि जन्म के समय से ही वह दूसरों पर निर्भर होता है। प्रारम्भ में उसका सामाजिक भागीकरण कम होता है परन्तु धीरे-धीरे इसमें वृद्धि होती जाती है। प्रत्युत्तर में भी भिन्नता देखने को मिलती है। इन प्रत्युत्तरों का कारण व्यक्ति का दूसरों पर आश्रित होना है। इन प्रत्युत्तरों का प्रकार सामाजिक सम्बन्धों की विशिष्टता पर निर्भर होता है। सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक प्रतिमान निश्चित करते हैं तथा व्यक्ति इन प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करता है। मनुष्य सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है और सीखने की सब शक्तियाँ भी लेकर पैदा होता है पर सीखता तो वह वही भाषा है जो उसके समाज में बोली जाती है, सीखता तो वह वही व्यवहार प्रतिमान है जो उसके समाज के होते हैं और इसी को उसका सामाजिक विकास कहते हैं। बाल्यावस्था में बालक का सामाजिक विकास भी अनेक कारकों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं-

1. बालक के सामाजिक विकास पर कुछ सीमा तक उसके वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है।
2. बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। स्वभावतः यदि बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं मानसिक रूप से परिपक्व होगा तभी उसमें सामाजिकता का तीव्रता से विकास सम्भव है।
3. बालक के सामाजिक विकास को उसकी सांवेगिक परिपक्वता भी प्रभावित करती है क्योंकि समाज में हर तरह के लोग मिलते हैं, उनसे समायोजन तभी स्थापित हो सकता है जब हम अपने क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष जैसे संवेगों को नियंत्रित रख व्यवहार प्रदर्शित करें।
4. बालक के जीवन में सामाजीकरण की प्रक्रिया घर से ही आरम्भ होती है। वह अपने परिवार में रहकर ही विभिन्न प्रकार के आचार-विचार, रीति-रिवाजों संस्कृति आदि को सीखता है जो उसके सामाजिक विकास पर बहुत प्रभाव डालते हैं।

5. बाल्यावस्था में बालक समूह में रहना प्रारम्भ कर देता है। वह अपना अधिकांश समय अपने मित्र समूह में व्यतीत करना पसंद करता है। इन समूहों में रह कर वह उसमें समायोजन करना सीख जाता है। इस प्रकार से वह धीरे-धीरे सामाजिकता के गुणों को ग्रहण करना प्रारभ करता है।
6. परिवार की आर्थिक स्थिति भी बालक को अधिक अथवा कम सामाजिक बनने में सहायक होती है। धनी परिवार के बालक के रहने का स्थान तथा वहाँ का वातावरण निर्धन परिवार की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होता है। उनके घर में सभी साधन उपलब्ध होते हैं। जो बालक में उचित सामाजिक गुणों के विकास में सहायक होते हैं।
7. विद्यालय का वातावरण भी बालक में सामाजिकता का विकास करने में सहायक होता है। यदि विद्यालय का वातावरण एकतंत्रीय हो तो बालक का सामाजिक विकास स्वस्थ रूप से उचित दिशा में नहीं होगा तथा इसके विपरीत विद्यालय के लोकतंत्रीय वातावरण में बालक स्वतंत्रतापूर्वक पूर्ण कुशलता के साथ अपने मित्रों एवं शिक्षकों के साथ व्यवहार करता है जो उसके सामाजिकरण का ही एक हिस्सा है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

मैक्डूगल के अनुसार "मनुष्य में कुछ संवेग जन्मजात होते हैं और इनकी तीव्रता भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होती है" सच बात यह है कि मनुष्य की संवेगात्मक स्थिति उसके शरीर और मस्तिष्क पर निर्भर करती है और उसी पर उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास निर्भर करता है ।बाल्यकाल तक बालक में लगभग सभी संवेग विकसित हो जाते हैं। बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है उसकी दुनिया भी बड़ी होने लगती है। बालक के संवेगात्मक व्यवहार को विद्यालय का वातावरण, हमजोलियों का साथ एवं व्यवहार तथा सामाजिक जीवन के लोग प्रभावित करने लगते है। ये सभी कारक बालक के संवेगों को सही दिशा प्रदान करने में प्रभावशाली भूमिका का निवर्हन करते है। कुछ प्रमुख कारक निम्नवत् हैं-

1. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को थकान अत्यधिक प्रभावित करती है। थकान के कारण वह क्रोध, चिड़चिड़ेपन जैसे अवांछित संवेग अभिव्यक्त करने लगता है।
2. शारीरिक स्वस्थ्ता भी उसके संवेगात्मक विकास को उचित दिशा प्रदान करती है। बालक यदि शारीरिक रूप से स्वस्थ होगा तो वह किसी भी कार्य को पूर्ण उत्साह, लगन एवं प्रसन्नतापूर्वक करने का प्रयत्न करता है अतः बालक के स्वास्थ्य की दशा का उसके संवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ सम्बंध होता है।
3. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को न केवल स्वास्थ्य वरन् मानसिक योग्यता भी प्रभावित करती है। अधिक मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता एवं क्षमता वाले बालकों का संवेगात्मक क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है।

4. बालक का सांवेगिक व्यवहार उसके परिवार, वहां के वातावरण, परिवार की स्थिति आदि से बहुत अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यदि परिवार का वातावरण आनंदमय एवं शांतिपूर्ण है तो बालक में भी स्वस्थ संवेगों का संचरण होगा। इसके विपरीत यदि परिवार में कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़े का वातावरण उसके सांवेगिक पक्ष पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा उसकी संवेगात्मक नकारात्मकता उसके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है।
5. यदि परिवार में माता-पिता का बालक के प्रति दृष्टिकोण सहयोगी एवं सहानुभूति पूर्ण है तथा उनके परस्पर सम्बंधों में मधुरता है तो बालक में संवेगों का विकास सकारात्मक रूप में होता है।

7.5 बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरुप

बाल्यावस्था बालक के जीवन की आधारशिला होती है। अतः यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था की जाये क्योंकि शिक्षा एवं विकास एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है। अतः बालक की शिक्षा की उचित व्यवस्था का दायित्व न केवल शिक्षक पर वरन् माता-पिता तथा समाज पर भी है। उनकी शिक्षा व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. **शारीरिक विकास पर ध्यान-** इस अवस्था में बालक के शारीरिक विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जैसा कि कहा ही गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का विकास होता है। अतः बालक के स्वास्थ्य को बनाने के लिये भोजन की पौष्टिकता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए साथ ही उन्हें खेलने की भी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। खेलकूद बालक के शरीर को स्वस्थ बनाने में एवं शारीरिक विकास में सहायक होते हैं।
2. **बाल मनोविज्ञान-**बालक के उचित विकास के लिये बाल मनोविज्ञान का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। अतः न केवल शिक्षक वरन् अभिभावक को भी बालक के मनोविज्ञान का ध्यान रखकर ही विकास करना चाहिए।
3. **मानसिक स्तर पर ध्यान-** मानसिक विकास के लिये बालकों को बौद्धिक वातावरण मिलना चाहिए। घर में और विद्यालय में उन्हें आवश्यकतानु सार वो सभी साधन उपलब्ध होने चाहिए जिसकी उन्हें आवश्यकता है। बालक में अनुकरण की शक्ति अधिक होली है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को अच्छे आदर्श एवं आचरण प्रस्तुत करने चाहिए।
4. **संवेगात्मक विकास पर ध्यान-**बालक के सांवेगिक विकास के लिये माता-पिता एवं शिक्षकों को बालक के साथ सहानुभूतिपूर्ण एवं सहयोगी व्यवहार प्रदर्शित करना चाहिए ताकि वे अपने संवेगों को उचित रूप से व्यवस्थित करना सीख सकें। बालक में उत्पन्न होने

वाले अवांछित संवेग जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या,द्वेष आदि को दमित तथा वांछित संवेग जैसे प्रेम, सहयोग, सहानुभूति आदि संवेगों को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

5. **सामूहिक प्रवृत्ति का विकास-** इस अवस्था में पहुँचकर बालक अपना एक सामाजिक समूह विकसित कर लेता है। वह किसी भी कार्य को अकेले करना नहीं पसंद करता है वरन् समूह में अपने मित्रों के साथ करने में उसकी अधिक रुचि होती है। अतः उनमें सामूहिक प्रवृत्ति विकसित करने के लिये उन्हें सामाजिक समूहों जैसे स्काउट एवं गाइड, आदि में सम्मिलित होने के लिये अवसर प्रदान करना चाहिए।
6. **सामाजिक गुणों का विकास-** बाल्यावस्था में परिवार के बाद बालक विद्यालय में प्रवेश करता है। परिवार के बाद विद्यालय ही वह संस्था है जहाँ बालक का सामाजीकरण होता है। अतः शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह विद्यालय में बालकों के लिये सामूहिक खेलों, प्रतियोगिताओं आदि का आयोजन कर उनमें रूप से समायोजित ढंग से सामूहिक कार्यों को करने की प्रवृत्ति विकसित करे।
7. **रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास -** इस अवस्था में बालक में नई-नई चीजों के बारे में जानने व समझने की जिज्ञासा अधिक होती है। वे अपने खेलने की छोटी-छोटी चीजों से कुछ नया बनाने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। उनकी इस रचनात्मकता को विकसित करने के लिये विद्यालय एवं घर में विभिन्न रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

8. विकास में____________ तथा___________ के संप्रत्यय का अपना एक विशेष महत्व है।
9. ___________ से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है।
10. व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें___________ होती हैं।
11. "मनुष्य में कुछ संवेग जन्मजात होते हैं और इनकी तीव्रता भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होती है" यह कथन किसका है?
12. स्वस्थ _________ में ही स्वस्थ _________ का विकास होता है।

7.6 सारांश

शैशवावस्था के पश्चात् बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। यह बालक का निर्माणकारी काल माना जाता है। सामान्यतः बाल्यावस्था 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में बालक का लगभग पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक विकास हो जाता है। इस अवस्था में बालक में सामाजिकता के भाव का भी प्रवेश हो जाता है एवं संवेगों में भी स्थायित्वता देखी जाती है। बच्चा जन्म से विशेष प्रकार की बुद्धि और विशेष प्रकार की अभिक्षमता लेकर पैदा होता है परन्तु इनके आधार पर वह सीखता वही है जो उसे सिखाया जाता है और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। आप किसी भी प्रकार की योग्यताओं को लीजिए, चाहे मानसिक योग्यताओं को, चाहे सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी योग्यताओं को, चाहे कला-कौशल सम्बन्धी योग्यताओं को और चाहे व्यवसाय सम्बन्धी योग्यताओं को, इन सबके उचित विकास के लिए उचित शिक्षा की आवश्यकता होती है, उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। बालक में होने वाले इन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तनों एवं विकास के लिये अनेक उत्तरदायी कारक हैं जो बालक के उक्त विकास में सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। अतः यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था की जाये

7.7 शब्दावली

1. **आनुवंशिकता**- माता-पिता से उनके बच्चों में शारीरिक गुणों तथा संगठनों का जीन्स द्वारा होने वाले संचरण का अध्ययन करने वाले विज्ञान को आनुवंशिकता की संज्ञा दी जाती है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने माता-पिता से उनके गुणों एवं शारीरिक संगठनों को प्राप्त करता है।
2. **पर्यावरण**- पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कोल एवं ब्रूस
2. बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है क्योंकि बाल्यावस्था बालक के व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था होती है।
3. प्रारम्भिक विद्यालय की आयु
4. 350
5. ‘टोली अथवा समूह की आयु’
6. अस्थिरता

7. बाल्यावस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेग निम्नलिखित हैं-भय, क्रोध, ईर्ष्या, आकुलता, स्नेह, प्रेम,प्रसंनता
8. आनुवंशिकता तथापर्यावरण
9. पर्यावरण
10. वंशानुक्रम विशेषतायें
11. मैक्डूगल
12. शरीर, मन

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रावाल पब्लिकेशन्स, आगरा, वर्ष 2010-2011
2. सिंह, अरूण कुमार, उच्चत्तर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारूसीदास, दिल्ली, वर्ष 2009
3. मिश्रा, पी0डी0, मिश्रा, बीना, समाज कार्य विभाग, व्यक्ति और समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010
4. तिवारी, रमेश चन्द्र, मनश्चिकित्सकीय समाज कार्य, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010
5. सिंह, डी0के0, पालिवाल, सौरभ, मिश्रा, रोहित, मानव समाज संगठन एवं विघटन के मूल तत्व, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास का शैक्षिक महत्व बताइये।
2. बाल्यावस्था में सामाजिक विकास किस प्रकार होता है ?
3. बाल्यावस्था में मानसिक विकास की विशेषताएं बताइये।
4. बाल्यावस्था को बालक के विकास का स्वर्णिम काल क्यों कहा जाता है ?
5. बाल्यावस्था में बालकों के संवेगों में किस प्रकार का परिवर्तन देखा जाता है ?
6. बालक के संवेगों को उचित दिशा प्रदान करने में सहायक कारकों को व्याख्यित कीजिए।
7. बालक की मानसिक वृद्धि एवं विकास किन कारकों से प्रभावित होता है ?
8. विद्यालय एवं परिवार किस प्रकार बालक में सामाजिकता का विकास करने में सहायक हैं ?
9. बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास किन कारकों से प्रभावित होता है ?
10. बाल्यावस्था में बालक की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार की जानी चाहिए ?

इकाई-8किशोरावस्थामें शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Adolescence -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 किशोरावस्था
8.3.1 किशोरावस्था में शारारिक विकास
8.3.2 किशोरावस्था में मानसिक विकास
8.3.3 किशोरावस्था में सामाजिक विकास
8.3.4 किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास
8.4 किशोरावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक
8.5 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप
8.5.1 शारीरिक विकास के लिये शिक्षा
8.5.2 मानसिक विकास के लिये शिक्षा
8.5.3 सामाजिक विकास के लिये शिक्षा
8.5.4 संवेगात्मक विकास के लिये शिक्षा
8.5.5 किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण शारीरिक आकार व शरीर के प्रत्येक भाग के बढ़ने में जो शारीरिक बदलाव परिलक्षित होते हैं, जो कि कोशिकाओं के आकार की बढ़त का प्रतिफल है, इसे वृद्धि कहते हैं। विकास कोशिकाओं के जुड़ाव और व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है। एक बच्चा शरीर से बड़ा हो सकता है लेकिन विकसित भी हो यह आवश्यक नहीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वृद्धि पूर्णता शारीरिक होती है। वर्तमान मनोविज्ञान में मनुष्य का अध्ययन एक मनोशारीरिक एवं सामाजिक प्राणी के रूप में किया जाता है और उसके शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तीनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है। शरीर के होने वाले बदलाव जोकि बढ़त के साथ होते हैं और सम्पूर्ण शरीर के आकार व प्रकार को प्रभावित करते हैं। यह प्रभाव कुछ गुणों द्वारा परिलक्षित होते रहते हैं। शारीरिक पक्ष में उसकी शारीरिक अभिवृद्धि एवं विकास का अध्ययन किया जाता है, मानसिक पक्ष में उसके मानसिक विकास, बुद्धि एवं मानसिक क्षमताओं का अध्ययन किया जाता है और सामाजिक पक्ष में उसकी सामाजिकता, समायोजन क्षमता, सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चातआप –

- किशोरावस्था के अर्थ के बता सकें।
- किशोरावस्था में बालक के शारीरिक विकास के विषय में समीक्षा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के मानसिक विकास की विवेचना कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के सामाजिक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास पर चर्चा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालकों की शिक्षा व्यवस्था को समझ सकेंगे।

8.3 किशोरावस्था

किशोरावस्था विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है, प्रथम यह युवावस्था की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं तथा विभिन्न विशेषताएं परिपक्वता तक पहुँच जाती है। किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द Adolescence है यह लैटिन भाषा Adolecere शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- ''परिपक्वता की ओर बढ़ना। अतः स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है।'' इस अवस्था का प्रसार 11-13 वर्ष से 21 तक होता है। किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है।

किशोरावस्था अत्यंत संक्रमणकाल की अवधि होती है। इस अवस्था में किशोर स्वयं को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अनुभव करता है जिस कारण वह न तो बालक और न ही प्रौढ़ की तरह व्यवहार कर पाता है फलतः वह अपने व्यवहार को निश्चित करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किशोरावस्था में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन एवं विकास दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनकी रुचियों, इच्छाओं आदि भी परिवर्तित हो जाती हैं। इन्हीं सब कारणों किशोरावस्था का जीवन के विकास कालों में काफी महत्व है।

8.3.1किशोरावस्था में शारारिक विकास

मनुष्य के शारीरिक विकास से तात्पर्य उसके शारीरिक ढांचे नाड़ी तन्त्र, हृदय तथा रक्त संचार तन्त्र श्वसन तन्त्र, पाचन संस्थान, मांसपेशियों और अन्तस्रावी ग्रंथियों में होने वाली वृद्धि और उसकी मनोशारीरिक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों से होता है। मनुष्य का शारीरिक व्यवहार उसके मानसिक व्यवहार से प्रभावित होता है। सच बात यह है कि मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। मनुष्य के शारीरिक विकास के अन्तर्गत इन सभी का अध्ययन किया जाता है।

शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायु मण्डल, मांसपेशीय वृद्धि अंतः स्त्रावी ग्रन्थियों आदि प्रमुख रूप से आती हैं। बच्चे के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक विकास को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं के शरीर के भार, आकार लम्बाई आदि सभी में परिवर्तन दिखाई देता है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण बालक एवं बालिकाओं में

शारीरिक परिपक्वता आती है। किशोरावस्था में शारीरिक विकास सम्बंधी होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्नांकित है-

भार

किशोरावस्था 12 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होती है। 12 से 15 साल तक बालको की अपेक्षा बालिकाओं का शारीरिक वजन अधिक होता है परन्तु 16 वर्ष के बाद बालकों का भार बालिकाओं की अपेक्षा अधिक होता है।

लम्बाई

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं दोनों की ही लम्बाई बढ़ती है। बालकों की लम्बाई 18 वर्ष के बाद तक बढ़ती है, परन्तु लड़कियों की लम्बाई 16 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है।

अस्थि-विकास

इस अवस्था में अस्थियों में नमनीयता नहीं रह जाती है। वे दृढ़ एवं पूरी तरह से मजबूत हो जाती हैं।

सिर तथा मस्तिष्क

इस अवस्था में मस्तिष्क का भार 1200 तथा 1400 ग्राम के बीच होता है। 15-16 वर्ष की आयु तक पूर्ण मस्तिष्क का विकास हो जाता है।

इन्द्रियों का विकास

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं की ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का पूर्ण विकास हो जाता है।

आवाज में परिवर्तन

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं की गले की थायराइड ग्रंथि की सक्रियता के कारण बालकों की आवाज में भारीपन आ जाता है तथा बालिकाओं की आवाज में मधुरता व कोमलता आ जाती है।

लैंगिक ग्रंथि

उत्तर किशोरावस्था में लैंगिक ग्रंथियों का आकार पूरा हो जाता है परन्तु कार्य के दृष्टिकोण से परिपक्वता कई वर्षों बाद आती है।

पाचन तंत्र

इस अवस्था में बालक के आंतरिक अंगों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे किशोरावस्था में बालक का आमाशय लम्बा हो जाता है। आंत की लम्बाई तथा परिधि भी बढ़ जाती है तथा मांसपेशियां भी मोटी हो जाती हैं। यकृत का वजन कम बढ़ता है तथा ग्रासनली लम्बी हो जाती है।

विभिन्न ग्रंथियों का प्रभाव

विशेषज्ञों का मानना है कि किशोरावस्था में होने वाले इन परिवर्तनों का आधार ग्रंथियां होती हैं। इन ग्रंथियों में गलग्रंथि, उप गलग्रंथि, उपवृक्क ग्रंथि पौष ग्रंथि तथा प्रजनन ग्रंथि आदि प्रमुख हैं जिनमें होने वाले स्राव के कारण ही व्यक्ति के शरीर में विभिन्न परिवर्तन देखे जाते हैं।

8.3.2किशोरावस्था में मानसिक विकास:

किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन की भाँति मानसिक परिवर्तन भी तेजी से होता है। इस अवस्था के अंत तक बालक का अधिकतम मानसिक विकास हो जाता है तथा आगे के जीवन में इन क्षमताओं का मात्र सुदृढ़ीकरण होता है। किशोरावस्था में होने वाले मानसिक विकास के प्रमुख पहलू इस प्रकार है-

चिंतन में औपचारिक संक्रियाएं

इस अवस्था में बालक में चिंतन शक्ति विकसित हो जाती है। वह किसी अमूर्त विषय अथवा घटना पर चिंतन करने में सक्षम हो जाता है। उसके चिंतन में क्रमबद्धता आ जाती है जिसकी सहायता से वह आलोचना एवं व्याख्या करने में सक्षम होता है।

एकाग्रचितता

इस अवस्था में किशोरों में एकाग्रचितता के लक्षण परिलक्षित होती हैं। वह अधिक समय तक किसी विषय विशेष पर ध्यान केन्द्रित कर पाने में सक्षम हो जाते हैं।

नैतिकता की समझ

किशोरावस्था के मानसिक विकास की एक विशेषता यह भी है कि इस अवस्था में किशोरों में नैतिक मूल्यों का विकास हो जाता है। वह उचित-अनुचित में अंतर करना सीख जाते हैं जिससे वह मूल्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम होते हैं।

बुद्धि का अधिकतम उपयोग

किशोरावस्था तक किशोर एवं किशोरियों की बुद्धि का भी अधिकतम विकास हो जाता है। उनमें बौद्धिक शक्ति विकसित हो जाती है जिसके माध्यम से ही वह समाज में अपना एक स्थान बनाने में सक्षम होता है।

तर्क शक्ति का विकास

किशोरावस्था में बालक की तार्किक शक्ति विकसित हो जाती है। वह प्रत्येक बात को तर्क के साथ स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है तथा छोटी-छोटी बात पर सदा विवाद के लिये तत्पर रहता है।

समस्या समाधान शक्ति का विकास

तर्क शक्ति के विकास के कारण ही किशोरों में इस अवस्था में समस्या समाधान शक्ति का भी विकास हो जाता है। इस अवस्था में बालक अपनी समस्या पर चिंतन कर तर्क-वितर्क के आधार पर उसका समाधान करने का प्रयत्न करता है।

निर्णय शक्ति का विकास

इस अवस्था में उनके मानसिक परिवक्वता का स्तर इतना ऊँचा हो जाता है कि वह किसी भी विषय पर सोच विचार कर स्वयं को निर्णय लेने के योग्य स्वयं को समझने लगता है। वह वास्तकिता एवं आदर्शों में अंतर करने लगता है।

स्मृति शक्ति का विकास

किशोरावस्था तक आते-आते बालक का शब्द भण्डारण और अधिक हो जाता है और उनका प्रयोग वह विभिन्न परिस्थिति में अधिक करने लगते हैं। परिणामतः किशोरों की स्मृतिशक्ति और अधिक विकसित होती जाती है।

8.3.3किशोरावस्था में सामाजिक विकास

मनुष्य के सामाजिक विकास से तात्पर्य उसके द्वारा अपने समाज की जीवन शैली को सीखने और अपने समाज में समायोजन करने से होता है। मनुष्य जिस समाज के बीच जन्म लेता है और जिस समाज के बीच रहता है उसे उस समाज की भाषा, रहन-सहन एवं खान-पान की विधियों, रीति-रिवाजों और आचरण की विधियों को सीखना होता है; बिना इनको सीखे वह उस समाज में समायोजन नहीं कर सकता। यह कार्य वह धीरे-धीरे सीखता है, इसे ही मानव का सामाजिक विकास कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने लम्बे अध्ययनों के बाद यह पाया कि मनुष्य का सामाजिक विकास उसके शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास पर निर्भर करता है; जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, समाज की भाषा एवं रीति-रिवाज आदि को सीखता जाता है और समाज में समायोजन करता जाता है। मनुष्य दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करता है और उसके व्यवहार से प्रभावित होता है। इस परस्पर व्यवहार के व्यवस्थापन पर ही सामाजिक सम्बन्ध निर्भर होते हैं। इस परस्पर व्यवहार में रुचियों, अभिवृत्तियों, आदतों आदि का बड़ा महत्व है। सामाजिक विकास में इन सभी का विकास सम्मिलित

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेश अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ उनके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। किशोरावस्था में होने वाले अनुभवों तथा बदलते सामाजिक सम्बन्धों

के फलस्वरूप किशोर-किशोरियाँ नए ढंग के सामाजिक वातावरण में समायोजित करने का प्रयास करते हैं।

इस अवस्था में किशोरों एवं किशोरियों का सामाजिक जीवन के क्षेत्र में भी विस्तारण आता है। शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास के साथ-साथ किशोर एवं किशोरियों में सामाजिक विकास भी अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक विकास के द्वारा ही बालक एवं बालिकाएं सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को व्यवस्थित कर समाज स्वीकृत कार्य करने की ओर उत्प्रेरित होते हैं। इस अवस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

मैत्री भाव का विकास

किशोरावस्था में किशोरों में अपने मित्र समूह के प्रति मैत्री भाव की प्रधानता होती है। पूर्व बाल्यावस्था तक यह भावना बालक की बालक के प्रति तथा बालिकाओं की बालिकाओं के प्रति ही होती थी, परन्तु उत्तर बाल्यावस्था से परस्पर विपरीत लिंग के लिये आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और वे एक दूसरे के सामने स्वयं को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

समूहों के प्रति भक्ति भावना

किशोर जिस समूह में रहता है उसमें उस समूह के प्रति भक्ति भाव होता है। वह उस समूह द्वारा स्वीकृत विचारों, व्यवहारों आदि को ही उचित समझता है और उसी का आचरण करता है। सामान्यतः देखा जाता है कि इस प्रकार के समूह के सभी व्यक्तियों के आचार-विचार, व्यवहार आदि लगभग समान ही होते हैं।

सामाजिक कार्यों में अधिक सहभागिता

किशोरावस्था में व्यक्ति सामाजिक कार्यों में अधिक भाग लेने लगता है। परिणामतः उसकी सामाजिक समझ में वृद्धि होती है। व्यक्ति में सामाजिक अन्तर्दृष्टि बढ़ जाती है तथा आत्म विश्वास में भी उन्नति होती है।

विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण

बालक एवं बालिकाओं में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण एवं खिंचाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में विपरीत लिंग से दूरी समाप्त हो जाती है।

समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की इच्छा

किशोरावस्था में बालकों में नेतृत्व की भावना का विकास हो जाता है। वे अपनी योग्यताओं के आधार पर समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करते हैं तथा समूह के नेता के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

समाज स्वीकृत कार्यों को महत्व

किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं का सामाजिक विकास इस अवस्था तक हो जाता है कि वह स्वयं को सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शो के अनुरूप व्यवस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं। वह कोई भी ऐसा कार्य करने को इच्छुक नहीं होते जो समाज विरोधी हो।

व्यवसायिक रुचि का विकास

किशोर सदा अपने भावी व्यवसाय के लिये चिंतित रहते हैं। किशोर अधिकतर उन्हीं व्यवसायों को चुनना पसंद करते हैं जिनका समाज में सम्मान हो।

8.3.4किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को तीन पक्षों में विभाजित किया है- ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। सर्वप्रथम मनुष्य ज्ञानेन्द्रिययों द्वारा किसी वस्तु अथवा क्रिया का ज्ञान प्राप्त करता है, फिर इस ज्ञान के आधार पर उसके मन में किसी भाव की उत्पत्ति होती है और इसके बाद वह इसके प्रति अनुक्रिया करता है; जैसे किसी भयानक वस्तु अथवा क्रिया के ज्ञान से मनुष्य के मन में भय उत्पन्न होता है और भय की उत्पत्ति के कारण वह पलायन करता है। सामान्यतः किसी वस्तु अथवा क्रिया से उत्पन्न मनोभाव को संवेग कहते हैं; जैसे प्रेम, घृणा एवं भय आदि। मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने स्पष्ट किया कि मनुष्य के सभी मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहारों के पीछे कोई न कोई संवेग छिपा होता है; जैसे पलायन के पीछे भय और जिज्ञासा के पीछे आश्चर्य, परन्तु सभी भाव संवेग नहीं होते। केवल तीव्र अनुभूति के आधार पर विकसित और व्यवहार को प्रभावित करने वाले भाव ही संवेग की कोटि में आते हैं। मनोवैज्ञानिक ने स्पष्ट किया कि जैसे-जैसे मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता जाता है तैसे-तैसे उसमें संवेगों का विकास भी होता जाता है। मनुष्य में संवेगों के विकास को ही संवेगात्मक विकास कहते हैं। संवेगों के विकास के सन्दर्भ में दो मत हैं-

(1) संवेग जन्मजात होते हैं- इस मत को मानने वालों में वेकविन तथा हांलिगवर्थ आदि। हांलिगवर्थ का मानना है कि प्राथमिक संवेग जन्मजात होते हैं। वाटसन ने बताया कि जन्म के समय बच्चे में तीन प्राथमिक संवेग भय, क्रोध व प्रेम होते हैं।

(2) संवेग अर्जित किए जाते हैं - कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि संवेग विकास एवं वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त किए जाते हैं। जन्म के समय संवेग निश्चित रूप से विद्यमान नहीं होते हैं।

संवेगों की विशेषताएँ

1. संवेगात्मक अनुभव किसी मूल प्रवृत्ति या जैविकीय उत्तेजना से जुड़े होते हैं। जो कि प्रत्यक्षकरण का उत्पाद होते हैं।
2. प्रत्येक संवेगात्मक अनुभव के दौरान प्राणी में अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं।

3. संवेग किसी स्थूल वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिव्यक्त किए जाते हैं।
4. विकास के सभी स्तरों में संवेग होते हैं और बच्चे व बूढ़ों में उत्पन्न किए जा सकते हैं।
5. एक ही संवेग को अनेक प्रकार के उत्तेजनाओं (वस्तुओं या परिस्थितियों) से उत्पन्न किया जा सकता है।
6. संवेग शीघ्रता से उत्पन्न होते हैं और धीरे-धीरे समाप्त होते हैं।

किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं में सांवेगिक विकास भी तीव्रता से होता है जिसके कारण उनमें अनेक संवेगात्मक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं-

आत्म सम्मान के प्रति सचेष्ट

किशोरावस्था में बालक भावना प्रधान हो जाते है। उनमें आत्म सम्मान की भावना अधिक जाग्रत हो जाती है। छोटी सी छोटी बात उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाती है जिसके कारण उनमें क्रोध, ईर्ष्या, घृणा जैसे संवेग उत्पन्न हो जाते है।

जिज्ञासा प्रवृत्ति की प्रबलता

इस आयु में बालकों में जिज्ञासा प्रवृत्ति इतनी अधिक होती है कि वह प्रति पल कुछ नया जाने को उत्सुक रहते हैं। वह सिर्फ क्या है से सन्तुष्ट नहीं होते वरन् क्यों है और किस प्रकार है का उत्तर चाहिए होता है।

संवेगों की अभिव्यक्ति में स्थिरता

किशोरावस्था में किशोरो एवं किशोरियों के सामान्य संवेगों जैसे- क्रोध, भय, प्रेम, दया आदि में चंचलता समाप्त होकर स्थिरता आ जाती है।

क्रियाशीलता एवं सक्रियता

इस अवस्था में क्रियाशीलता एवं सक्रियता की प्रवृत्ति अधिक होती है। बालक बाहर के खेलों में तथा बालिकाएं घर के कामों में अधिर सक्रिय रहती हैं। वे इनके माध्यम से अपने संवेगों को भी अभिव्यक्त करते हैं।

काल्पनिक जीवन पर विश्वास

किशोरो का जीवन कल्पनाओं से परिपूर्ण होता है और अपनी इन कल्पनाओं का साकार रूप वह अपने स्वप्नों में देखने लगते है। वह वास्तविक जीवन की अपेक्षा काल्पनिक जीवन में अधिक रहने लगते है।

8.4 किशोरावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन एवं विकास होते हैं। इन परिवर्तनों मे से कुछ परिवर्तन स्वभावतः होते हैं परन्तु कुछ कारक भी होते हैं जिसके कारण बालक में ये परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। नीचे इन्हीं कारको का वर्णन किया गया है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास अनेक वाह्य एवं आंतरिक परिवर्तन होते हैं। सामान्यतः देखा जाता है कि किशोरावस्था के अंत तक बालक पूर्ण रूप से परिपक्व व्यक्ति बन जाता है। किशोरावस्था में किशोर के शारीरिक विकास को अनेक आंतरिक एवं वाह्य कारक प्रभावित करते हैं जिसमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. किशोर की शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य अपने माता पिता से प्रभावित होता है। सामान्यतः स्वस्थ माता-पिता के बच्चों को स्वास्थ्य भी स्वस्थ ही होता है।
2. किशोर के समुचित विकास पर उसके आस-पास के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। उनके स्वाभाविक विकास में उनका वातावरण जैसे-शुद्ध वायु, स्वच्छता, सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण रूप से सहायक होते हैं। यदि किशोर के पहनने के कपड़े एवं रहने का स्थान स्वच्छ तथा भोजन मे पौष्टिकता हो तो उनका शारीरिक विकास अत्यंत दुरत गति से होता है। बालक के शारीरिक विकास पर उसके द्वारा सेवन किये जाने वाले भोजन का भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक किशोरावस्था के बालक को पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन न मिले तो इस उम्र के किशोरों का शारीरिक विकास उतना नहीं होता जितना कि होना चाहिए।
3. स्वस्थ शारीरिक विकास के लिये दिनचर्या की नियमितता भी आवश्यक है। यदि बालक सोने, खाने, खेलने, पढ़ने जैसे अपने सभी कार्य नियमित रूप से तथा निश्चित समयानुसार करें तो इसका उसके शरीर पर सकारातमक प्रभाव पड़ता है तथा वे सामान्यतः स्वस्थ रहते हैं।
4. शरीर की स्वस्थता के लिये पूर्ण निद्रा एवं विश्राम भी आवश्यक है। किशोरावस्था में कम से कम 8 घंटे की नींद लेना अत्यंत आवश्यक है ताकि उसकी थकान दूर हो सके।
5. किशोरावस्था अत्यंत तनाव एवं संघर्ष की अवस्था होता है। अतः इस स्थिति में माता-पिता का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा शिक्षकों की सहानुभूति एवं सहयोग उनके शारीरिक विकास में सहयोग देता है।
6. इस अवस्था में बालक पूर्णतः परिपक्व होता है। अतः उस पर उसके परिवार की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। परिवार की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति भी उसके विकास को प्रभावित करती है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक का मस्तिष्क अत्यंत उथल-पुथल की स्थिति में होता है। इस अवस्था में बालक अनेकों प्रकार के विचारों में उलझा होता है जिसका प्रभाव उसके मानसिक विकास पर निश्चित रूप में पड़ता है। किशोरों के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं-

1. किशोर के मानसिक विकास पर उसके वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिकतर यही दृष्टिगत होता है कि बुद्धिमान माता-पिता की संतान बुद्धिमान तथा जड़ बुद्धि माता-पिता की संतान जड़ होती है।
2. किशोर के मानसिक विकास को उसका पारिवारिक वातावरण भी प्रभावित करता है। यदि परिवार का वातावरण सुखद एवं तनावमुक्त है तो बालक का मानसिक विकास उत्तम रूप से होगा और इसके विपरीत यदि उसके परिवार का वातावरण कलह-क्लेश से युक्त हो तो अक्सर बालक का मस्तिष्क गलत दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है न केवल परिवार के वातावरण का वरन् उसका सामाजिक वातावरण भी उसे प्रभावित करता है। वह जिस तरह के वातावरण में रहता है उसी तरह से उसका बौद्धिक विकास होता है। चूंकि किशोरावस्था परिपक्वता की अवस्था होती है इसलिये किशोर अपने मित्र समूह का चयन बहुत सोच विचार कर करता है।
3. परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी किशोर के मानसिक विकास में सहयोग देती है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति से आने वाले किशोरों का मानसिक विकास निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार से आने वाले बालकों की अपेक्षा अधिक होता है।
4. किशोर के मानसिक विकास में विद्यालय एक महत्वपूर्ण कारक है। विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा के द्वारा ही बालक के बौद्धिक विकास को उचित दिशा मिलती है। यही कारण है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में किशोर का पाठ्यक्रम उनकी रुचि एवं योग्यतानुसार रखा जाता है ताकि प्रत्येक बालक अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार विकसित हो सकें।
5. बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक उसका शारीरिक स्वास्थ्य है। जैसा कि अरस्तू द्वारा कथित यह कथन विदित है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। अतः बालक का मानसिक विकास काफी हद तक उसके स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशेरावस्था में बालक का सामाजक विकास भी अनेक कारकों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं-

1. किशोर के सामाजिक विकास पर कुछ सीमा तक उसके वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है।

2. किशोर का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। स्वभावतः यदि किशोर शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं मानसिक रूप से परिपक्व होगा तभी उसमें सामाजिकता का तीव्रता से विकास सम्भव है।
3. किशोर के सामाजिक विकास को उसकी सांवेगिक परिपक्वता भी प्रभावित करती है क्योंकि समाज में हर तरह के लोग मिलते हैं, उनसे समायोजन तभी स्थापित हो सकता है जब हम अपने क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष जैसे संवेगों को नियंत्रित रख व्यवहार प्रदर्शित करें।
4. परिवार की आर्थिक स्थिति भी बालक को अधिक अथवा कम सामाजिक बनने में सहायक होती है। धनी परिवार के किशोर के रहने का स्थान तथा वहाँ का वातावरण निर्धन परिवार की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होता है। उनके घर में सभी साधन उपलब्ध होते हैं। जो किशोर में उचित सामाजिक गुणों के विकास में सहायक होते हैं।
5. विद्यालय का वातावरण भी किशोर में सामाजिकता का विकास करने में सहायक होता है। यदि विद्यालय का वातावरण एकतंत्रीय हो तो बालक का सामाजिक विकास स्वस्थ रूप से उचित दिशा में नहीं होगा तथा इसके विपरीत विद्यालय के लोकतंत्रीय वातावरण में बालक स्वतंत्रतापूर्वक पूर्ण कुशलता के साथ अपने मित्रों एवं शिक्षकों के साथ व्यवहार करता है जो उसके सामाजिकरण का ही एक हिस्सा है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोर के लिये समाज में अपनी प्रस्थिति निश्चित करना बहुत कठिन होता है क्योंकि वह यह निश्चित नहीं कर पाता कि किस प्रकार का व्यवहार अपेक्षित है। फलतः उसमें सांवेगिक अस्थिरता का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अतः किशोरावस्था में किशोर में उचित संवेगात्मक विकास होना अत्यंत आवश्यक है। किशोर के संवेगात्मक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को थकान अत्यधिक प्रभावित करती है। थकान के कारण वह क्रोध, चिड़चिड़ेपन जैसे अवांछित संवेग अभिव्यक्त करने लगता है।
2. शारीरिक स्वस्थता भी उसके संवेगात्मक विकास को उचित दिशा प्रदान करती है। किशोर यदि शारीरिक रूप से स्वस्थ होगा तो वह किसी भी कार्य को पूर्ण उत्साह, लगन एवं प्रसन्नतापूर्वक करने का प्रयत्न करता है अतः बालक के स्वास्थ्य की दशा का उसके संवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ सम्बंध होता है।
3. किशोर के संवेगात्मक व्यवहार को न केवल स्वास्थ्य वरन् मानसिक योग्यता भी प्रभावित करती है। अधिक मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता एवं क्षमता वाले बालकों का संवेगात्मक क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है।
4. किशोर का सांवेगिक व्यवहार उसके परिवार, वहां के वातावरण, परिवार की स्थिति आदि से बहुत अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यदि परिवार का वातावरण आनंदमय एवं

शांतिपूर्ण है तो बालक में भी स्वस्थ संवेगों का संचरण होगा। इसके विपरीत यदि परिवार में कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़े का वातावरण उसके सांवेगिक पक्ष पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा उसकी संवेगात्मक नकारात्मकता उसके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है।

5. यदि परिवार में माता-पिता का किशोर के प्रति दृष्टिकोण सहयोगी एवं सहानुभूति पूर्ण है तथा उनके परस्पर सम्बंधों में मधुरता है तो बालक में संवेगों का विकास सकारात्मक रूप में होता है।

8.5 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरुप

किशोरावस्था में विकास सम्बंधी परिवर्तनों को देखने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि यह जीवन का सबसे कठिन एवं नाज़ुक समय होता है जिसमें यदि बालक पर ध्यान न दिया जाये तो उसका विकास बाधित भी हो सकता है। बालक के विकास को उचित दिशा प्रदान करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः उनकी शिक्षा व्यवस्था का एक निश्चित स्वरूप अवश्य होना चाहिए। किशोरावस्था में बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। किशोरावस्था में बालकों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं से परिचित होकर उनकी संतुष्टि एवं निराकरण के लिये यथासम्भव प्रयत्न किये जाने चाहिए। इस सम्बंध में शिक्षकों, अभिभावकों एवं विद्यालय सभी के सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है। इस सम्बंध ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

8.5.1 शारीरिक विकास के लिये शिक्षा

किशोरावस्था वृद्धि की दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण अवस्था होती है। किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास बहुत तीव्रता के साथ होता है। अतः उसके स्वास्थ्य के प्रति अधिक सचेष्ठता की आवश्यकता है। शरीर को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिये उसके लिये पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। भोजन के साथ आस-पास के स्वस्थ वातावरण की भी व्यवस्था करनी चाहिए। शरीर की स्वस्थ्ता के लिये नियमित खेलकूद एवं व्यायाम भी आवश्यक है। किशोरों की शारीरिक गति के लिये विद्यालय में व्यायाम एवं खेलकूद सम्बंधी क्रियाएं जैसे कुश्ती, कसरत, फुटबाल, तैराकी, हॉकी आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। देखा जाये तो शारीरिक विकास पर ही पूरा विकास निर्भर करता है। यदि बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा तो वह किसी भी क्रिया को लगन से नहीं कर सकेगा फलतः मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, क्रियात्मक आदि सभी विकास कहीं न कहीं अवरुद्ध होंगे।

8.5.2 मानसिक विकास के लिये शिक्षा

किशोरावस्था में मानसिक विशेषताओं के अनुसार किशोरों की बुद्धि निरीक्षण शक्ति, तर्क, चिंतन, स्मृति एवं कल्पना शक्ति का विकास उनकी रुचि, योग्यता, क्षमता के अनुसार किया जा सकता है। इसके लिये किशोरों के पाठ्यक्रम में कला, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि के साथ विद्यालय पाठ्यक्रम में पाठ्य विषयान्तर विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। विद्यालयों में बालको के उचित विकास के लिये पुस्तकालयों, वाचनालयों, प्रयोगशाला आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि बालक अपने अवकाश के समय का भी सदुपयोग कर अपने ज्ञान को बढ़ा सके। किशोरों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत तीव्र होती है। अतः उनकी जिज्ञासाओं का सही समाधान उनको बता कर उन्हें शांत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

8.5.3 सामाजिक विकास के लिये शिक्षा

बालक में सामाजिक का विकास करना शिक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। सामाजिक विकास के बिना व्यक्ति अपने वातावरण में समायोजन नहीं कर सकता है। किशोरों के सामाजिक विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्यालय में आयोजित होने बाले विभिन्न कार्यक्रम जैसे स्काउट एवं गाइड, एन0 सी0सी0, एन0एस0एस0 में बालकों को भाग लेने के लिये शिक्षकों को प्रोत्साहित करना चाहिए। केवल विद्यालय ही बालक के सामाजिक विकास के लिये उततरदायी है वरन् परिवार की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार का यह कर्तव्य है कि वह बालक को अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति से अवगत कराए ताकि वे स्वयं को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप बनाने का प्रयत्न कर सकें। किशोर में सामाजिकता विकसित करने के लिये उसमें समायोजन क्षमता विकसित करना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि जब तक वह स्वयं को समाज के अनुरूप समायोजित नहीं करेंगे तब तक वह समाज स्वीकृत व्यवहार को प्रदर्शित नहीं कर सकेंगे। अतः किशोरों में सामाजिकता का विकास उचित एवं व्यवस्थित रूप से होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यही सामाजिकता ही मानव को पशु से भिन्न करती है। अतः उनके सामाजिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए अन्यथा वह समाज एवं देश का एक कुशल व्यक्ति एवं नागरिक नहीं बन सकेगा।

8.5.4 संवेगात्मक विकास के लिये शिक्षा

किशोरों में संवेग अधिक प्रबल होते हैं। उनके संवेगात्मक जीवन में उथल-पुथल मची होती है। वह पूर्व के स्थायी संवेग एवं नवीन विकसित संवेगों को नियंत्रित एवं समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। बालक में उत्पन्न होने वाली नई भावनाओं में कुछ अच्छी एवं कुछ बुरी भावनाओं का समावेश होता है। कभी-कभी तो उन्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है कि वह अपने कर्तव्य को समझ पाने में असमर्थ हो जाते हैं। किशोरावस्था में उनके संवेगात्मक व्यवहार में अस्थिरता होती है। इस आयु के बालकों संवेगात्मक अपरिपक्वता होने के कारण आसानी से इन्हें

विध्वंसात्मक कार्यों में संलग्न किया जा सकता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को चाहिए कि वह बालकों के संवेगों को उचित दिशा में उन्मुख करने के लिये प्रयत्नशील रहें ताकि विभिन्न राजनैतिक समूह अपने निजी स्वार्थ के लिये उनका उपयोग न कर सकें। अतः शिक्षा के द्वारा बालक के निकृष्ट संवेगों को दमित अथवा मार्गान्तरीकरण कर उत्तम संवेगों को बढ़ावा देना चाहिए। यदि शिक्षक एवं अभिभावक वास्तविकता में बालक के संवेगों को प्रशिक्षित करना चाहते हैं तो उन्हे सर्वप्रथम उनके संवेगात्मक व्यवहार को भली-भंति समझना आवश्यक है क्योंकि बिना संवेगों को समझे उन्हें सही दिशा नहीं प्रदान कर सकते हैं।

8.5.5 किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान

किशोर के मन एवं प्रौढ़ों के मनःस्तर में बहुत भिन्नता होती है। किशोरों को यदि उनके स्तर के अनुरूप शिक्षा न प्रदान की जाये तो प्रायः यह देखा जाता है कि उनका ध्यान पढ़ाई से हटकर अन्य कार्यों में लगने लगता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को उनके मनोविज्ञान को जानना अत्यंत आवश्यक है। उन्हें उनकी आवश्यकताओं, वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पहलुओं तथा उनके द्वार अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों एवं समस्याओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है तभी वे उनके उचित विकास एवं समायोजन में पूरी-पूरी सहायता करने में सक्षम हो सकेंगे क्योंकि जब तक वह उनके स्वभाव, रुचि, योग्यता आदि को अच्छे से नहीं समझेंगे तब तक वह उनके लिये उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. किशोरावस्था ______________ की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है।
2. _______________ तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है।
3. मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को किन तीन पक्षों में विभाजित किया है?
4. ______________तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है।

8.6सारांश

प्रस्तुत इकाई में किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के विषय में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था वह समय है जिसमें विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था से निकलकर तारुणयता की ओर अग्रसर होता है। किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते

हैं। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ये सभी विकास क्षेत्र परस्पर सम्बंधित हैं एवं एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

किशोरावस्था में विकास सम्बंधी परिवर्तनों को देखने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि यह जीवन का सबसे कठिन एवं नाजुक समय होता है जिसमें यदि बालक पर ध्यान न दिया जाये तो उसका विकास बाधित भी हो सकता है। बालक के विकास को उचित दिशा प्रदान करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बालक में सामाजिक का विकास करना शिक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। सामाजिक विकास के बिना व्यक्ति अपने वातावरण में समायोजन नहीं कर सकता है। किशोरों के सामाजिक विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

किशोर के मन एवं प्रौढ़ों के मनःस्तर में बहुत भिन्नता होती है। किशोरों को यदि उनके स्तर के अनुरूप शिक्षा न प्रदान की जाये तो प्रायः यह देखा जाता है कि उनका ध्यान पढ़ाई से हटकर अन्य कार्यों में लगने लगता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को उनके मनोविज्ञान को जानना अत्यंत आवश्यक है।

8.7 शब्दावली

3. **किशोरावस्था-** 12 से 21 वर्ष तक की अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं।
4. **वृद्धिः** बच्चों में उम्र के अनुसार होने वाला शारीरिक आकार, भार, हड्डियों, मांसपेशियों, दांत, तंत्रिका-तंत्र आदि का समुचित विकास।
5. **विकास**: जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाला क्रमिक तथा संगत परिवर्तनों का उत्तरोत्तर क्रम।

8.8 अभ्यास पश्नों के उत्तर

1. युवावस्था
2. किशोरावस्था
3. मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को निम्न तीन पक्षों में विभाजित किया है-ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक।
4. किशोरावस्था

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह आर0 एन0, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, गंगासागर एण्ड गे ैण्ड सन्स, वाराणसी वर्ष 1980
2. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2011

3. लाल, रमन बिहारी, जोशी सुरेश चन्द्र, आर0 लाल बुक डिपो मेरठ, वर्ष 2010
4. लाल, रमन बिहारी, जोशी सुरेश चन्द्र, शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर0 लाल बुक डिपो मेरठ, वर्ष 2010
5. शर्मा, प्रवीन, शर्मा, सरोज, साइलोजिकल फाउण्डेशन ऑफ एजूकेशन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, वर्ष 2011
6. सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली वर्ष 2004
7. सारस्वत, मालती, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, लखनऊ 2010
8. मंगल, एस0 के0, शिक्षा मनोविज्ञान, पी0 एच0 आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 2009

8.10निबंधात्मकप्रश्न

1. किशोरावस्था में मानसिक विकास किस प्रकार होता है?
2. किशोरावस्था में बालक की सांवेगिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को बताइये।
4. किशोरावस्था को जीवन का सबसे कठिन काल क्यों कहा जाता है ?
5. किशोरावस्था में बालक समाज स्वीकृत व्यवहार क्यों प्रस्तुत करने लगता है ?
6. बालक का संवेगात्मक विकास सामाजिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है?
7. किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास किन प्रमुख कारकों से प्रभावित होता है ?
8. किशोरावस्था में बालक में होने बाले मानसिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक होते हैं ?
9. किशोरावस्था में बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास के में शिक्षा की क्या भूमिका है ?

इकाई 9 सीखनाLearning

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सीखने का अर्थ एवं परिभाषा
9.4 सीखना एवं परिपक्वन
9.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक
9.6 प्रशिक्षण याअधिगमस्थानान्तरण
9.7 अधिगमस्थानान्तरणकाअर्थएवंपरिभाषाएं
9.8 अधिगमस्थानान्तरण कीपरिभाषा
9.9 सीखनेकेस्थान्तरणकामहत्वऔरशिक्षणोंकीभूमिका
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.13 संदर्भ प्रश्न
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सीखना निरन्तर चलने वाली एक सार्वभौमिक व मानसिक प्रक्रिया है। जो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक व्यक्ति के साथ चलती है। सीखने को हम अधिगम के नाम से भी जानते है। सीखने की गति परिस्थितियों एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रहती है। परन्तु इसकी स्थिति में कभी विरामावस्था एवं अस्थिरता नहीं आती है। मनुष्य को सीखने या अधिगम के लिए किसी विशेष परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति कही भी, कभी भी, किसी भी समय किसी से भी, कुछ भी सीख सकता है। वह न केवल शिक्षा संस्थान में बल्कि परिवार, संस्कृति मित्रमण्डली, पड़ोसियों, राह चलते, सिनेमा, अपरिचित व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों इत्यादि सभी के परोक्ष-अपरोक्ष रूप से कुछ न कुछ अवश्य सीखता है। अधिगम का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि व्यक्ति का अधिकाशयता व्यवहार सीखने से अथवा सीखने की प्रक्रिया से प्रभावित रहता है। सीखना जीवन की सफलता का आधार है। इसलिए वुडवर्थ ने कहा है कि -

"सीखना विकास की प्रक्रिया है।" **Learning is a process of development.**

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. अधिगम का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगें।
2. अधिगम की परिभाषा दे पायेंगें।
3. अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगें।
4. अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कर पायेगें।
5. अधिगम स्थानान्तरण के प्रकार तथा महत्व का वर्णन कर पायेगें।
6. प्रशिक्षण याअधिगमस्थानान्तरण की व्याख्या।
7. अधिगमस्थानान्तरणकाअर्थएवंपरिभाषाएं लिख पायेगें।
8. सीखनेकेस्थान्तरणकामहत्वऔरशिक्षणोंकीभूमिका की व्याख्या कर पायेगें।

9.3 सीखने का अर्थ एवं परिभाषा Meaning and Definition of Learning

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning return to change in behaviour) परन्तु सभी स्तर के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना नहीं कहा जाता हैं। व्यवहार में परिवर्तन थकान,दवाखानेसे,बीमारी,परिपक्वता (Maturation)आदि से भी होता है। परन्तु ऐसे परिवर्तनों की सीखना नहीं कहा जाता है जो अभ्यास (practice)या अनुभूति (experience)के फलस्वरूप होते है। प्रायः इसी तरह के परिवर्तन का उद्देश्य व्यक्ति को किसी दिए हुए वातावरण में समायोजन (adjustment)करने में मद्द करने से होता है। अतः यह कहा जाता है। कि सीखना व्यवहार में वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जो अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है। तथा जिसका उद्देश्य व्यक्ति को समायोजन करने में मद्द से होता है। (Learning return to change in behaviour as a function of practice or experience with a view to make adjustment in the environment)

सीखना या अधिगम वैसे तो सामान्य रूप से बोलचाल की भाषा में प्रयोग किया जाने वाला शब्द है। प्रत्येक व्यक्ति नित्य प्रतिदिन अपने जीवन में अनुभवों को इक्ट्ठा करता रहता है। ये नवीन अनुभव मानव के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इन अनुभवों का नवीन परिस्थितियों में उपयोग करना ही सीखना है। निःसन्देह अधिगम से तात्पर्य अनुभवों द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया से है।

सीखने से तात्पर्य है संचयी उन्नति। उन्नति के स्वरूप का आकलन उन परिवर्तनों द्वारा किया जा सकता है जो उस समय होते है जबकि सीखने की क्रिया हो रही होती है। जीवन के प्रारम्भ में बालक में सीखने की प्रक्रिया का स्वरूप अपरिष्कृत ,रूक्ष एवं समन्वेषी होता है। उस समय बालक के कार्य-

व्यवहारों में विभिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती तथा उसकी प्रतिक्रियाएं प्रायः दोषपूर्ण होती है। उचित शिक्षा के द्वारा वह कम त्रुटियाँ करना सीख लेता है। वह अपने कार्यो में एकरूपता लाता है। और निर्णय करने की क्षमता का विकास करता है। बालक के लिए शिक्षा प्रकार, सीखने की दिशा एवं तत्सम्बन्धी पाठ्यक्रम बालक की अभिवृद्धि और विकास की अवस्थाओं पर निर्भर होता है।

सीखने के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने हेतु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपनी -अपनी परिभाषा दी है। जो इस प्रकार हैः-

स्किनर के अनुसार - "सीखना व्यवहार में उत्तरोतर साँमजस्य की प्रक्रिया है।"

"Learning is a process of progressive behaviour adaption" – **Skinner**

वुडवर्थ के अनुसार - "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को अर्जन करने की प्रक्रिया ही अधिगम प्रक्रिया है।

"The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of learning"- **WoodWorth**

किम्बले के अनुसार- "पुर्नवलित अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार जन्य क्षमता में आने वाले अपेक्षाकृत स्थायी प्रकृति का परिवर्तन अधिगम है।"

"Learning is a relativaly permanent change in behaviour potentiality that occures as a result of reinforced practice." –**Kimble**

जे.पी. गिलफर्ड के अनुसार- "व्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम हैं।"

"Learning is any change in behaviour resulting from behaviour." **J.P.Guilford**

क्रो तथा क्रो के अनुसार - "सीखना आदतों ,ज्ञान तथा अभिवृतियों का अर्जन है।"

"Learning is the acqisition of habits, knowledge and attitudes"-**Crow and Crow**

क्रोनवैक के अनुसार - "अधिगम अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।"

"Learning is shown by a change in behaviour as a result of experience"- **Cronback**

गेट्स तथा अन्य - "अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को अधिगम कहते हैं।"

"Learning is the modification of behaviour through experience & training."

Gates and others

गार्डनर मरफी के अनुसार- “सीखने के अर्न्तगत वातावरणीय आवश्कताओं की पूर्ति के लिए व्यवहार में आए समस्त परिमार्जन समाहित रहते हैं।”

“अनुभव के प्रतिफल के रूप में नये व्यवहार का अर्जन अथवा पुराने व्यवहार का सुदृढ़ीकरण या निर्थलीकरण सीखना है।” **हेनरी पी.स्मिथ**

“Learning is the acquisition of new behaviour or the strengthening or weakening of old behaviour as the result of experience.”- **Henry P Smith**

हिलगार्ड के अनुसार - “अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें अभ्यास अथवा प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार का उद्भव होता है अथवा व्यवहार में परिवर्तन होता है।”

“Learning is the process by which behaviour is originated or changed through practice or training.”- **Hilgard**

ऊपर की परिभाषाओं एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई लगभग परिभाषाओं, यदि एक संयुक्त विश्लेषण किया जाए ,तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता इस तरह के विश्लेषण करने पर हम निम्नाँकित निष्कर्ष पर पहुँचते है।

i. सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है- (Learning is the change in behaviour)प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे हम सीखना नहीं कहेगेंव्यवहार में परिवर्तन एक अच्छा एवं अनुकूली (adaptive)परिवर्तन भी हो सकता है या खराब एवं कुसमंजित (Maladaptive)परिवर्तन भी हो सकता है। साइकिल चलाना सीखना, स्वेटर बुनना सीखना आदि व्यवहार में एक अच्छा एवं अनुकूल परिवर्तन का उदाहरण है। परन्तु कभी-2 व्यक्ति कई बुरी आदतों जैसे -चोरी करना, झूठ बोलना आदि को भी सीख लेता है। व्यवहार में ऐसे परिवर्तन खराब एवं कुसमंजित परिवर्तन के उदाहरण हैं। सीखने से तात्पर्य व्यवहार में इन दोना तरह के परिवर्तन से होता है।

ii. व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है। (The change in behaviour occure as a function of practice or experience)सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, वह अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है। यहाँ अभ्यास (practice) से तात्पर्य किसी प्रकार के प्रशिक्षण से होता है। जिसमें व्यक्ति किसी प्रक्रिया को बार-बार दुहराते हुए तथा अपनी गलतियों को सुधारते हुए सीखता है। अनुभूति (experience) से यहाँ तात्पर्य व्यक्ति की आकस्मिक अनुभूतियों (Chance experience) से होता है। जो व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाता है। एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति टाइप करना सीख रहा है।

स्वभावतः टाइप करने की प्रक्रिया को वह एक प्रशिक्षण के आधार पर सीख रहा है- क्योंकि वह बार-बार टाइप करता है तथा प्रत्येक बार में अपनी हुई गलतियों को सुधारते भी जाता है। अन्त में वह बिना किसी प्रकार की गलती के ही टाइप करना सीख लेता है। यहाँ व्यवहार में परिवर्तन एक प्रशिक्षण के फलस्वरूप हुआ। प्रत्येक प्रक्रिया को सीखने के लिए व्यक्ति को अभ्यास की ही जरूरत नहीं पड़ती है। ऐसा भी होता है कि वह मात्र एक बार के अनुभव (experience) में ही उसे सीख लेता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति का हाथ एक गर्म स्टोव पर अचानक पड़ जाता है, तो वह मात्र एक ही बार के अनुभव में सीख लेता है कि उसे गर्म स्टोव पर हाथ नहीं रखना चाहिए।

iii. व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है(There is relatively permanent change in behaviour)ऊपर दी गई परिभाषाओं में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि सीख्ने में व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है। अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन व्यवहार वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जो एक खास समय तक एक तरह से स्थायी होता है। उस खास समय की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है। वह कुछ दिन का भी हो सकता है कुछ महीने का भी। उदाहरण यदि कोई व्यक्ति टाइप करना सीखता है। तो उसके व्यवहार में हुआ इस तरह का परिवर्तन कुछ समय तक स्थायी होता है। अभ्यास न करने से सम्भव है कि तीन महीने या पाँच महीने में व्यक्ति फिर से टाइप करना भूल जाए। तब यह कहा जाएगा कि व्यक्ति के व्यवहार में हुआ परिवर्तन तीन या पाँच महीने के लिए ही स्थायी था।

अभ्यास प्रश्न

1. ______________के अनुसारव्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।

2. ______________के अनुसार - "सीखना आदतों ,ज्ञान तथा अभिवृतियो का अर्जन है।''
3. हिलगार्ड के अनुसार, अधिगम क्या है?
4. "सीखना व्यवहार में उत्तरोतर सांमजस्य की प्रक्रिया है।" यह परिभाषा दी है-
   (क) वुडवर्थ (ख) स्किनर (ग) किम्बले (घ) थार्नडाइक
5. वुडवर्थ ने कहा है कि -"सीखना ____________ की प्रक्रिया है।"

9.4 सीखना एवं परिपक्वन (Learning and Maturation)

सीखना और परिपक्वन ये दोनों प्रक्रियाओं कुछ इस प्रकार से जुड़ी हैं कि कभी-2 निश्चित रूप से यह कहना कठिन हो जाता है कि व्यवहार सम्बन्धी किन परिवर्तनों के पीछे सीखने की प्रक्रिया का हाथ

है तथा किनके पीछे परिपक्वता का। इसे जानने के लिए हमें इन दोनों प्रक्रियाओं में निहित अन्तर को भली-भांति समझ लेना आवश्यक हो जाता है।

परिपक्वन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है इसके लिए बाह्य उद्दीपनों की आवश्यकता नहीं यह एक प्रकार से मानव की अन्र्तनिहित शक्तियों का विकास है जैसे बीज से पत्ते, टहनी, फल-फूल इत्यादि प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही प्राकृतिक रूप में किसी पूर्व अनुभव, अधिगम या प्रशिक्षण के बिना परिपक्वन की क्रिया के फलस्वरूप जन्मजात योग्यताओं और शक्तियों में वृद्धि हो जाती है तथा प्राणी में आवश्यक परिवर्तन आ जाते है। बिग्गी(Biggi) एवं हंट (Hunt) ने परिपक्वन के अर्थ को स्पष्ट करतेहुए निम्न विचार व्यक्त किए हैं-

“ परिपक्वन एक विकासात्मक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति समय के साथ-साथ उन सभी विशेषताओं और गुणों को ग्रहण करता है जिसकी नींव उसके गर्भ में आने के समय ही उसकी कोशिकाओं में रखी जा चुकी है।’’

“Maturation is a development process within which a person from time to time manifests different traits, the blue print of which have been carried in his cells from the time of his conception” -Biggi& Hunt,1968

इस प्रकार परिपक्वन का सम्बन्ध उन सभी परिवर्तनों से होता है जो कि नैसर्गिक और सामान्य बुद्धि से जुड़े हुए होते हैं। दूसरी ओर अधिगम या सीखना व्यक्ति में होने वाले उन परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिसके लिए आवश्यक रूप से वंशानुक्रम की प्रक्रिया उत्तरदायी नहीं होती। इन्हें सीखने में अनुभव की आवश्यकता पड़ती है और विशेष प्रयत्न भी करने पड़ते हैं। सीखने की प्रक्रिया के दौरान व्यवहार में जो परिवर्तन होते हैं वे सदैव किसी न किसी प्रक्रिया-प्रशिक्षण अथवा अनुभव के फलस्वरूप प्राप्त होते है।

अतः परिपक्वन को सीखने से अलग करके देखा जाए तो हम निम्न परिणाम तक पहुंच सकते है –

“अगर व्यवहार के किसी पक्ष का विकास आयु के बढ़ने के साथ-साथ बिना किसी अभ्यास और प्रशिक्षण की सहायता से स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होता है तो विकास के लिए परिपक्वन की क्रिया को ही उत्तरदायी ठहराया जाता है।

पक्षियों का हवा में उड़ना आदि क्रिया विशुद्ध रूप में परिपक्वता का परिणाम कही जा सकती है। लेकिन मानव की अधिकांश क्रियाओं में निश्चित रूप से यह कहना कठिन हो जाता है कि वे परिपक्वता का परिणाम है या सीखने का। उदाहरण के लिए हम बच्चें में भाषा के विकास को ले सकते हैं यह ठीक है कि बच्चा बोलना और भाषा का प्रयोग करना तब तक नहीं सीखता जब तक वह परिपक्वन की एक विशेष अवस्था या आयु पर नहीं पहुंच पाता परन्तु केवल परिपक्वन ग्रहण करने या आयु में बड़ा होने मात्र से सबको बोलना तथा प्रयोग करना नहीं आता उसे यह सबकुछ सीखाना पड़ता है।

वास्तव में देखा जाए तो परिपक्वन और सीखना ये दोनों क्रियाएं एक दूसरे में बहुत अधिक सम्बन्धित है। दोनों का लक्ष्य समान है। दोनों ही बालक के व्यवहार में संशोधन एवं परिवर्तन लाती हैं तथा विकास के सभी स्तरों पर साथ-साथ चलती है। एक के बिना दूसरी उतनी प्रभावोंत्पादक नहीं बन जाती परिपक्वता सीखनें में सहायक होती है। हम कह सकते हैं कि एक विशेष आयु अथवा परिपक्वता ग्रहण करने से पहले किसी विशेष ज्ञान अथवा कौशल को अर्जित करना संभव नहीं हो पाता दूसरी ओर सीखने की प्रक्रिया मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक परिपक्वता अर्जित करने में अत्याधिक सहायक होती है तथा बालक को सभी प्रकार से पूर्ण बनाकर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करती है। इसलिए बालक को ऐसी बातें सीखाना जिनके सीखने के लिए वह परिपक्व नहीं है किसी भी अवस्था में उचित नहीं हैं दूसरी ओर सीखने की उचित आयु निकल जाने देना भी अच्छा नहीं हैं अतः माता-पिता और अध्यापकों द्वारा परिपक्वता और सीखने के आपसी संबन्धों को ठीक प्रकार से समझने की चेष्टा करनी चाहिए।

9.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकFactors Affecting the Process of Learning

वर्तमान दौर में अधिगम की परिभाषा में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया है। आज का बालक अब कक्षा में निष्क्रिय रूप से बैठकर शिक्षक का भाषण नहीं सुनता बल्कि बालक नित नवीन अनुभव करके अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहता है। इसी कारण आधुनिक पाठशालाओं में रचनात्मक कायक्रमों, कार्य करके सीखना, उपकरणों के माध्यम से अधिगम करना, योजना बनाकर अधिगम करना, सामाजिक सम्पर्क के माध्यम से अधिगम करना, खेल द्वारा अधिगम और जीवन के अनुभव करके अधिगम करना आदि सिद्धांतों को प्रधानता दी जाती है।

अधिगम प्रक्रिया के अर्न्तगत ज्ञान और अनुभव में वृद्धि की सभी विधियाँ आ जाती हैं जैसे-कौशल ग्रहण करना, किसी कार्य को कुशलता से सम्पन्न करना, निरीक्षण करना, शब्द ज्ञान बढ़ाना, विचार करना, समस्या समाधान करना, शारीरिक प्रतिक्रियाओं का संगठन और परिवर्तन करना, उपयोगी आदतों को ग्रहण करना, पर्यावरण के प्रति उचित सांमजस्य बनाना व्यक्तित्व के अनुकूलन खोज और अनुकरण करना आदि सामान्य रूप से हम सभी के द्वारा अधिगम को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है कि जिसमें अनुभव और प्रशिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यवहार में काफी हद तक स्थाई एवं प्रभावपूर्ण परिवर्तन लाए जा सकते है। अधिगम की इस उपरोक्त परिभाषा का अगर ध्यान से अवलोकन किया जाए तो यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि अधिगम को किसी भी शिक्षण प्रक्रिया के सन्दर्भ में निम्न तीन प्रकार के तत्वों पर निर्भर रहते हुए पाया जा सकता है।

1. अधिगमकर्ता (Learner) जिसके व्यवहार में परिवर्तन लाए जाते हैं।
2. अधिगम अनुभव (Learning Experiences) जिन्हें अधिगकर्ता के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए काम में लाया जाता है।
3. मानव एवं भौतिक संसाधन (Mean and Material Resources) जिनकी सहायता से आवश्यक अधिगम अनुभव अधिगम कर्ता के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए प्रदान किये जाते है। अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं-

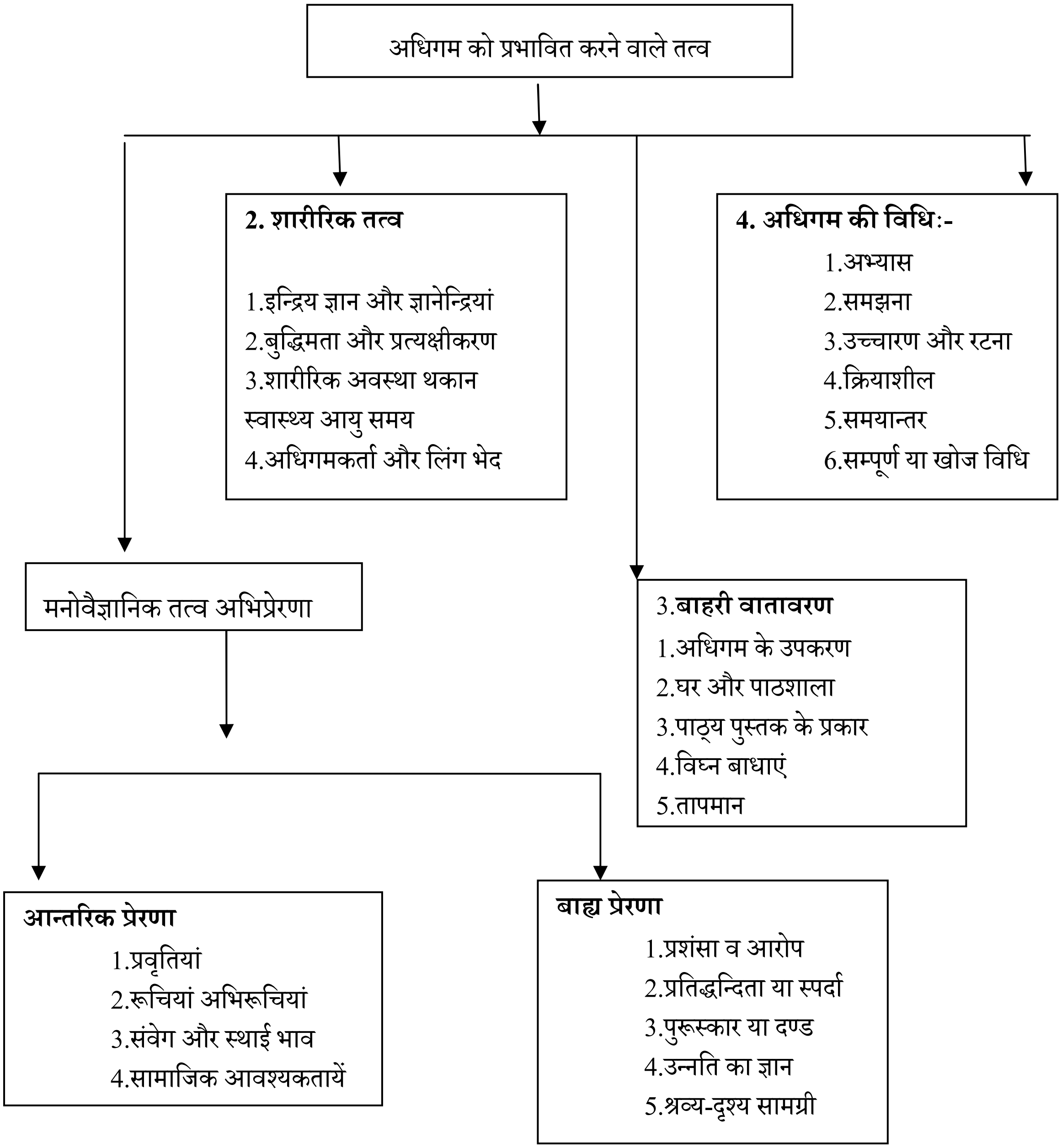

अब हम कुछ महत्वपूर्ण तत्वों पर विस्तार से प्रकाश डाल रहें हैं।

1. **विषय सामग्री का स्वरूप (Nature of Subject Matter)**-सीखने की क्रिया पर सीखी जाने वाली विषय वस्तु का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, कठिन और अर्थहीन सामग्री की अपेक्षा सरल और अर्थपूर्ण सामग्री अधिक शीघ्रता और सरलता से सीख ली जाती है इसी प्रकार अनियोजित सामग्री की तुलना में सरल से कठिन की ओर सिद्धान्त पर नियोजित सामग्री सीखने की क्रिया को सरलता प्रदान करती है।
2. **बालको का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य (Physical and Mental Health of Childrens)** -जो छात्र शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते हैं वे सीखने में रूचि लेते हैं और शीघ्र सीखते हैं। इसके विपरित शारीरिक व मानसिक रोगों से पीड़ित छात्र सीखने में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेते हैं, फलत वे किसी बात को बहुत देर में व कम सीख पाते हैं।
3. **परिपक्वता (Maturation) -** शारीरिक व मानसिक परिपक्वता वाले छात्र नये पाठ को सीखने के लिए सदैव तत्पर और उत्सुक रहते हैं अतः वे सीखने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करते हैं। यदि छात्रों में शारीरिक व मानसिक परिपक्वता नहीं होती तो सीखने में उनके समय और शक्ति का नाश होता है।
4. **सीखने का समय और थकान (Time of Learning and Fatigue)**-सीखने का समय सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है, उदाहरण के तौर पर जब छात्र विद्यालय आते हैं तो उनमें स्फूर्ति होती है। अतः उनको सीखने में सुगमता होती है। जैसे-जैसे शिक्षण का समय बीतता जाता है वैसे-वैसे उनकी स्फूर्ति में शिथिलता आती जाती है और वे थकान का अनुभव करने लगते है। परिणामतः उनकी सीखने की क्रिया मन्द हो जाती है।
5. **सीखने की इच्छा (Will to Learn)-**यदि छात्रों में किसी चीज की सीखने की इच्छा होती है, तो वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे सीख लेते हैं। अतः अध्यापक का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वह छात्रों की इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे उनकी रूचि और जिज्ञासा को जाग्रत करना चाहिए।
6. **प्रेरणा (Motivation)**-सीखने की प्रक्रिया में प्रेरको (motives)का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रेरक, बालको को नई बातें सीखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। अतः यदि अध्यापक चाहता है कि उसके छात्र नये पाठ को सींखे, तो वह प्रशंसा ,प्रोत्साहन आदि विधियों का प्रयोग करके उनको प्रोत्साहित करे।
7. **जीवन उद्देष्य (Goals of Life)-** अधिगमकर्ता का जीवन के प्रति क्या दृष्टिकोण है तथा वह अपने जीवन में किन लक्ष्यों की प्राप्ति को किस रूप में स्थान देता है, इस बात पर भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उसकी रूचि और प्रगति निर्भर करती है। जीवन के प्रति यही

दृष्टिकोण उसे किसी विशेष प्रकार की क्रियाओं तथा क्षेत्र विशेष के ज्ञान प्राप्ति की ओर मोड़ सकता है।

8. **शिक्षण कला एवं कौषल (Art and skill of Teaching)**- अपने विषय का ज्ञाता और उस पर अच्छा अधिकार होने के साथ-साथ एक अध्यापक को शिक्षण एवं अधिगम के क्षेत्र में सफलता हेतु शिक्षण की कला एवं कौशलों में भी पारंगत होना चाहिए। इसके अभाव में विषय की विद्धता शिक्षक तक ही सीमित रह जाती है। विद्यार्थियों तक प्रेषित और प्रभाहित नहीं हो पाती। इस तरह अधिगम कैसा होगा और शिक्षण में कितनी सफलता मिलेगी इसका दारोमदार अध्यापक द्वारा प्रयुक्त शिक्षण कौशलों एवं शिक्षण कला पर काफी कुछ निर्भर करता है।

9. **अध्यापककाव्यक्तित्वएवं व्यवहारPersonality Traits and Behaviour of Teacher-**
अधिगमअर्जनकेस्तरऔरशिक्षणकीगुणवत्तामेंअध्यापककेव्यक्तित्वएवंउसकेव्यवहारकीकाफीसशक्तभूमिकारहतीहै।अध्यापकअपनेशिष्योंकेलिएआदर्शहोतेहैं।जोकुछवेअपनेव्यक्तित्वगुणोंएवंव्यवहारकेद्वाराविद्वार्थियोंकेसामनेरखतेहैं।उसकाप्रत्यक्षऔरअप्रत्यक्षप्रभावउनपरपड़तास्वभाविकहीहै।जबहमशिक्षणऔरअधिगमकेद्वाराबालकोंकेव्यवहारमेंअपेक्षितपरिवर्तनलानेकीबातकरतेहैंतोनिसन्देहअध्यापककेव्यक्तित्व, गुणऔरउसकेद्वाराप्रदर्शितव्यवहारइसकार्यमेंसकारात्मकतथानकारात्मकभूमिकानिभानेकीपूरी-पूरीक्षमतारखतेहैं।

10. **अध्यापकद्वाराकक्षामेंस्थापितअनुषासनएवंअन्तःक्रियाकास्तरType of Discipline and Interaction Maintainded by the Teacher**अधिगमअर्जनतथाशिक्षणप्रक्रियाकीसफलताऔरअसफलताबहुतकुछइसबातपरनिर्भरकरतीहैकिऐकअध्यापकशिक्षणअधिगमपरिस्थितियोंमेंकिसप्रकारकेअनुशासनतथाअन्तःक्रियाकोबनाएरखनेमेंकामयाबहोताहै।जोअध्यापककक्षाशिक्षणएवंकार्यपरिस्थितियोंमेंजनतंत्रात्मकएवंप्रेरणादायकनेतृत्वप्रदानकरउचितअनुशासनस्थापितकरसकनेएवंबालकोकोअन्तःक्रियाकेसमुचितअवसरप्रदानकरपानेमेंसफलहोतेहैं, उनकायोगदानअधिगमएवंशिक्षणप्रक्रियामेंसदैवहीउनअध्यापकोसेश्रेष्ठहोताहैजोस्वयंकोतथापरिस्थितिजन्यकिन्हींकारणोंकीवजहसेऐसानहींकरपाते।अतःयहबातनिर्विवादसत्यहीहैकिअध्यापकद्वाराअक्षमताअधिगमएवंशिक्षणप्रक्रियाकीदिशाऔरदशातयकरनेमेंमहत्वपूर्णभूमिकानिभातीहै।

11. **अधिकसेअधिकज्ञानेन्द्रियोंकाप्रयोगUtilization of maximum number of Senses-**
ज्ञानेन्द्रियांज्ञानकाद्वारकहलातीहैं।अतःजितनीअधिकऔरजितनीअच्छीतरहसेइनज्ञानेन्द्रियोंकाउपयोगअधिगमकार्यकेलिएकियाजाताहैउतनीहीसफलताशिक्षणअधिगमकार्यमेंप्राप्तहोती

है।अतःपढ़ने-पढ़ानेमेंजहांअधिकसेअधिकज्ञानेन्द्रियोंकाउपयोगअधिगमअनुभवअर्जितकरनेमेंकियाजाताहै।जैसेवस्तुओंऔरक्रियाओंकोदेखना, उनकेबारेमेंसुनना, उन्हें स्पर्शकरनाआदि, उतनीहीअच्छीतरहसेउनकेबारेमेंज्ञानऔरकुशलताकाअर्जनकियाऔरकरायाजासकताहै।

12. **सामाजिकसंवेगात्मकवातावरणThe Socio-Emotional Climate-** शिक्षणअधिगमकेसमयजिसप्रकारकासामाजिकसंवेगात्मकवातावरणशिक्षणअधिगमकार्यकोठीकप्रकारसम्पन्नकरनेकेलिएकक्षा, विद्यालयतथाअन्यसीखनेकीपरिस्थितियोंमेंप्राप्तहोगाउतनीहीअच्छीतरहसेअधिगमशिक्षणप्रक्रियाकोसंचालितकियाजासकेगा।इसदृष्टिसेजहाँ विद्यार्थीतथाअध्यापकोंकेआपसीसम्बन्धोंमेंमधुरतापाईजातीहैतथाअन्तःप्रक्रियाहोनेकेअवसरज्यादाप्राप्तहोतेहैं।शिक्षणअधिगमप्रक्रियाकीसफलताआशावहांउतनीहीअधिकहोतीहैं।

अभ्यास प्रश्न

6. अधिगमकोप्रभावितकरनेवालेपांचकारकोंकेनामलिखिए।
7. अधिकसेअधिकज्ञानेन्द्रियोंकाप्रयोगअधिगमकोप्रभावितकरताहै। (हाँ याना)
8. _____________ज्ञानकाद्वारकहलातीहैं।

9.6 प्रशिक्षण याअधिगमस्थानान्तरण (Transfer of Learning nad Learning)

प्रशिक्षणयाअधिगमस्थानान्तरणएकमहत्वपूर्णसंप्रत्यय(Concept) हैजिसपरप्रयोगात्मकमनोवैज्ञानिकोंनेबहुतसारेशोधकियेहै।प्रशिक्षणयाअधिगमस्थानान्तरणसेतात्पर्यसेपहलेसीखेगएकौशलकावर्तमानकौशलकोसीखनेपरपड़नेवालेप्रभावसेहोताहै।शिक्षाकालक्ष्यएकपाठ्यक्रमयास्तरसेदूसरेतकयाविद्यालयवातावरणसेजीवनकेवातावरणतकलेजानाहोताहै।सीखनेकेयाप्रशिक्षणकेस्थानान्तरणसेअभिप्राय - किसीसीखीहुईक्रियायाविषयकाअन्यपरिस्थितयोंमेंउपयोगकरनेसेहै।इसेयूंभीस्पष्टकियाजासकताहैकि अर्जितज्ञानकाअन्यविषयोंतथाक्रियाओंपरप्रभावपड़ताहै।

9.7 अधिगमस्थानान्तरणकाअर्थएवंपरिभाषाएं (Meaning and Definitions of Transfer ofLearning)

स्थानान्तरणकासामान्यअर्थहैकिसीवस्तुयाव्यक्तिकोएकस्थानसेहटाकरदूसरेस्थानपररखनापरन्तुमनोविज्ञानकेक्षेत्रमेंसीखनेकाअर्थइससेएकदमअलगहोताहै,
भिन्नहोताहै।सीखनेकेसंदर्भमेंस्थानान्तरणकाअर्थहोताहैकिसीएकक्षेत्रमेंसीखेहुएज्ञानएवंकौशलकादूसरेक्षेत्रकेज्ञानअथवाकौशलकेसीखनेमेंप्रयोगहोनाइसमेंकिसीकौशलकेप्रशिक्षणका,
किसीअन्यकौशलविशेषकेप्रशिक्षणमेंपड़नेवालाप्रभावभीसम्मिलितहोताहै।क्योंकिज्ञानार्जनऔरकौशलप्रशिक्षणदोनोंसीखनेकीप्रक्रियाकेअन्तर्गतहीआतेहैं।विटेकर (1970), नेअधिगमस्थानान्तरणकोइसप्रकारपरिभाषितकियाहैअधिगमकेस्थानान्तरणसेतात्पर्यकिसीएककौशलयाविषयवस्तुकेसीखनेकाकिसीदूसरेकौशलयाविषयवस्तुकेसीखनेपरपड़नेवालेप्रभावसेहोताहै।इसपरिभाषासेयहस्पष्टहैकिसीखनेंकेस्थानान्तरणमेंपहलेसीखागयाकौशलबादमेंसीखेजानेवालेकौशलपरएकप्रभावडालताहैइसप्रभावकेस्वरूपकेआलोकमेंप्रशिक्षणस्थानान्तरणकेनिम्नलिखिततीनस्वरूपहोतेहैं-

धनात्मकस्थानान्तरण (Positive Transfer)- जबपहलेसीखेंगएकौशलयाविषयवस्तुसेनएकौशलयाविषयवस्तुकोसीखनेमेंसहायतामिलतीहै, तोइसेधनात्मकअंतरणकहतेहैं।जैसेकिसीव्यक्तिकोहिन्दीभाषासीखनेकेबादभोजपुरीभाषाकोसीखनेमेंउससेमद्दमिलतीहै, तोधनात्मकअतंरणकाउदाहरणहोगा।

ऋणात्मकस्थानान्तरण (Negative)- जबपहलेसीखेंगएकौशलयाविषयवस्तुसेनएकौशलयाविषयवस्तुकोसीखनेमेंबाधापहुंचतीहै, तोइसेऋणात्मकअंतरणकहतेहैं।जैसेकिसीव्यक्तिकोसंस्कृतभाषासीखनेकेबादअंग्रेजीभाषाकोसीखनेमें कठिनाईयाबाधामिलतीहै, तोऋणात्मकअतंरणकाउदाहरणहोगा।

शून्यात्मकअन्तरण(Zero Transfer)- जबपहलेसीखेंगएकौशलयाविषयवस्तुसेनएकौशलयाविषयवस्तुकोसीखनेपरनतोधनात्मकऔरनहीऋणात्मकहोताहै, तोइसेशून्यअन्तरणकहाजाताहै।

अंतरणकेकुछविशिष्टप्रकारोंकावर्णनमनोवैज्ञानिकोंद्वाराकियागयाहैंजिनमेंनिम्नांकितप्रमुखहैं-

1. Lateral transfer पार्श्वीयअन्तरण
2. Vertical Transfer अनुलम्बअन्तरण
3. Sequential Transfer अनुक्रियाअन्तरण
4. Horizontal transfer समस्तरअन्तरण
5. Bilateral Transfer द्विपार्श्वीयअन्तरण

1. **पार्श्वीयस्थानान्तरणLateral Transfer-** पार्श्वीयस्थानान्तरणएकऐसास्थानान्तरणहैजिसमेंसीखेगएकौशलकाअंतरणएकऐसीपरिस्थिति केसीखनेमेंहोताहैजोउसीस्तरकाहोताहै।जैसेयदिकिसीशिशुकोयहसिखलायाजाताहैकि 8-2 = 6 हैऔरघरआकरवहपहलेसेरखेआठअंडोंमेंसेदोनिकाललेनेपरयहसमझताहैकिअबउसमेंमात्र 6 हीरहेहोगेंतोयहपार्श्वीयस्थानान्तरणकाउदाहरणहोगा।
2. **अनुलम्बस्थानान्तरणVertical Transfer-** अनुलम्बस्थानान्तरणवैसेस्थानान्तरणकोकहाजाताहै।जिसमेंसीखेगयेकौशलकास्थानान्तरणउच्चस्तरकेकौशलकोसीखनेमेंहोताहै।जैसेकक्षा 10 मेंसीखेजानेवालेगणितकेज्ञानएवंकौशलकाकक्षा 11 मेंसीखेजानेवालेगणितकेज्ञानएवंकौशलकेसीखनेमेंसहायकहोना।
3. **अनुक्रियास्थानान्तरणSequential Transfer** - पाठोंकोइसक्रममेंसीखनेकेबादकिसीनएविषययानएकौशलकोसीखनेमेंपड़नेवालेप्रभावकोअनुक्रमिकसीखनाकहाजाताहै।अनुक्रमिकसीखनामेंस्थानान्तरणधनात्मकहोताहै।जैसेछात्रयदि जोड़,घटावतथागुणासीखकरभागदेनेकीप्रक्रियाकोसीखताहै।तोउसेपहलेतीनतरहकेकौशलों कोक्रममेंसीखनेसेभागदेनेकीप्रक्रियाकोसीखनेमेंइसतरहकीमद्दमिलेगी।इसप्रकारकास्थानान्तरणअनुक्रमिकस्थानान्तरणकाउदाहरणहै।
4. **समस्तरस्थानान्तरणHorizontal Transfer-** जबकिसीएकहीस्तरकीकक्षामेंकिसीक्षेत्रमेंसीखाहुआज्ञानअथवाकौशलउसीकक्षाकेकिसीदूसरेक्षेत्रमेंसीखेजानेवालेज्ञानअथवाकौशलकेसीखनेमेंसहायकहोताहै।तोइसेसमस्तरस्थान्तरणकहतेहै।जैसेकक्षा 10 मेंसीखेहुएगणितकेज्ञानएवंकौशलकाउसीकक्षाकेविज्ञानकीसंख्यात्मकसमस्याओंकेहलकरनेमेंसहायकहोना।
5. **द्वि-पक्षीयस्थानान्तरणBi- Lateral Transfer-** जबशरीरकेकिसीएकअंगद्वारासीखाहुआकोईकौशलशरीरकेदूसरेअंगद्वाराउसीकौशलकोया अन्यकिसीकौशलकोसीखनेमेंसहायकहोताहै।तोइसेद्विपक्षीयस्थान्तरणकहतेहै।जैसेदाएंहाथसे लिखनेकेकौशलकाबाएंहाथसेलिखनासीखनेमेंसहायकहोना।

9.8 अधिगमस्थानान्तरण कीपरिभाषाऐं Definitions of Transfer of Learning

कोलैस्निककेअनुसार- "स्थानान्तरण, परिस्थितिविशेषमेंसीखेहुएज्ञान, कौशलों, आदतों, अभिवृतियोंऔरअन्यअनुक्रियाओंकाकिसीअन्यपरिस्थितिमेंप्रयोगकरनाहै।

Transfer is the application or carry over of knowledge, skills, habits, attitudes and other responses from the situation in which they are intially acquired to some other situation. **W.B. Kolesnic**

सोरेंसनः-

"अधिगमस्थानान्तरणकेद्वाराव्यक्तिउससीमातकसीखताहैतबतकएकपरिस्थितिसेप्राप्तयोग्यताएंदूसरीमें सहायतादेतीहै।"

क्रोएवंक्रोः- जबअधिगमकेएकक्षेत्रमेंप्राप्तविचार, अनुभवयाकार्यकीआदत,ज्ञानतथानिपुणताकादूसरीपरिस्थितिमेंप्रयोगकियाजाताहै, तोवहअधिगमअंतरणकहलाताहै।

वाल्टरबी.के.-अतंरणसेतात्पर्यज्ञान, निपुणता, आदत,रूझानयाअन्यअनुक्रियाओंकाउसपरिस्थितिसेलेजानाहैजिसमेंवेआरम्भिकरूपसेअर्जितकीगई थी, सेदूसरीअन्यपरिस्थितिकीओरलेजानाहै।

9.9 सीखनेकेस्थान्तरणकामहत्वऔरशिक्षणोंकीभूमिका Importance Of Transfer Of Learning And Role of The Teacher

शिक्षाकेक्षेत्रमेंस्थान्तरणकाकाफीमहत्वहै।उसकीबड़ीउपयोगिताहैऔरइसतथ्यकोसामनेरखकरहीशिक्षा केकिसीस्तरकीशिक्षाकेउद्देश्यनिश्चितकिएजातेहैऔरइसीआधारपरउसकीपाठ्यचर्याकानिर्माणकियाजा ताहैऔरसाथहीऐसीशिक्षण-अधिगमविधियोंकाप्रयोगकियाजाताहै।जिनमेंपूर्वज्ञानएवंकौशलकेआधारपरनएज्ञानएवंकौशलकावि कासकियाजाताहै।अतःशिक्षकोंकेलिएयहआवश्यकहैकिवेसीखनेकेस्थान्तरणकेलिएउचितवातावरण तैयारकरेंउसकेलिएआवश्यकदशाओंकानिर्माणकरें।

1. इसकेलिएजहाँतकअनुकूलपाठ्यचर्याकेनिर्माणकाप्रश्नहै, यहकार्यतोशिक्षाआयोजकोंकाहै।परन्तुशिक्षकोंकोइतनाऔरकरनाहोताहैकिवेउसपाठ्यचर्यामें जोसार्थकएवंउपयोगीहैउससेसीखनेवालोंकोअवगतकराएंऔरइसविषयसामग्रीकोक्रमविशेष मेंसंयोजितकरेंऔरतबइसेसीखनेवालोंकेसामनेप्रस्तुतकरें।
2. शिक्षकोंकोकुछभीपढ़ाते - लिखातेसमयशिक्षार्थियोंकोअपनीसामान्यबुद्धिकेप्रयोगकेअधिकसेअधिकअवसरदेनेचाहिए। इससेउनमेंसामान्ययोग्यताकाविकासहोगाजिसकास्थानान्तरणसरलतासेकियाजासकेगा।
3. शिक्षकविद्यार्थियोंमेंसीखेहुएज्ञानएवंकौशलकेप्रयोगकीअभिवृतिकाविकासकरें।
4. शिक्षककिसीभीविषयकोपढ़ातेसमयऐसीविधियोंकाप्रयोगकरेंजिनमेंशिक्षार्थियोंकोअपनेपूर्वमें सीखेहुएज्ञानएवंकौशलोंकाप्रयोगकरनापड़े।
5. शिक्षकोंकोशिक्षार्थियोंकोअपनेपूर्वमेंसीखेज्ञानएवंकौशलोंकेप्रयोगकेस्वतन्त्रअवसरप्रदानकर नेचाहिए।
6. अध्यापककोछात्रोंमेंसोचनेतथातर्ककरनेकीआदतोंकाविकासकरनाचाहिए।
7. अध्यापककोसामान्यीकरणविधिकाप्रयोगकरनाचाहिएताकिछात्रचीजोंकासामान्यीकरणतथा अतंरणआसानीसेकरसकें।
8. अध्यापककोबच्चोंकेमानसिकस्तरकेअनुसारअध्यापनकरनाचाहिए हो।
9. सम्बन्धिततथ्योंकोजोड़ाजानाचाहिएचाहेवेकिसीभीक्षेत्रसेसम्बन्धितक्योंनहो।
10. अध्यापककोभाषाओं,सामाजिकविज्ञानोंतथाप्राकृतिकविज्ञानोंकेअन्तरसम्बन्धोंकेप्रत्येकक्षेत्र परजोरदेनाचाहिए।

अभ्यास प्रश्न

9. प्रशिक्षणकास्थानान्तरणपूर्वअनुभवोंपरनिर्भरकरताहै। (सत्य /असत्य)
10. अध्यापककोछात्रोंमेंसोचनेतथातर्ककरनेकीआदतोंकाविकासनहींकरनाचाहिए। (सत्य/ असत्य)
11. सीखनेकेस्थान्तरणकेलिएआवश्यकहै?

    (1) सामान्यबुद्धि (2) सामान्यीकरण

    (3) उचितअभिवृति (4) येसभी

12. सीखनेकेस्थान्तरणकीपरिभाषालिखो।

9.10 सारांश

सीखनाव्यवहारमेंअभ्यासयाअनुभूतिकेफलस्वरूपउत्पन्नपरिवर्तनकोकहाजाताहै।ऐसेपरिवर्तनकोसीखनाकहलानेकेलिएकुछदेरकेलिएस्थायीहोनाअनिवार्यहै।सभीप्रकारकेव्यवहारमेंपरिवर्तनकोसीखनानहींकहाजासकता।क्योंकिव्यवहारमेंपरिवर्तनथकान, दवाखानेसे,बीमारीसेयापरिपक्वतासेभीआताहै।मनुष्यकेवलअनुभवएवंप्रशिक्षणद्वाराहीनहींसीखताअपितुअनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षणऔरअध्ययनआदिअनेकविधियोंसेसीखताहै।दूसरीबातयहहैंकिवहजोकुछभीनयासीखताहैउसेबहुतदिनोंतकधारणकिएरहताहैं।औरतीसरीबातयहहैकिवहआवश्यकतापड़नेपरइससीखेहुएज्ञानएवंकौशलकाप्रयोगकरताहैऔरअपनेव्यवहारकीसहीदिशादेताहै।प्रत्येकव्यक्तिजन्मकेआरम्भसेहीसीखनाप्रारम्भकरताहैऔरजीवनपर्यन्तसीखताहीरहताहै।बालकजबप्रारम्भमेंसीखनाशुरूकरताहैतोउसकीविधियाँअनुसन्धानात्मकएवंरूक्षहोतीहै।धीरे-धीरेबालकत्रुटियोंकोदूरकरताहैऔरअपनेप्रयासोंमेंएकरूपतालानासीखताहै।जैसेहीउम्रबढ़तीहै।वहजटिलसेजटिलकार्योकोक्रमबद्धकरनासीखताहै।

9.11 शब्दावली

1. **अधिगम:**यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है।

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जे0 पी0 गिलफर्ड
2. क्रो तथा क्रो
3. "अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को अधिगम कहते हैं।
4. (ख) स्किनर
5. विकास
6. अधिगमकोप्रभावितकरनेवालेपांचकारकोंकेनामहैं-
    i. विषय सामग्री का स्वरूप
    ii. बालको का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य
    iii. परिपक्वता
    iv. सीखने की इच्छा
    v. सीखने की इच्छा

7. हाँ
8. ज्ञानेन्द्रियां
9. सत्य
10. असत्य
11. ये सभी
12. किसीएकक्षेत्रमेंसीखेहुएज्ञानएवंकौशलकादूसरेक्षेत्रकेज्ञानअथवाकौशलकेसीखनेमेंप्रयोगहोना सीखनेकेस्थान्तरण है।

9.13 संदर्भ ग्रंथ

1. आलपोर्ट, जी. डब्ल्यू: डसाइक्रोलाजिकलइन्टरप्रिटेशन, हेनरीहाँल्टन्यूर्याक
2. क्राँनवेकएल.जे. : एजूकेशनलसाइकोलाजी, हारकोर्टब्रेस, न्यूर्याक,1954
3. क्रोएल.डी. एण्डएलिसक्रो: एजूकेशनलसाइकोलाजी, अमेरिकनबुकक., न्यूर्याक
4. स्ट्राउडजेम्सवी: साइकोलाजीइनएजूकेशन, लायमैन्सग्रीनएण्डकम्पनी
5. डाँएस.एस.माथुर: शिक्षामनोविज्ञानअग्रवालपब्लिकेशन्स, आगरा
6. लालएवंजोशी: शिक्षामनोविज्ञानएवंप्रारम्भिकसाँख्यिकी, आर. लालबुकडिपोमेरठ
7. एस0 पी0 कुलश्रेष्ठ: शिक्षामनोविज्ञानआरलालबुकडिपोमेरठ
8. पी0 डी0 पाठक: शिक्षामनोविज्ञानअग्रवालप्रकाशनआगरा
9. अरूणकुमारसिंह: उच्चतरसामान्यमनोविज्ञान, मोतीलाल,बनारसीदास
10. डॉएमपी0 गुप्ता: शिक्षामनोविज्ञान, माड्रनपब्लिसरदिल्ली
11. डॉएस. केमंगल: विद्यार्थीविकासएवंशिक्षणअधिगमप्रक्रिया

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. "अधिगमयासीखनेकीसंक्रियात्मकपरिभाषाएंवैज्ञानिकोंकीक्रियाओंकेलिएसहायकहोतीहै।" विवेचनाकीजिए।
2. सीखनेसेतात्पर्यनवीनअनुभवोंकोप्राप्तकरनाहीनहींहैवरनापुरानीअनुभूतियोंकोएकत्रितकरनाहै औरप्राचीनऔरनवीनअनुभूतियोंकासंश्लेषणभीहै।जिसकेद्वाराएकनवीनसुनियोजितएवेक्रमब द्धअनुभवहमेंप्राप्तहोताहै।इसकथनकीव्याख्याकीजिएऔरबताइयेकिसीखनेकातात्पर्यक्याहै औरसीखनेकामनोविज्ञानकिसेकहतेहै।
3. प्रायःसामान्यतौरपरसीखनेकीपरिभाषाक्यादीजातीहैं? इसपरिभाषाकोदेतेहुएसीखनेकेबारेमेंअपनीधारणास्पष्टकीजिएतथायहबताइयेकिआपकेराज्य मेंहायरसकेन्डरीस्कूलमेंबालकोंकेशिक्षणमेंकिसप्रकारकापरिवर्तनहोनाआवश्यकहै।

4. सीखनेकास्वरूपक्याहैं? स्पष्टसमझाइये।शैक्षिकपरिस्थितियोंमेंतथापाठशालाकेवातावरणमेंआपसीखनेकीप्रक्रियाका किसप्रकारअध्ययनकरेगें।विस्तारपूर्वकसमझाइये।
5. इसतथ्यपरअपनेविचारस्पष्टकीजिए - बहुतसेसीखनेवालोंकेलिएसीखनेकीसीमाएंशारीरिकखण्डोंद्वारानिर्धारितनहींकीजासकतीहै। सीमाएं,ढ़ंग,सामग्रीऔरकार्यकरनेकीदशाओंद्वारानिर्धारितकीजातीहै।
6. थकानऔरवातावरणकीअवस्थाएंबालककेसीखेपरकिसप्रकारप्रभावडालतीहै।
7. स्थान्तरणकेविचारोंएवंसिद्धांतोंपरप्रकाशडालिये।
8. अधिगमस्थान्तरणकीविशेषताओंतथाअधिगमस्थान्तरणमेंअध्यापककेमहत्वकावर्णनकीजिए।

इकाई –10 सीखने के सिद्धांत Theories of Learning

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 अधिगम के सिद्धान्त
10.4 थार्नडाईक का (संबन्धवाद) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
10.5 पावलव का शास्त्रीय अनुबन्ध का सिद्धान्त
10.6 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त
10.7 शास्त्रीय एवं सक्रिय अनुबंधन में अन्तर
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भग्रन्थ
10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.1प्रस्तावना

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है।प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नये अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सिखना या अधिगम करना कहलाता है। इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पायेंगे।

10.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. थार्नडाईक के सीखने के सिद्धान्त का वर्णन कर पायेंगें।
2. अधिगम के विभिन्नसिद्धान्तों की चर्चा कर पायेंगें।

3. थॉर्नडाइक की प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धांत की व्याख्या करा पायेगें।
4. पावलोव के शास्त्रीय अनुबन्धन के सिद्धान्त की व्याख्या कर पायेंगें।
5. स्किनर के क्रिया अनुबंधन के सिद्धान्त का वर्णन कर पायेंगें।
6. विभिन्न सिद्धान्तों के शैक्षिक निहितार्थ लिख पायेंगें।

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

10.3अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के आधुनिक सिद्धान्तों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

(अ)व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)

(ब) ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियायें होती हैं। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धान्तों का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धान्तों के प्रमुख प्रवर्तकों में थोर्नडाइक, वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहॉ थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को संयोजनवाद (Connectionism) के नाम से जाना जाता है, वहॉ वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर की प्रणाली को अनुबन्धन या प्रतिबद्धता (Conditioning) का नाम दिया गया है।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्त सीखने को उस क्षेत्र में, जिसमें सीखने वाला और उसका परिवेश शामिल होता है, आये हुये परिवर्तनों तथा सीखने वाले द्वारा इस क्षेत्र के प्रत्यक्षीकरण किये जाने के रूप में देखते हैं। ये सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया में उद्देश्य (Purpose), अन्तर्दृष्टि (Insight) और सूझबूझ (Understanding) के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सिद्धान्तों के मुख्य प्रवर्तकों में वर्देमीअर (Werthemier), कोहलर (Kohler), और लेविन (Lewin) के नाम उल्लेखनीय है। इस इकाई में आप व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

10.4थार्नडाईक का (संबन्धवाद) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त

थार्नडाइक (Thorndike) को प्रयोगात्मक पशु मनोविज्ञान (experimental psychology) के क्षेत्र में एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक माना गया है। उन्होंने सीखने के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन (1898)

में अपने पीएच0डी0 शोध प्रबन्धन (Ph. D. thesis) जिसका नाम 'एनिमल इन्टेलिजेन्स'(Animal intelligence) था, में किया। टॉलमैन (Tolman, 1938) ने थार्नडाइक के इस सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि उनका यह सिद्धान्त इतना पूर्ण तथा वैज्ञानिक था कि उस समय के अन्य सभी मनोवैज्ञानिकों ने थॉर्नडाइक को अपना प्रारम्भ बिन्दु (starting point) माना था।

थॉर्नडाइक ने सीखना की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गयी है। थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।

थार्नडाइक ने उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि अनेक प्रयोग करके किया है। उनके प्रयोग बिल्ली, कुत्ता, मछली तथा बन्दर पर अधिकतर किये गये हैं। इन सभी प्रयोगों में बिल्ली पर किया गया प्रयोग काफी मशहूर है।

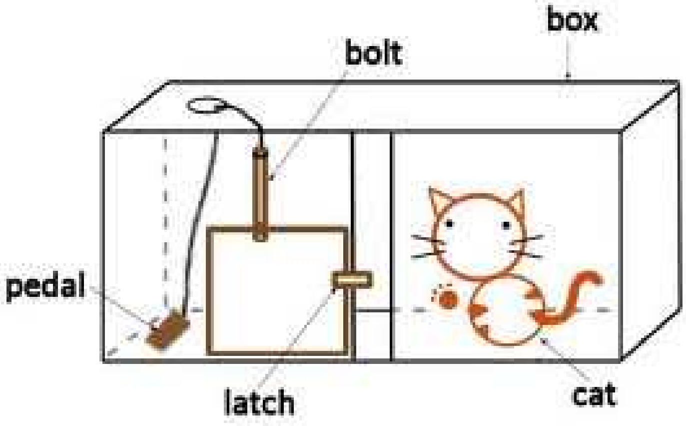

इस प्रयोग में एक भूखी बिल्ली को एक पहेली बॉक्स में बन्द कर के रखा गया। इस बॉक्स के अन्दर एक चिटकिनी (knob) लगी थी, जिसको दबाकर गिरा देने से दरवाजा खुल जाता था। दरवाजे के बाहर भोजन रख दिया गया था। चूँकि बिल्ली भूखी थी, अत: उसने दरवाजा खोलकर भोजन खाने की पूरी कोशिश करना प्रारंभ कर दी। प्रारंभ के प्रयासों (trials) में जब बिल्ली को बॉक्स के अन्दर रखा गया, तो बहुत सारे अनियमित व्यवहार जैसे उछलना, कूदना, नोचना, खसोटना आदि होते पाये गए। इसी उछल-कूद में अचानक उसका पंजा चिटकिनी पर पड़ गया जिसके दबने से दरवाजा खुल गया और बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन कर लिया। बाद के प्रयासों (trials) में बिल्ली द्वारा

किये जाने वाले अनियमित व्यवहार अपने आप कम होते गये तथा बिल्ली सही अनुक्रिया (यानी सिटकिनी दबाकर दरवाजा खोलने अनुक्रिया) को बॉक्स में रखने के तुरन्त बाद करते पायी गयी।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है:-

1. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of effect)

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है:-

1. **अभ्यास का नियम (Law of exercise) :-** यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है (Practice makes man perfect) । हिलगार्ड तथा बॉअर (Hilgard & Bower, 1975) ने इस नियम को परिभाषित करते हुए कहा है, " अभयास नियम यह बतलाता है कि अभ्यास करने से (उद्दीपक तथा अनुक्रिया का) संबंध मजबूत होता है (उपयोग नियम) तथा अभ्यास रोक देने से संबंध कमजोर पड़ जाता है या विस्मरण हो जाता है (अनुपयोग नियम) इस व्याख्या से बिलकुल ही यह स्पष्ट है कि जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं। इसे थॉर्नडाइक ने उपयोग का नियम (law of use) कहा है। दूसरी तरफ जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं। इसे इन्होंने अनुपयोग का नियम (law of disuse) कहा है।

2. **तत्परता का नियम (Law of readiness) :-** इस नियम को थॉर्नडाइक ने एक गौण नियम माना है और कहा है कि इस नियम द्वारा हमें सिर्फ यह पता चलता है कि सीखने वाले व्यक्ति किन-किन परिस्थितियों में संतुष्ट होते हैं या उसमें खीझ उत्पन्न होती है। उन्होंने इस तरह की निम्नांकित तीन परिस्थितियों का वर्णन किया है-

    i. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य करने दिया जाता है, तो इससे उसमें संतोष होता है।
    ii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है परन्तु उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है, तो इससे उसमें खीझ (annoyance) होती है।
    iii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर नहीं रहता है परन्तु उसे वह कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो इससे भी व्यक्ति में खीझ (annoyance) होती है।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि संतोष या खीझ होना व्यक्ति के तत्परता (readiness) की अवस्था पर निर्भर करता है।

3. **प्रभाव नियम (Law of effect):-** थार्नडाइक के सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है। इसकी महत्ता को ध्यान में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसके सिद्धान्त को प्रभाव नियम सिद्धान्त (Law of effect theory) भी कहा है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। किसी कार्य या अनुक्रिया का प्रभाव व्यक्ति में या तो संतोषजनक (satisfying) होता है या खीझ उत्पन्न करने वाला (annoying) होता है।प्रभाव संतोषजनक होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को सीख लेता है तथा खीझ उत्पन्न करने वाला होने पर व्यक्ति उसी अनुक्रिया को दोहराना नहीं चाहता है। फलत: उसे वह भूल जाता है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि प्रभाव नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया को इसलिए सीख लेता है क्योंकि व्यक्ति में उस अनुक्रिया को करने के बाद संतोषजनक प्रभाव (satisfying effect) होता है।

इन प्रमुख नियमों के अलावा भी थॉर्नडाइक ने सहायक नियमों (subordinate laws) का भी प्रतिपादन किया परन्तु ये सभी नियम बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो पाये क्योंकि वे स्पष्ट रूप से प्रमुख नियमों से ही संबंधित थे। संक्षेप में, इन सहायक नियमों का वर्णन इस प्रकार है:-

i. **बहुक्रिया (Multiple response):-** इस नियम के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में प्राणी अनेक अनुक्रिया (response) करता है जिसमें से प्राणी उन अनुक्रिया को सीख लेता है जिससे उसे सफलता मिलती है।

ii. **तत्परता या मनोवृत्ति (Set or attitude):-** तत्परता या मनोवृत्ति से इस बात का निर्धारण होता है कि प्राणी किस अनुक्रिया को करेगा, किस अनुक्रिया को करने से कम संतुष्टि तथा किस अनुक्रिया को करने से अधिक संतुष्टि आदि मिलेगी।

iii. **सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy):-** इस नियम के अनुसार प्राणी किसी नयी परिस्थिति में वैसी ही अनुक्रिया को करता है जो उसके गत अनुभव या पहले सीखी गयी अनुक्रिया के सदृश होता है।

iv. **साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting):-** इन नियम के अनुसार कोई अनुक्रिया जिसके करने की क्षमता व्यक्ति में है, एक नये उद्दीपक (stimulus) से भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक ही अनुक्रिया को लगातार एक ही परिस्थिति में कुछ परिवर्तन के बीच उत्पन्न किया जाता है तो अन्त में वही अनुक्रिया एक बिलकुल ही नये उद्दीपक से भी उत्पन्न हो जाती है।

शैक्षिक निहितार्थ

1. अध्यापक को इस बात को समझने का प्रयत्न करना चाहिये कि उसके विधार्थी को कौन-कौन सी बाते याद रखनी चाहिये। जिन बातो को याद रखना है उनसे सम्बन्धित उद्दिपन और अनुक्रियाओ के सहयोग को पुनरावृति, अभ्यास कार्य और प्रशंसा तथा पुरस्कार

आदि की सहायता से लेते हुये अधिक दृण बनाने का प्रयत्न करना चाहियें। दूसरी ओर जिन बातो को भुलाना है उनको कष्ट प्रद परिणामो द्वारा कमजोर बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

2. सीखने से पहले बच्चे को सीखने के लिये तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है जिस बात को बच्चा सीखना चाहता है उसमे उसकी पर्याप्त रूचि तथा अभिरूचि का होना आवश्यक है। अतः बच्चे को सीखने के लिये सही प्रकार से अभिप्रेरित किया जाना चाहिये।
3. अध्यापक को अपने विधार्थीयो को पूर्व ज्ञान और अनुभवो का समुचित उपयोग करना चाहिये। एक परिस्थिति में सीखे गये ज्ञान को दूसरी समान परिस्थितियों मे ंपूरी तरह उपयोग में लाने का प्रयत्न करना चाहियें।
4. बच्चे को स्वयं कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। उसके द्वारा हर सम्भव प्रयत्न करते हुये तथा अपनी त्रृटियो को सुधारते हुये समस्या का सही समाधान ढूढने के लिये प्रेरित करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न

1. सामान्य अर्थ में 'सीखना' _______ में परिवर्तन को कहा जाता है।
2. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धांत को _____________ के नाम से जाना जाता है।
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम लिखिए।
4. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम लिखिए।
5. जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____________ कहा है।
6. जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____________ कहा है।

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है। (Conditioning is the process by which conditioned response are learned-Hilgard et.al., 1975)

10.5पावलव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त , प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन (Classical or Pavlovian Conditioning)

आई0पी0 पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर- वैज्ञानिक (physiologist) थे जिन्होंने अपनी जीवन-वृत्ति (career) हृदय के कार्यों के अध्ययन से शुरू की परन्तु बाद में उन्होंने पाचन क्रिया

(digestion) के दैहिकी (physiology) का विशेष रूप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन इतना महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ कि 1904 में इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) भी दिया गया। बिलकुल ही संयोग से (incidentally) पैवलव ने इन अध्ययनों के दौरान लारमय अनुबन्धन (salivary conditioning) की घटना (phenomenon) का अध्ययन किया और इससे संबंधित सीखने के एक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया जिसे अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त (conditioned response theory) कहा जाता है।

पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पैवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकल अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पैवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पैवलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है। जैसे गर्म बर्तन को छूते ही हाथ खींच लेना तथा भूखा होने पर भोजन देखकर मुँह में लार आना, कुछ ऐसी अनुक्रियाओं (responses) के उदाहरण है। जब इस स्वाभाविक एवं उपयुक्त उद्दीपक के ठीक कुछ सेकेण्ड पहले एक दूसरा तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास (trials) के बाद उस तटस्थ उद्दीपक द्वारा ही स्वभाविक अनुक्रिया (लार आना या हाथ खींच लेना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी) उत्पन्न होने लगती है। जैसे, एक भूखे व्यक्ति के सामने घंटी बजाकर बार-बार भोजन दें तो कुछ प्रयासों के बाद मात्र घंटी बजते ही उस व्यक्ति के मुँह में लार आना प्रारंभ हो जायेगा। पैवलव के तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना) के बीच स्थापित इस नये साहचर्य को सीखने की संज्ञा दिया है।

पैवलव का प्रयोग

संक्षेप में प्रयोग इस प्रकार था – एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि- नियंत्रित प्रयोगशाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खड़ा कर दिया गया। कुत्ते के सामने भोजन लाया जाता था और चूंकि कुत्ता भूखा था इसलिए भोजन देखकर उसके मुँह में लार आ जाती थी। कुछ प्रयासों (trials) के बाद भोजन देने के 4 या 5 सेकेण्ड् अर्थात् 400 या 500 मिलीसेकेण्ड पहले एक घंटी बजायी जाती थी। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक दोहरायी गयी तो यह देखा गया कि बिना भोजन आये ही मात्र घंटी की आवज पर कुत्ते के मुँह से लार निकलना शुरू हो गया। पैवलव के अनुसार कुत्ता घंटी की आवज पर लार के स्राव करने की क्रिया को सीख लिया है। उनके अनुसार घंटी की आवाज (उद्दीपक) तथा

लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य (association) कायम हो गया जिसे अनुबन्धन (conditioning) की संज्ञा दी गयी।

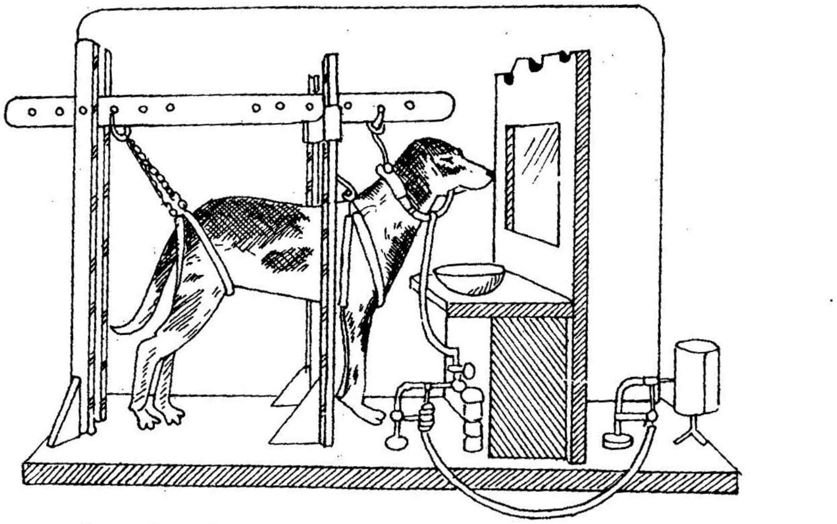

चित्र —प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का प्रायोगिक प्रारूप : पैवलाव (1927) पर आधारित

स्वाभाविक उद्दीपक (Unconditional or Unconditioned stimulus: UCS) :- स्वाभाविक उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण (training) के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) है जो लार स्राव करने की अनुक्रिया बिना किसी प्रशिक्षण का ही करता है।

स्वाभाविक अनुक्रिया (Unconditioned response: UCR:-स्वाभाविक अनुक्रिया वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जो स्वाभाविक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन देखकर कुत्ते के मुँह में लार का स्राव का होना एक स्वाभाविक अनुक्रिया है।

अनुबन्धित उद्दीपक (Conditional stimulus or Conditioned stimulus: CS:- अनुबन्धित उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जिसे यदि स्वाभाविक उद्दीपक के साथ या उससे कुछ सेकेण्ड पहले लगातार कुछ प्रयासों (trials) तक दिया जाता है, तो वह उद्दीपक स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया उत्पन्न करना प्रारंभ कर देता है। किसी भी उद्दीपक को अनुबन्धित उद्दीपक कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राणी की ज्ञानेन्द्रिय के पहुँच के भीतर हो, यानी जिसे देखा जा सके, सुना जा सके, स्पर्श किया जा सके। पैवलव के प्रयोग में घंटी की आवाज एक अनुबन्धित उद्दीपक (conditioned stimulus) का उदाहरण है।

अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned response: CR) :-जब अनुबन्धित उद्दीपक (CS) स्वाभाविक उद्दीपक (unconditioned stimulus) के साथ संयोजित (paired) किया जाता है तो कुछ प्रयायों के बाद अनुबंधित उद्दीपक (CS) के प्रति प्राणी ठीक वैसी ही अनुक्रिया करता है जैसा कि वह स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) के प्रति करता था। इस तरह की अनुक्रिया को अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) कहा जाता है। पैवलव के प्रयोग में (बिना भोजन देखे ही) घंटी की आवाज सुनने पर जो लार के स्राव की अनुक्रिया होती थी, वह अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) का उदाहरण है।

उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus generalization) :- सीखने के प्रारंभ के प्रयासों (trials) में ऐसा देखा गया है कि सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) के प्रति ही प्राणी अनुक्रिया नहीं करता है बल्कि उससे मिलते-जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी उसी ढंग से अनुक्रिया करता है। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है।

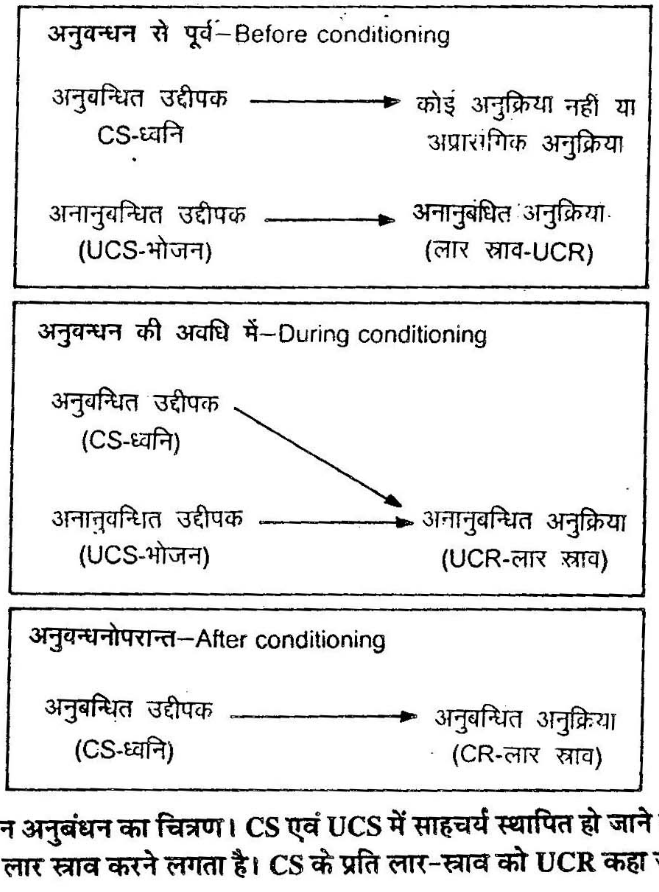

चित्र —प्राचीन अनुबंधन का चित्रण। CS एवं UCS में साहचर्य स्थापित हो जाने पर प्रयोज्य CS के प्रति भी लार स्राव करने लगता है। CS के प्रति लार-स्राव को UCR कहा जाता है।

विभेदन (Discrimination):-विभेदन की घटना (phenomenon) उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) के ठीक विपरित घटना है। जैसे-जैसे सीखने के लिए दिये जाने वाले प्रयासों (trial) की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे प्राणी मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) तथा अन्य समान उद्दीपकों (similar stimuli) के बीच स्पष्ट अन्तर या विभेद कर लेता है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणी सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक के प्रति ही अनुक्रिया करता है, अन्य समान उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। इसे ही विभेदन (discrimination) की संज्ञा दी जाती है।

विलोपन(Extinction) - पैवलव ने अपने प्रयोग में पाया कि प्राणी (organism) में अनुबन्धन (conditioning) उत्पन्न होने के बाद जब सिर्फ CS (घंटी) दिया जाता है और UCS (भोजन) नहीं दिया जाता है और इस प्रक्रिया को लगातार कई प्रयासों (trials) तक दोहराया जाता है तो धीरे-धीरे सीखी गयी अनुक्रिया की शक्ति कम होने लगती है। दूसरे शब्दों में कुत्ता धीरे-धीरे घंटी की आवाज पर लार का स्राव कम करते जाता है। अन्त में, एक ऐसा भी प्रयास (trials) आता है जहॅा घंटी बजती है परन्तु लार का स्राव बिलकुल ही नहीं होता है। पैवलव ने इस तरह की घटना (phenomenon) को विलोपन (extinction) की संज्ञा दी है।

स्वत:पुनर्लाभ(Spontaneous Recovery)-विलोपन से ही संबंधित एक दूसरी घटना (phenomenon) है जिस पर भी मनोवैज्ञानिकों ने अधिक बल डाला है और वह है स्वत: पुनर्लाभ (spontaneous recovery) की घटना। पैवलव तथा उनके शिष्यों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में पाया है कि जब किसी सीखी गयी अनुक्रिया का आंशिक रूप से विलोपन (partial extinction) हो जाता है और उसके कुछ समय बीतने के बाद यदि पुन: CS (घंटी) दिया जाता है, तो प्राणी (कुत्ता) फिर से CR (लार का स्राव) करते पाया जाता है हालांकि ऐसी परिस्थिति में किया गया लार स्राव की मात्रा पहले के समान अधिक नहीं होती है। इस तरह से स्वत: पुनर्लाभ में हम पाते हैं कि विलोपन के कुछ समय के बाद CS देने पर विलोपित CR अपने आप पुन: प्राणी द्वारा किया जाता है।

अभ्यासप्रश्न

7. आई0पी0 पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी ______________ थे।
8. पैवलव द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को ______________कहा जाता है।
9. पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार_____________ को माना है

10. वह उद्दीपक जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है ____________ कहा जाता है।

10.6 स्किनर का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Theory of Operant Conditioning)या नैमित्तिक अनुबंधन (Instrumental Conditioning)

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन भी कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है। प्राचीन अनुबंधन में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए सम्बन्धित उद्दीपक पहले प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टादायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसे नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे संक्रियात्मक या क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)। पोस्टमैन एवं इगन (1967) ने भी लिखा है कि नैमित्तिक अनुबंधन में धनात्मक पुनर्बलन (S+) का प्राप्त होना या नकारात्मक पुनर्बलन (S-) से बचना इस बात पर निर्भर (Contingent) करता है कि किसी अधिगम परिस्थिति में प्रयोज्य कैसा व्यवहार (उचित/अनुचित) करता है।

स्किनर का प्रयोग(Skinner's Experiment)

चूहों पर प्रयोग करने के लिए उन्होंने एक विशेष बक्से के आकार का एक यनत्र बनाया जिसे उन्होंनेक्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष (Operant conditioning) की संज्ञा दी, लेकिन बाद में इसको स्किनर बक्स (Skinner Box) कहा गया। वास्तव में थार्नडाईक के द्वारा प्रयुक्त पहेली पिंजरा (Rezze Box) का एक सुधरा और विकसित रूप था। स्किनर बक्श के अन्दर जालीदार फर्श (Grid flood) प्रकाशव ध्वनि व्यवस्था (Light and Sound Arrangement) लीवर (Lever) तथा भोजन तश्तरी (Food Cup) होता है।

स्किनर के लीवरबक्स में लीवर को दबाने पर प्रकाश या किसी विशेष आवाज होने के साथ-साथ भोज-तश्तरी में थोड़ा-सा भाजन आ जाता है। प्रयोग के अवलोकनों को लिपिबद्ध करने के लिए लीवरका सम्बन्ध एक ऐसी लेखन व्यवस्था (Recoding System) में रहता है जो प्रयोगकेबीच में

समय के साथ-साथ लीवर दबाने की आवृत्ति की संचयी ग्राफ (Cumulative Graph) के रूप में अंकित करती रहती है।

प्रयोग हेतु स्किनर ने एक भूखे चूहे को स्किनर बॉक्स में बन्द कर दिया। प्रारम्भ में चूहाबॉक्स में इधर-उधर घूमता रहा तथा उछल-कूद करता है। इसी बीच में लीवर दब गया, घण्टी की आवाज हूई और खाना तश्तरी में आ गया। चूहा तुरन्त भोजन को नहीं देख पाता है लेकिन बाद में देखकर खा लेताहै। इसी तरह कई प्रयासों के उपरान्त वह लीवर दबाकर भोजन गिराना सीख जाता है। इस प्रयोग में चूहा लीवर दबाने के लिए स्वतन्त्र होता है वह जितनी बार लीवर दबाएगा घण्टी की आवज होगी और भोजन तश्तरी में गिर जाएगा। स्किनर ने भोजन प्राप्त करने के बाद से समय अन्तराल में लीवर दबाने के चूहे के व्यवहार का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि भोजन रूपी पुनर्बलन (Reinforcement) चूहे को लीवर दबाने के लिए प्रेरित करता है एवं पुनर्बलन के फलस्वरूप चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना सीख जाता है। अर्थात क्रिया प्रसूत (Operant Response) के बाद पुनर्बलित उद्दीपक (Reinforcement Stimulus) दिया जाता है तो प्राणी उसे बार-बार दोहराता है और इस प्रकार से मिले पुनर्बलन से सीखने में स्थायित्व आ जाता है।

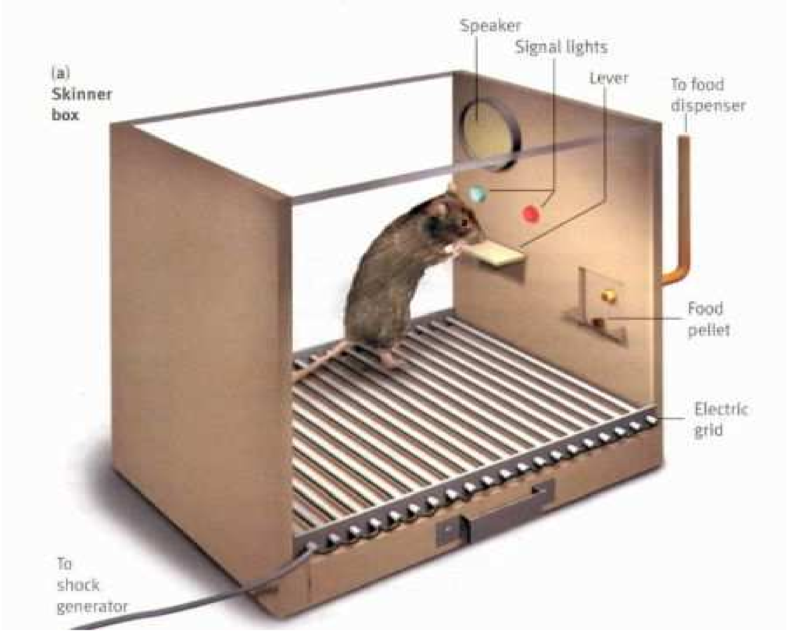

सक्रिय अनुबंधन में पुनर्बलन (Reinforcement in Operant Conditioning)

नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। जैसे-उचित या सही व्यवहार (अनुक्रिया) किये जाने पर धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) की आपूर्ति की जाती है या अनुचित व्यवहार किये जाने पर नकारात्मक उद्दीपक (दण्ड) का उपयोग किया जाता है ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)** - कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है। जैसे-अच्छे अंक प्राप्त करना। यह सम्बन्धित व्यवहार के प्रदर्शन की संभावना में वृद्धि करता है।
2. **नकारात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement)** - किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे उचित व्यवहार के घटित होने की संभावना बढ़ती है। जैसे-शरारत कर रहे किसी बच्चे को तब जाने देना जब वह नोक-झोंक बन्द कर दे।
3. **धनात्मक दण्ड (Positive Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना। जैसे-परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर छात्रा की प्रशंसा न करना या निन्दा करना। इससे अनुचित व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना घटती है।
4. **नकारात्मक दण्ड (Negative Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे अनुचित व्यवहार की संभावना घटती है। जैसे-उदण्ड व्यवहार कर रहे बालक को टीवी देखने से रोक देना।

पुनर्बलन अनुसूची (Schedule of Reinforcement)

पुनर्बलन की आपूर्ति कई रूपों में की जा सकती है।

1. **स्थिर अनुपात सूची (FixedRatioSchedule)** - निश्चित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार देना।
2. **परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची (VariableRatioSchedule)** - भिन्न-भिन्न संख्या में अनुक्रियाएँ करने पर पुरस्कार देना।
3. **स्थिर अन्तराल अनुसूची (FixedIntervalSchedule)** - एक निश्चित अन्तराल पर पुरस्कार की आपूर्ति करना।
4. **परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची (VariableIntervalSchedule)** - भिन्न-भिन्न अन्तरालों पर पुनर्बलन या पुरस्कार की आपूर्ति करना।

10.7प्राचीन एवं सक्रिय अनुबंधन में अन्तर

दोनों विधियों में पाये जाने वाले अन्तर इस प्रकार हैं –

प्राचीन अनुबंधन	नैमित्तिक अनुबंधन
1. इसके द्वारा सरल व्यवहारों का ही अधिगम होता है। 2. इसमें प्राणी को दो उद्दीपकों के बीच साहर्च सीखना पड़ता है (जैसे, प्रकाश एवं भोजन में सम्बन्ध सीखना)। अतः इसे उद्दीपक प्रकार (S-type) का सीखना कहते हैं। 3. प्राचीन अनुबंधन में उद्दीपकों के बीच सान्निध्य (Contiguity) का प्रभाव साहचर्य पर पड़ता है। अर्थात्, समयकारक (UCS CS का अन्तराल) का इसमें विशेष महत्व है। 4. प्राचीन अनुबंधन में व्यवहार उत्पन्न होने के लिए उद्दीपक पहले दिया जाता है। इसे प्रतिकृत व्यवहार कहते हैं। 5. प्राचीन अनुबंधन में अनैच्छिक क्रियाओं (Involuntary actions) का ही अधिगम किया जाता हैं । इस पर स्वायत तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है (जैसे, लार स्राव)। 6. यदि प्रत्येक प्रयास में पुरस्कार न दिया जाय तो अनुक्रिया का अनुबंधन कठिन हो जाता है।	1. इसके द्वारा जटिल व्यवहारों का भी अधिगम किया जा सकता है। 2. इसमें उद्दीपक तथा अनुक्रिया में साहचर्य सीखा जाता है। अतः इसे अनुक्रिया-प्रकार (R-type) का अधिगम कहा जाता है। 3. नैमित्तिक अनुबंधन में प्रभाव का नियम कार्य करता है। जैसे, अनुक्रिया करने का पुरस्कार प्राप्त होने पर उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध दृढ़ होता है। 4. नैमित्तिक अनुबंधन में प्राणी को स्वयं उचित अनुक्रिया करके पुनर्बलन प्राप्त करना होता है। इसे घटित (Emitted) या संक्रियात्मक (Operant) व्यवहार कहते हैं। 5. नैमित्तिक अनुबंधन में ऐच्छिक क्रियाओं का अधिगम होता है। इन पर केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) का नियंत्रण रहता है। 6. नैमित्तिक अनुबंधन में सतत के स्थान पर आंशिक पुनर्बलन से भी सरलतापूर्वक अधिगम होता है।

अभ्यासप्रश्न

11. नैमित्तिक अनुबंधन में _________________ की विशेष भूमिका होती है।

12. कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्राप्त होता है_________________ कहलाता है।
13. किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना _________________ कहलाता है।
14. स्किनर द्वारा दी गयी पुनर्बलन अनुसूची के नाम लिखिए।

10.8सारांश

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

थॉर्नडाइक ने सीखना की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गयी है।

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है।

पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पैवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को क्लासिकी अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकी अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पैवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था। स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

10.9शब्दावली

1. **अधिगम:**यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रत्युत्तर एक प्राकृतिक या सामान्य प्रत्युत्त है।
2. **प्राचीन अनुबंधन:**उत्तेजना और अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करने की प्रथम विधि प्राचीन अनुबंधन है। यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसमें एक स्वाभाविक एवं एक तटस्थ

उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक के प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था।

3. **नैमित्तिक अनुबंधन:**नैमित्तिक अनुबंधन वह कोई भी सीखना है, जिसमें अनुक्रिया अवलम्बित पुनर्बलन पर आधारित हो तथा जिसमें प्रयोगात्मक रूप से परिभाषित विकल्पों का चयन सम्मिलित न हो।
4. **पुरस्कार प्रशिक्षण:**पुरस्कार प्रशिक्षण से तात्पर्य है, उचित या शुद्ध अनुक्रिया करके पुरस्कार या धनात्मक पुनर्बलन प्राप्त करना।
5. **पुनर्बलन:** ऐसी कोई वस्तु, कारक या उद्दीपक है जिसके प्रयुक्त किये जाने पर प्रक्रिया की सम्भाव्यता प्रभावित होती है।
6. **धनात्मक पुनर्बलन:**कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है।
7. **नकारात्मक पुनर्बलन:**किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
8. **धनात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना।
9. **नकारात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
10. **विलोप:**किसी सीखी हुयी अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है।
11. **स्वतः पुनरावर्तन:**अनुबंध के प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाय तो अनुबंधित अनुक्रिया की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते हैं।
12. **सामान्यीकरण:**उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होने सामन्यीकरण कहा जाता है।
13. **विभेदन:**दिये गये उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहलाता है।

10.10अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

1. व्यवहार
2. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम हैं-
   i. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
   ii. तत्परता का नियम (Law of readiness)
   iii. प्रभाव का नियम (Law of effect)
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम हैं-
   i. बहुक्रिया (Multiple response)

ii. तत्परता या मनोवृत्ति(Set or attitude)
iii. सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy)
iv. साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting)

4. थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।
5. उपयोग का नियम
6. अनुपयोग का नियम
7. शरीर- वैज्ञानिक
8. अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त
9. अनुबन्धन
10. स्वाभाविक उद्दीपक
11. प्रबलनों
12. धनात्मक पुनर्बलन
13. नकारात्मक दण्ड
14. स्किनर द्वारा दी गयी पुनर्बलन अनुसूची के नाम निम्न हैं-

स्थिर अनुपात सूची ,परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची ,स्थिर अन्तराल अनुसूची ,परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची

10.11सन्दर्भग्रन्थ

1. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निगं प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
4. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

10.12निबंधात्मक प्रश्न

1. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
2. प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन का वर्णन कीजिए।

4. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका का वर्णन कीजिए।
5. प्राचीन अनुबंधन क्या है? प्राचीन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 11 अभिप्रेरणाMotivation

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 अभिप्रेरणा: अवधारणा एवं परिभाषाऐं
11.4 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाऐं
11.5 अभिप्रेरणा की प्रकृति
11.6 अभिप्रेरणा के घटक
11.7 अभिप्रेरणा के प्रकार
11.8 अभिप्रेरणा और अधिगम
11.9 अधिगम में अभिप्रेरणा का स्थान
11.10 विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा को बढाने की विधियाँ
11.11 सारांश
11.12 शब्दावली
11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.14 सन्दर्भ ग्रंथ
11.15 निबंधात्मकप्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि अधिगम क्या है एवं मनुष्य कैसे सीखता है? व्यक्ति किन्हीं विशेष व्यवहारों को अधिक सहजता तथा शीघ्रता से क्यों करता है? यह मनोवैज्ञानिकों के लिए सदैव ही एक चुनौती भरा प्रश्न रहा है। मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने मूल प्रवृत्तियों के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार को स्पष्ट करने का प्रयास किया था। परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक

मूल प्रवृत्तियों को व्यवहार का कारण स्वीकार नहीं करते हैं। इनके अनुसार प्राणी के विभिन्न व्यवहारों को संचालित करने वाली मुख्य शक्ति अभिप्रेरणा है। इसलिए अभिप्रेरणा के प्रत्यय का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। अधिगम में अभिप्रेरणा का विशेष महत्व है इस इकाई में आप अभिप्रेरणा उसकी परिभाषा एवं बालक को अधिगम के लिए अभिप्रेरित करने की विधियों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप अधिगम में अभिप्रेरणा के अर्थ एवं महत्व को समझा सकेगें।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- अभिप्रेरणा की अवधारणा, अर्थ को बता सकेगें।
- अभिप्रेरणा की परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
- अभ्रिप्रेरकों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- अभिप्रेरणा के घटकों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिप्रेरणा के प्रकार एवं शिक्षा और अधिगम में अभिप्रेरणा प्रदान करने की विधियाँ को समझा सकेगें।

11.3 अभिप्रेरणा: अवधारणा एवं परिभाषाऐं

मनुष्य स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है। वह सदा ही किसी-न-किसी कार्य में लगा रहता है और कोई-न-कोई व्यवहार करता रहता है। बिना प्रयोजन के वह कोई कार्य या व्यवहार नहीं करता। उसके कार्य का उद्देश्य किसी लक्ष्य विशेष की पूर्ति करना होता है। उदाहरणार्थ- एक अच्छा विद्यार्थी बड़े उत्साह एवं लगन से अध्ययन करता है, जबकि दूसरा अध्ययन की ओर से उदासीन रहता है। इसका क्या कारण है? इसी प्रकार प्रश्न उठता है- हम भोजन क्यों करते हैं? अर्थोपार्जन क्यों करते हैं और क्यों पढ़ते-लिखते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के कार्य और व्यवहार को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक शक्तियाँ हैं जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में कार्य या व्यवहार करने की अभिप्रेरणा प्रदान करती हैं।

11.4 अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषायें

अंग्रेजी भाषा के शब्द Motivation की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के Motum शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है Move, Motor तथा Motion। अभिप्रेरणा के साधारण और शाब्दिक अर्थ के अनुसार हम किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते हैं, जिसके कारण व्यक्ति कोई प्रतिक्रिया या व्यवहार करता है। इस प्रकार की उत्तेजना आन्तरिक या बाह्य दोनों हो सकती है। किन्तु मनौवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरणा एक मानसिक प्रक्रिया है या एक आनतरिक शक्ति है, जिसमें व्यक्ति अपने अन्दर से किसी कार्य को करने के लिए अभिप्रेरित होता है। इस प्रकार अभिप्रेरणा को प्राणी के शरीर यन्त्र की चालक शक्ति कहा जाता है, जो व्यक्ति को व्यवहार करने के लिए प्रेरणा देती है।

अभिप्रेरणा शब्द के मनोवैज्ञानिक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं-

1. लावेल के अनुसार- ''अभिप्रेरणा एक ऐसी मनोवैज्ञानिक या आंतरिक प्रक्रिया है जो किसी आवश्यकता की उपस्थिति में उत्पन्न होती है। यह ऐसी क्रिया की ओर गतिशील होती है जो उस आवश्यकता को सन्तुष्ट करेगी।''
2. गुड के अनुसार- ''प्रेरणा कार्य को आरम्भ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।''
3. पी0टी0 यंग के अनुसार- ''प्रेरणा व्यवहार को जाग्रत करने, क्रिया के विकास को सम्पोषित करने और क्रिया के तरीकों को नियमित करने की प्रक्रिया है।''
4. बनार्ड के अनुसार- ''अभिप्रेरणा द्वारा उन विधियों का विकास किया जाता है जो व्यवहार के पहलुओं को प्रभावित करती है।''
5. ''अभिप्रेरणावह प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक ऊर्जाएँ अथवा आवश्यकताएँ उसके पर्यावरण में उपस्थित विभिन्न आदर्शोन्मुख लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है।''

उपर्युक्तपरिभाषाओं का विश्लेषण करने पर अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें स्पष्ट होती है।

1. अभिप्रेरणा एक मनो-शारीरिक या आंतरिक प्रक्रिया है।
2. अभिप्रेरित क्रिया किसी आवश्यकता के कारण उत्पन्न होती है।
3. अभिप्रेरित प्रक्रिया किसी खास क्रिया को करने या दिशा की ओर ले जाती है।
4. यह क्रिया उद्देश्य की प्राप्ति तक जारी रहती है।

11.5 अभिप्रेरणा की प्रकृति

अभिप्रेरणा की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. अभिप्रेरणा प्रक्रिया एवं परिणाम दोनों है।

2. प्रक्रिया रूप में अभिप्रेरणा व्यक्ति के अंदर एक ऐसी शक्ति अथवा ऊर्जा उत्पन्न करने की प्रक्रिया है जो व्यक्ति को किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य विशेष करने की ओर प्रवृत्त करती है और परिणाम रूप में यह वह आन्तरिक शक्ति अथवा ऊर्जा है जो व्यक्ति को किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य विशेष करने की ओर प्रवृत्त करती है।
3. अभिप्रेरणा का जन्म किसी न किसी आवश्यकता से होता है।
4. अभिप्रेरणा एक प्रबल भावात्मक उत्तेजना की स्थिति होती है जिसके कारण व्यक्ति व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक तनाव उत्पन्न होता है जिसे कम करने के लिये वह क्रियाशील होता है।
5. अभिप्रेरणा व्यक्ति को तब तक क्रियाशील रखती है जब तक कि उद्देश्य प्राप्ति नहीं हो जाती है।
6. अभिप्रेरणा व्यक्ति को रूचि के अभाव में भी क्रियाशील रखती हैं- जैसे-यदि कोई छात्र इंजीनियर बनने के लिये अभिप्रेरित हो और उसकी गणित में रूचि न हो तो भी वह गणित की समस्याओं को हल करने में क्रियाशील रहेगा व धीरे-धीरे उसकी रूचि भी जाग्रत हो जाती है।
7. अभिप्रेरणा को उत्पन्न करने वाले कारकों को मनोवैज्ञानिक भाषा में अभिप्रेरक कहते हैं।
8. अभिप्रेरकों को सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- आन्तरिक और बाह्या।
9. व्यक्ति चाहे आन्तरिक अभिप्रेरकों से अभिप्रेरित हो और चाहे बाह्य अभिप्रेरकों से, इनसे उत्पन्न अभिप्रेरणा सदैव आन्तरिक होती है।

11.6 अभिप्रेरणा के घटक

अभिप्रेरणा के प्रत्यय की चर्चा के दौरान प्रायः आवश्यकता, अन्तर्नोद या चालक प्रोत्साहन या प्रलोभन तथा अभिप्रेरक शब्दों का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। इन चारों को अभिप्रेरणा के संघटक अथवा कारक अथवा स्रोत के नाम से भी प्रायः संबोधित किया जाता है। अतः इन चारों प्रत्ययों की संक्षेप में चर्चा करना उचित ही प्रतीत होता है।

i. **आवश्यकता-** आवश्यकता वास्तव में दैहिक असंतुलन अथवा कमी की ओर संकेत करती है। प्रत्येक प्राणी की अपनी कुछ मूलभूत जैविकीय तथा मनो-सामाजिक आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति न होने अथवा जिनके अभाव में ये आवश्यकताएं व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। भोजन की आवश्यकता इसलिए होती है क्योंकि भोजन की कमी से शरीर में तनाव उत्पन्न हो जाता है। प्राणी भोजन की खोज के लिए क्रियाशील होता है तथा भोजन की प्राप्ति पर पूर्ववत सामान्य स्थिति में आ जाता है। भोजन, जल, हवा आराम, मलमूत्र विसर्जन, आदि कुछ प्रमुख जैविकीय आवश्यकतायें हैं तथा सुरक्षा, स्नेह,

सम्मान, सम्प्राप्ति, सामाजिक स्वीकृति, सान्निध्य, अभिव्यक्ति आदि कुछ प्रमुख मनो-सामाजिक आवश्यकताएं हैं।

ii. **अन्तर्नोद**- अन्तर्नोद को चालक भी कहते हैं अन्तर्नोद आवश्यकताओं पर आधारित प्रत्यय है। प्राणी की आवश्यकतायें अन्तर्नोद को जन्म देती है। अन्तर्नोद किसी आवश्यकता को पूरी करने या दूर करने के लिए व्यवहार अथवा क्रिया करने के लिए क्रियाशील करता है। आवश्यकता मूलतः शारीरिक होती है, जबकि अन्तर्नोद व्यवहार से संबंधित रहता है। जैसे-भोजन निःसन्देह भूखे प्राणी की एक ऐसी दैहिक आवश्यकता है जो उसमें भूख अन्तर्नोद को जन्म देती है तथा यह भूख अन्तर्नोद प्राणी को भोजन की खोज करने के लिए क्रियाशील बनाता है।

iii. **प्रोत्साहन**- जिस वस्तु से आवश्यकता अथवा अन्तर्नोद की समाप्ति होती है उसे प्रोत्साहन कहते हैं। अतः प्रोत्साहन वह उद्दीपक है जो अन्तर्नोद या अभिप्रेरक को जागृत करता है। प्रोत्साहन लक्ष्य वस्तु है जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अभिप्रेरित होता है। उदाहरण के लिए, भूख अन्तर्नोद को भोजन से संतुष्टि मिलती है इसलिए भूख के अन्तर्नोद के लिए भोजन एक प्रोत्साहन है।

iv. **अभिप्रेरक**- अभिप्रेरक क्या है? इस संबंध में मनोवैज्ञानिकों में एकमत नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिक इन्हें शारीरिक तथा मानसिक दशायें मानते हैं, कुछ इन्हें प्राणी की आवश्यकताएँ मानते हैं तथा कुछ इन्हें विशिष्ट प्रकार से कार्य करने की प्रवृत्ति मानते हैं। परन्तु प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक इस बात पर सहमत है कि अभिप्रेरक एक अति व्यापक शब्द है जिसके अंतर्गत आवश्यकता, अन्तर्नोद तथा तनाव जैसे अनेक शब्द समाहित रहते हैं। अभिप्रेरक तीन कार्य करते हैं- i. क्रिया को प्रारम्भ करते हैं, ii. क्रियाओं को गति देते हैं, तथा iii. उद्देश्य प्राप्ति तक क्रियाओं की निरन्तरता को बनाए रखते हैं। अभिप्रेरणा उत्पन्न करने वाले कारकों को अभिप्रेरक कहते हैं। अभिप्रेरकों को सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- (अ) आन्तरिक (ब) बाह्य।

आन्तरिक अभिप्रेरकों से तात्पर्य मनुष्य के शारीरिक अथवा जैविक अभिप्रेरकों से होता है। जैसे-आत्मरक्षा, भूख, प्यास एवं काम आदि और बाह्य अभिप्रेरकों से तात्पर्य मनुष्य के पर्यावरणीय अथवा मनो-सामाजिक अभिप्रेरकों से होता है; जैसे- आत्मसम्मान, सामाजिक स्तर एवं इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, जज व नेता आदि बनने की इच्छा। अभिप्रेरक किसी भी प्रकार का क्यों न हो-आन्तरिक अथवा बाह्य परन्तु उससे उत्पन्न होने वाली अभिप्रेरणा सदैव आन्तरिक ऊर्जा के रूप में ही होती है।

पूर्णरूप से अभिप्रेरित व्यक्ति उद्देश्य की प्राप्ति के बाद ही शांत होता है। हम जानते हैं कि किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक के बाद दूसरे के क्रम में अनेक लक्ष्य प्राप्त करने होते हैं। पूर्णरूप से अभिप्रेरित व्यक्ति एक लक्ष्य की पूर्ति के बाद दूसरे लक्ष्य की पूर्ति के लिये अभिप्रेरित रहता है और

यह अभिप्रेरणा उद्देश्य की प्रगति के बाद भी शांत होती है। उदाहरणार्थ- 12वीं पास एक छात्र के इंजीनियर बनने के उद्देश्य को लीजिए। उसने देखा कि इंजीनियर बनते ही नौकरी तुरन्त मिल जाती है और वेतन भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। नौकरी और वेतन ने उसके लिये अभिप्रेरक का कार्य किया और उसके अंदर एक हलचल पैदा हुई, एक ऊर्जा उत्पन्न हुई जिसने उसे इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षा में सफलता प्राप्त करने हेतु कठिन परिश्रम करने के लिये प्रेरित किया। वह सफल हुआ और उसे इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश मिल गया। अब उसके सामने दूसरा लक्ष्य उपस्थित हुआ- प्रथम वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होना। इस समय भी उसकी इंजीनियरिंग बनने की इच्छा ने अभिप्रेरित का काम किया और वह कठिन परिश्रम करने लगा। परिश्रम का फल मिला और वह उत्तीर्ण हो गया। अब उसके सामने दूसरे वर्ष के पाठ्यक्रम को पूरा कर उसमें उत्तीर्ण होने का लक्ष्य सामने आया। इस बार भी उसकी इंजीनियर बनने की इच्छा ने अभिप्रेरक का कार्य किया, उसने कठिन परिश्रम किया और उत्तीर्ण हो गया। यही प्रक्रिया तीसरी व चौथी साल भी रही और उसने इंजीनियर की उपाधि प्राप्त कर ली। उपाधि प्राप्त करने से उसकी इंजीनियर बनने की इच्छा पूरी हो गई और इसके साथ ही परिश्रम करने की ओर धकेलने वाली ऊर्जा (अभिप्रेरणा) भी समाप्त हो गई।

अभ्यासप्रश्न

1. अभिप्रेरणासेक्याअभिप्रायहै?
2. अभिप्रेरणाकेमुख्यघटककौन-कौनसेहैं?
3. आन्तरिक अभिप्रेरकों से आप क्या समझ्ते हैं?

11.7 अभिप्रेरणा के प्रकार

अभिप्रेरणा का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। **मैस्लो** के अनुसार अभिप्रेरणा को जन्मजात अभिप्रेरणा तथा अर्जित अभिप्रेरणा में बाँटा जा सकता है। **थाम्पसन** महोदय के अनुसार अभिप्रेरकों को स्वाभाविक अभिप्रेरणा तथा कृत्रिम अभिप्रेरणा में बाँटा जा सकता है। **गैरेट** के अनुसार अभिप्रेरणा को जैविक अभिप्रेरणा, मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा तथा सामाजिक अभिप्रेरणा में बांटा जा सकता है। कुछ मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा को प्राथमिक अभिप्रेरणा तथा द्वितीय अभिप्रेरणा के रूप में अथवा दैहिक अभिप्रेरणा तथा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा के रूप में वर्गीकृत करते है। मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोणों से किया है, जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण है-

i. सकारात्मक अभिप्रेरणा- इस अभिप्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। इस कार्य को करने से उसे सुख और सन्तोष प्राप्त होता है। शिक्षक विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन और स्थितियों का निर्माण करके बालक को सकारात्मक अभिप्रेरणा प्रदान करता है। इस अभिप्रेरणा को आन्तरिक अभिप्रेरणा भी कहते हैं।

ii. नकारात्मक अभिप्रेरणा- इस अभिप्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से न करके, किसी दूसरे की इच्छा या बाह्य प्रभाव के कारण करता है। इस कार्य को करने से उसे किसी वांछनीय या निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होती है। शिक्षक-प्रशंसा, निन्दा, पुरस्कार, प्रतिद्वन्द्विता आदि का प्रयोग करके बालक को नकारात्मक अभिप्रेरणा प्रदान करता है। इस अभिप्रेरणा को ब्राह्य अभिप्रेरणा भी कहते हैं। बालकों को प्रेरित करने के लिए सकारात्मक या आन्तरिक अभिप्रेरणा का प्रयोग अधिक उत्तम समझा जाता है। इसका कारण यह है कि नकारात्मक या बाह्य अभिप्रेरणा बालक की कार्य में अरूचि उत्पन्न कर सकती है। फलस्वरूप, वह कार्य को पूर्ण करने के लिए किसी अनुचित विधि का प्रयोग कर सकता है। यदि आन्तरिक अभिप्रेरणा प्रदान करके सफलता नहीं मिलती है, तो बाह्य अभिप्रेरणा का प्रयोग करने के बजाय और कोई विकल्प नहीं रह जाता है। फिर भी शिक्षक का प्रयास यही होना चाहिए कि वह आन्तरिक अभिप्रेरणा का प्रयोग करके बालक को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करे। इसका कारण बताते हुए **प्रेसी, राबिन्सन व हॉरक्स** ने लिखा है- ‘‘अधिगम-विधि के रूप में बाह्य अभिप्रेरणा आन्तरिक अभिप्रेरणा से निम्नतर है।’’

iii. आंगिक अभिप्रेरणा- इसके अन्तर्गत वे अभिप्रेरणाऐं आती हैं, जो शरीर की आन्तरिक दशा से सम्बन्धित हैं, जैसे-भूख, प्यास, मलमूत्र विसर्जन आदि।

iv. आपात अभिप्रेरणाएँ- इसमें जीवन-रक्षा सम्बन्धी प्रेरणाएँ अपने वातावरण की परिस्थितियों से प्राप्त होती हैं- जैसे शत्रु को देखकर भयभीत होना और रक्षा के लिए भागना या पलायन करना।

v. वस्तुनिष्ठ अभिप्रेरणाएँ- इस प्रकार की प्रेरणाओं का लक्ष्य वातावरण की परिस्थितियों से प्रभावित होकर, एक विशिष्ट ढंग का, प्रभावपूर्ण व्यवहार करना है। वैज्ञानिका अनुसंधान सम्बन्धी व्यवहार में इसी प्रकार की प्रेरणा कार्य करती है।

vi. सामाजिक अभिप्रेरणाएँ- ये अभिप्रेरणाएं वह हैं जिनसे प्रेरित होकर व्यक्ति सामाजिक व्यवहार करता है। सामाजिक अभिप्रेरणा चार प्रकार की होती है- 1. सामुदायिकता, 2. स्वाग्रह या आत्म-स्थापना, 3. संग्रहशीलता 4. युद्ध-प्रवृत्ति या युयुत्सा।

अभ्यासप्रश्न

4. मैस्लो के अनुसार अभिप्रेरणा किन दो वर्गों में बांटा जा सकता है?
5. ________________के अनुसार अभिप्रेरणा को जैविक अभिप्रेरणा, मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा तथा सामाजिक अभिप्रेरणा में बांटा जा सकता है।
6. सकारात्मकअभिप्रेरणाकिसेकहतेहैं?

7. ''अधिगम-
 विधिकेरूपमेंबाह्यअभिप्रेरणाआन्तरिकअभिप्रेरणासेनिम्नतरहै।' ' किसनेकहा?
8. सामाजिक अभिप्रेरणा के प्रकारों के नाम लिखिए।

11.8 अभिप्रेरणा और अधिगम

अभिप्रेरणा अधिगम की प्रक्रिया और परिणाम दोनों को प्रभावित करती है। अभिप्रेरित शिक्षार्थी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, उनके सीखने की गति तीव्र होती है उनका सीखना भी अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है। **एन्डरसन** ने इस तथ्य को बड़े संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके शब्दों में- ''सीखने की प्रक्रिया सर्वोत्तम रूप में आगे बढ़ेगी यदि वह अभिप्रेरित होगी।''

इसके विपरीत अ-अभिप्रेरित बालकों की प्रायः नई बातों को सीखने में रूचि नहीं होती है, तथा वे सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरकों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। शिक्षा प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की उपयोगिता स्वस्पष्ट ही है। कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त अन्य शैक्षिक परिस्थितियों में छात्रों के व्यवहारों को नियंत्रित करने के कार्य में भी अभिप्रेरणा महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है।

11.9 अधिगम में अभिप्रेरणा का स्थान

अधिगम में अभिप्रेरणा का प्रमुख स्थान है, जैसा कि **एंडरसन** महोदय ने कहा है- ''अधिगम प्रेरणा पाकर सर्वोत्तम ढंग से आगे बढ़ता है।''

मानव के समस्त व्यवहार और क्रियाएँ प्रेरणा पर ही आधारित होती हैं। शिक्षा की प्रक्रिया भी प्रेरणा के बिना समीव नहीं हो सकती है। **कैली** महोदय का कथन है कि- ''अभिप्रेरणा अधिगम प्रक्रिया के उचित व्यवस्थापन में केन्द्रीय कारक होता है। किसी प्रकार की भी अभिप्रेरणा सभी अधिगम में अवश्य उपस्थित रहनी चाहिए।''

शिक्षा में प्रेरणा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए **थामसन** महोदय ने भी कहा है, ''प्रेरणा छात्र में रूचि उत्पन्न करने की कला है।''

उपर्युक्त कथनों से शिक्षा में प्रेरणा का महत्व स्पष्ट हो जाता है। प्रेरणा और शिक्षा का क्या सम्बन्ध है तथा अधिगम की विभिन्न समस्याओं एवं क्षेत्रों में प्रेरणा का क्या स्थान है? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये जा सकते हैं-

1. रूचि का विकास- शिक्षक आन्तरिक प्रेरणा का प्रयोग करके बालक में पढ़ने के प्रति रूचि जागृत कर सकता है। इस प्रकार रूचि से प्रेरित होने पर अध्ययन कार्य सरल हो जाता है। प्रेरणा द्वारा उन्हें स्वयं पढ़ने की रूचि हो जाती है।
2. अधिगम के नियम और प्रेरणा- अधिगम की क्रिया में अनेक नियम कार्य करते है। ''प्रभाव का नियम'' तथा ''परिणाम का नियम'' और ''अभ्यास का नियम'' एक प्रकार से प्रेरक का काम करते हैं। प्रभाव के नियम के अनुसार दूसरों के कार्यों को देखकर उसे अधिगम की प्रेरणा मिलती है। परिणाम के नियम के अनुसार जिस कार्य से उसे सुख संतोष मिलता है, उसे वह बार-बार करना चाहता है। शिक्षा में, प्रेरक के रूप में इन नियमों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रेरणा की उत्पत्ति के लिए उन्हीं कार्यों को शिक्षा में सम्मिलित करना चाहिये, जिनकी प्रगति के प्रभाव और परिणाम से छात्रों को संतोष उत्पन्न हो। विद्यालयों में पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था इसी नियम से सम्बन्धित है, जिसका मुख्य उद्देश्य अच्छे कार्यों के प्रभाव को, पुरस्कार द्वारा सुखकर, आनन्ददायक, संतोषदायक एवं आकर्षक बनाना है और बुरे कार्यों के प्रभाव को, दण्ड द्वारा दुःखदायक एवं असंतोषपूर्ण बनाकर, छात्र का ध्यान उस ओर से हटाना है।
3. व्यवहार को नियंत्रित करने में सहायता- शिक्षक प्रशंसा, निन्दा, दण्ड तथा पुरस्कार आदि प्रेरकों का प्रयोग करके बालक के व्यवहार को नियंत्रित, निर्देशित या परिवर्तित कर सकता है।
4. मानसिक विकास में सहायता- **क्रो और क्रो** ने कहा है कि- ''प्रेरक छात्र को अपनी सीखने की क्रियाओं में प्रोत्साहन देते हैं।'' शिक्षक प्रेरकों का प्रयोग करके ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित कर सकता है और छात्र में ज्ञान प्राप्ति के लिए अभिलाषा उत्पन्न करके मानसिक विकास में अपूर्व योग दे सकता है।
5. चरित्र-निर्माण में सहायता- चरित्र-निर्माण का अर्थ बालक-बालिकाओं में अच्छी आदतों, अच्छे गुणों और आदर्शों का विकास करना है। प्रेरणा द्वारा चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया में सहायता ली जा सकती है।
6. लक्ष्य प्राप्ति में सहायता- प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई-न-कोई लक्ष्य अवश्य होता है। विद्यालय भी किसी लक्ष्य को सामने रखकर शिक्षा की व्यवस्था करता है। अतः लक्ष्य की प्राप्ति में प्रेरणा का ही प्रमुख हाथ होता है। जीवन तथा शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आन्तरिक प्रेरणा का प्रयोग करना चाहिये। प्रेरणा की उत्पत्ति के लिये लक्ष्य को स्पष्ट और आकर्षक होना आवश्यक है। प्रेरणा का यह एक विशेष गुण है कि वह सदा अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर स्वयं बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। अतः शिक्षकों का कार्य है कि बालकों का ध्यान लक्ष्य की ओर आकर्षित करें। इसमें पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, अनुशासन सम्बन्धी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

7. पाठ्यक्रम और प्रेरणा- पाठ्यक्रम बालकों की आयु, योग्यता, क्षमता तथा उनकी रूचि, प्रगति एवं विकास के अनुकूल होना चाहिये। पाठ्यक्रम के अनुसार बालकों में प्रेरणा उत्पन्न करना अधिक उपयोगी है। पाठ्यक्रम रूचिकर होने पर पढ़ने की सदा प्रेरणा मिलती रहती है।
8. अध्यापन-विधि और प्रेरणा- सफल अध्ययन-विधि में प्रेरणा का प्रमुख स्थान है। अध्यापक को सर्वप्रथम छात्रों को ज्ञानार्जन के लिए प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए। प्रेरणा को उत्पन्न किये बिना अध्यापक अपनी अध्यापन-विधि में सफलता एवं अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता। अतः अध्यापन-विधि का मनोरंजक और रूचिकर होना अत्यन्त आवश्यक है। बालकों की अवस्था और आवश्यकतानुसार किन्डरगार्टन, मान्टेसरी तथा अन्य नवीन विधियों एवं श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुशासन और प्रेरणा- बालकों को अनुशासनप्रिय बनाने में तथा अनुशासनहीनता की भावना को दूर करने के लिए अच्छे कार्यो को करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। आज शिक्षा-जगत् में अनुशासन सम्बन्धी समस्या गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। अनुशासनहीनता के प्रमुख कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण है- छात्रों में प्रेरणा का अभाव। अनुशासन की समस्या हल करने में दण्ड, पुरस्कार आदि कृत्रिम प्रेरकों का प्रभाव स्थायी नहीं होता। अतः स्वाभाविक एवं आन्तरिक प्रेरणा का प्रयोग किया जाय, ताकि उनमें स्वानुशासन की भावना उत्पन्न की जा सके।
10. ध्यान केन्द्रित करने में प्रेरणा से सहायता- प्रेरणा द्वारा रूचि उत्पन्न होने पर भी छात्र पाठ्य विषय में ध्यान लगा सकता है। शिक्षक को ध्यान केन्द्रित करने के लिए रूचिकर एवं उपयुक्त साधनों का प्रयोग करना चाहिए। प्रेरणा के आधार पर ही बालक पाठ्य-विषयों पर ध्यान देता है और पढ़ाई हुई वस्तु को आत्मसात करता है।

11.10 विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा को बढाने की विधियां

शिक्षार्थियों का विद्यालय में आना इस बात का द्योतक है कि वे सीखने के लिये अभिप्रेरित हैं, पर कितने अधिक अथवा कम यह दूसरी बात है। उनकी इस अभिप्रेरणा के पीछे कोई एक अभिप्रेरक भी हो सकता है, दो अभिप्रेरक भी हो सकते हैं और दो से अधिक अभिप्रेरक भी हो सकते हैं। हम जानते हैं कि सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। हो सकता है कि मनुष्य में सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति होती है, हो सकता है कि कुछ शिक्षार्थी इस मूल प्रवृत्ति की संतुष्टि के लिये विद्यालय आते हों। कुछ विद्यार्थी खेल-कूद की सुविधाओं के कारण भी विद्यालय आ सकते हैं और कुछ शिक्षार्थियों के लिये समाज में पढ़े-लिखे व्यक्तियों का उच्च स्तर होना उनकी अभिप्रेरणा का आधार हो सकता है। कुछ शिक्षार्थी इनमें से किसी एक अभिप्रेरक से अभिप्रेरित हो और चाहे एक से अधिक अभिप्रेरकों

से, वह जितना अधिक अभिप्रेरित होगा, सीखने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारू रूप से चलेगी और सीखना भी उतना ही अधिक स्थायी होगा। विद्यार्थियों को सीखने के लिये पूर्ण रूप से अभिप्रेरित करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक विधियों का विकास किया है जो निम्नलिखित है-

1. पढ़ाये जाने वाले विषय अथवा सिखाये जाने वाले कौशल की उपादेयता- उपयोगिता/उपादेयता सबसे अधिक शक्तिशाली अभिप्रेरक होता है। यदि विद्यार्थियों को यह स्पष्ट कर दिया जाये कि पढ़ाया जाने वाला विषय अथवा सिखाया जाने वाला कौशल उनके जीवन में उनके लिये कितना जरूरी है तो जितना अधिक उन्हें उसकी उपयोगिता का आभास होगा, वे सीखने के लिए उतने ही अधिक अभिप्रेरित होंगे।
2. पढ़ाये जाने वाले विषय अथवा सिखाये जाने वाले कौशल के प्रशिक्षण के उद्देश्य- किसी पढ़ाये जाने वाले विषय अथवा सिखाये जाने वाले कौशल के प्रशिक्षण के उद्देश्य भी स्पष्ट करना आवश्यक होता है। ये प्रथम विधि से अभिप्रेरित शिक्षार्थियों को सीखने के लिये और अधिक अभिप्रेरित करते हैं। शिक्षार्थियों को सीखे जाने वाले ज्ञान अथवा कौशल के सीखने के उद्देश्य जितने अधिक स्पष्ट होते हैं वे सीखने के लिये उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं और उनकी सीखने सम्बन्धी क्रियायें भी उतनी ही अधिक उद्देश्य लक्षित होती है।
3. शिक्षार्थियों की आवश्यकतायें- किसी विषय का ज्ञान एवं कौशल व प्रशिक्षण अपने में कितना भी उपयोगी क्यों न हो जब तक वह शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं करता जब तक शिक्षार्थी उसे सीखने के लिये अभिप्रेरित नहीं होता। इसलिये कौशल को शिक्षार्थी की आवश्यकताओं से जोड़ा जाना अति आवश्यक है।
4. शिक्षार्थियों का आकांक्षा स्तर- कुछ शिक्षार्थी केवल उत्तीर्ण होने भर की आकांक्षा रखते हैं, कुछ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने की तो कुछ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की। इसी प्रकार कुछ छोटी-मोटी नौकरियाँ प्राप्त करना चाहते हैं, कोई व्यवसाय व कोई अफसर श्रेणी की नौकरियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। यह देखा गया है कि जिन विद्यार्थियों का आकांक्षा का स्तर जितना ऊँचा होता है वे तत्सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशल सीखने के लिये उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं। अतः हम शिक्षार्थियों की आकांक्षा स्तर उठाकर उनकी अभिप्रेरणा में वृद्धि कर सकते हैं।
5. कक्षा का वातावरण- कक्षा का वातावरण भी शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने में अभिप्रेरक का कार्य करता है। सुन्दर कक्ष, शुद्ध हवा, पर्याप्त प्रकाश, शान्त वातावरण, शिक्षक-शिक्षार्थियों के बीच के सम्बन्ध और शिक्षार्थियों के आपस के सम्बन्ध, इन सबसे कक्षा का वातावरण तैयार होता है। जिस कक्षा में सीखने के लिये जितना अच्छा वातावरण होता है उस कक्षा के शिक्षार्थी उतने ही अधिक अभिप्रेरित होते हैं।
6. उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग- शिक्षक उपयुक्त शिक्षण विधियों के प्रयोग से भी शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित कर सकते हैं। किसी वर्ग विशेष के छात्रों के लिये उपयुक्त शिक्षण विधि वह होती है जिसमें छात्रों की रूचि होती है और जिसके द्वारा वे शीघ्र सीखते

हैं। शीघ्र सफलता से पुनर्बलन मिलता है, सीखने वाले अभिप्रेरित होते हैं और सीखने की क्रिया को और अधिक गति प्रदान होती है।

7. शिक्षक का व्यवहार- शिक्षक का शिक्षार्थियों के प्रति आत्मभाव एक अचूक रामबाण होता है। वह अपने प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोगपूर्ण व्यवहार से शिक्षार्थियों की अभिप्रेरणा को सरलता से बढ़ा सकता है। यह कार्य वह छात्रों की भावनाओं का सम्मान करके, उन्हें अभिव्यक्ति के स्वतन्त्र अवसर प्रदान करके और उनकी समस्याओं का तुरन्त हल करके कर सकता है।
8. प्रशंसा एवं निंदा- इस संदर्भ में किये गये मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से दो तथ्य उजागर हुए। प्रथम यह कि औसत बुद्धि वाले शिक्षार्थियों के लिए प्रशंसा अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है और छोटे बच्चों के लिये निन्दा अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है। दूसरा यह कि निंदा की अपेक्षा प्रशंसा अधिक अच्छा अभिप्रेरक होता है। यह कार्य शिक्षक शिक्षार्थियों की सही अनुक्रिया के लिये प्यार एवं मुस्कान भरी स्वीकृति एवं सुन्दर, शाबास, बिल्कुल ठीक आदि शब्दों द्वारा कर सकते हैं। गलत अनुक्रिया पर निन्दा के स्थान पर सहयोग अधिक उत्तम अभिप्रेरक होता है। यदि कोई शिक्षार्थी बार-बार गलत अनुक्रिया करे तो भी उसकी निन्दा प्रेम एवं सहानुभूति के साथ करनी चाहिए।
9. पुरस्कार एवं दण्ड- इस संदर्भ में किये गये मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि जिस समूह की प्रशंसा की गई, उसकी निष्पत्ति उस समूह से अधिक थी जिसकी आलोचना की गई थी और जिसे नियंत्रण में रखा गया था। हाँ कुछ परिस्थितियों में बच्चों को दण्ड देना हानिकारक होता है, शिक्षार्थी अभिप्रेरित होने के स्थान पर पलायन कर जाते हैं। पुरस्कार भी बड़ी सावधानी से देना चाहिए, यह लोभ का कारण नहीं बनना चाहिए। पुरस्कार पदक अथवा प्रमाण-पत्र के रूप में देना अधिक प्रभावी होता है।
10. प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता- कभी-कभी स्पर्धा आधारित प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता भी अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है। यह प्रतिद्वन्द्विता व्यक्तिगत के स्थान पर सामूहिक स्तर की अधिक प्रभावशाली होती है। व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता जहाँ अच्छे अभिप्रेरक का कार्य करती है वहाँ शिक्षार्थियों में द्वेष की भावना भी उत्पन्न करती है, परन्तु सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतियोगिता शिक्षार्थियों को अपने समूह को विजयश्री दिलाने हेतू अधिक श्रम करने के लिये अभिप्रेरित करती है। शिक्षकों को प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता का उपयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए।
11. सफलता का ज्ञान- मनोवैज्ञानिक स्किनर ने अपने प्रयोगों में पाया कि यदि सीखने वाले को अपनी सफलता का ज्ञान तुरन्त करा दिया जाये तो वह उसके लिये अभिप्रेरक का कार्य करता है, वह उससे आगे के कार्य को और अधिक उत्साह से करता है। स्किनर ने इसे पुनर्बलन की संज्ञा दी। उन्होंने शिक्षार्थियों के इस प्रकार के पुनर्बलन देने हेतु अभिक्रमित अध्ययन का विकास भी किया हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. ‘‘प्रेरणाछात्रमेंरूचिउत्पन्नकरनेकीकलाहै’’।किसनेकहा?
10. ‘‘सीखने की प्रक्रिया सर्वोत्तम रूप में आगे बढ़ेगी यदि वह अभिप्रेरित होगी।’’यह कथन किसका है।
11. कैलीके अनुसार - ‘‘अभिप्रेरणा अधिगम प्रक्रिया के उचित _____________ में केन्द्रीय कारक होता है।
12. विद्यार्थियोंमेंअभिप्रेरणाकोबढ़ानेकीमुख्यविधियोंकेनामलिखिए।

शिक्षार्थियों की अभिप्रेरणा बढ़ाने की और भी अनेक विधियाँ हो सकती हैं। शिक्षकों को किसी भी विधि का चयन शिक्षार्थियों की आयु, परिपक्वता, मनोदशा, विषयवस्तु अथवा कौशल की प्रकृति और शिक्षार्थियों के पर्यावरण इन सबको दृष्टि में रखकर करना चाहिए। उपयुक्त विधि द्वारा विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा को बढ़ाना चाहिए। यह अपने आप में एक कला है; शिक्षक को इस कला में निपुण होना चाहिए।

11.11 सारांश

व्यक्ति का प्रत्येक कार्य और व्यवहार प्रयोजनपूर्ण होता है। व्यक्ति के कार्य और व्यवहार को परिचालित करने वाली कुछ प्रेरक शक्तियाँ होती है, जो उसे विभिन्न परिस्थितियों में कार्य या व्यवहार करने की प्रेरणा प्रदान करती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं अभिप्रेरणा को प्राणी के व्यवहार को संचालित, निर्देशित तथा संगठित करने वाली आन्तरिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। अधिगम में प्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिगम के क्षेत्र में प्रेरक का क्या स्थान है? तथा वह किस प्रकार सहायक हैं इस सम्बन्ध में निम्नांकित विचार प्रस्तुत हैं- (1) रूचि का विकास, (2) अधिगम का नियम और प्रेरणा, (3) व्यवहार को नियंत्रित करने में सहायता, (4) मानसिक विकास में सहायता, (5) चरित्र निर्माण में सहायता, (6) लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता, (7) पाठ्यक्रम और प्रेरणा, (8) अध्यापन विधि और प्रेरणा, (9) अनुशासन और प्रेरणा, (10) ध्यान केन्द्रित करने में सहायता। सीखने की इच्छा जागृत करके, आकांक्षा स्तर बढ़ाकर प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करके छात्रों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। पुरस्कार तथा दण्ड मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिप्रेरणा प्रदान करने के दो विपरीत अभिप्रेरक हैं। बालक को प्रेरणा प्रदान करने के लिए निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये-(1) रूचि का

अध्ययन, (2) स्वस्थ प्रतियोगिता का विकास, (3) स्पष्ट और आकर्षक लक्ष्य, (4) प्रोत्साहन, (5) प्रशंसा, (6) सामूहिक कार्य, (7) पुरस्कार, (8) दंड (9) आत्म-प्रकाशन का अवसर,(10) प्रगति का ज्ञान, आदि।

11.12 शब्दावली

1. **अभिप्रेरणा** - प्राणी के शरीर यन्त्र की चालक शक्ति, जो व्यक्ति को व्यवहार करने के लिए प्रेरणा देती है।
2. **अन्तर्नोद**- असंतुलन द्वारा उत्पादित उत्तेजक।

11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ''अभिप्रेरणा कार्य को आरम्भ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।''
2. अभिप्रेरणाकेमुख्यघटकहैं-आवश्यकता, अन्तर्नोद, प्रोत्साहन एवं अभिप्रेरक।
3. आन्तरिक अभिप्रेरकों से तात्पर्य मनुष्य के शारीरिक अथवा जैविक अभिप्रेरकों से होता है।
4. मैस्लो के अनुसार अभिप्रेरणा को जन्मजात अभिप्रेरणा तथा अर्जित अभिप्रेरणा में बाँटा जा सकता है।
5. गैरेट
6. सकारात्मक अभिप्रेरणा- इस अभिप्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। इस कार्य को करने से उसे सुख और सन्तोष प्राप्त होता है। इस अभिप्रेरणा को आन्तरिक अभिप्रेरणा भी कहते हैं।
7. प्रेसी, राबिन्सन व हॉरक्स
8. सामाजिक अभिप्रेरणा के प्रकारों के नाम हैं-
    i. सामुदायिकता
    ii. स्वाग्रह या आत्म-स्थापना
    iii. संग्रहशीलता
    iv. युद्ध-प्रवृत्ति या युयुत्सा
9. थामसन
10. एन्डरसन का
11. व्यवस्थापन
12. (1) रूचि का अध्ययन, (2) स्वस्थ प्रतियोगिता का विकास, (3) स्पष्ट और आकर्षक लक्ष्य, (4) प्रोत्साहन, (5) प्रशंसा, (6) सामूहिक कार्य, (7) पुरस्कार, (8) दंड (9) आत्म-प्रकाशन का अवसर,, (10) प्रगति का ज्ञान, आदि।

11.14 सन्दर्भ ग्रंथ

1. सारस्वत, मालती (2005), ''शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा'', आलोक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 533-563।
2. पाठक, पी0डी0 (2010), ''शिक्षा मनोविज्ञान'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 452-473।
3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2004), ''उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ 218-243।
4. भटनागर, ए0बी0, भटनागर, मीनाक्षी एवं भटनागर, अनुराग (2010), ''अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया'', आर0लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 238-301।

11.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा का क्या अर्थ है? उदाहरण सहित समझाइये।
2. अभिप्रेरणा की प्रकृति क्या है?
3. मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरणा का वर्गीकरण किस प्रकार किया है? विस्तारपूर्वक बताइये।
4. सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का क्या महत्व है?

इकाई-12 वैयक्तिक विभिन्नता Individual Differences

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 वैयक्तिक विभिन्नताएँ: अर्थ एवं प्रकृति
12.4 वैयक्तिक विभिन्नताओं के निर्धारक
12.5 आनुवंशिकता एवं वातावरण की भूमिका
12.6 वैयक्तिक विभिन्नताओं का महत्त्व एवं उसके निहितार्थ
12.7 सारांशशब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रंथ
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हमलोग जानते हैं कि पूरे विश्व में कोई भी दो व्यक्ति आपस में समान नहीं होते है। वे आपस में एक-दूसरे से देखने तथा व्यवहार में भिन्न होते हैं। जैसे कि आपने अपने विद्यालयों में देखा होगा कि विद्यालय में प्रवेश पाने वाले सभी विद्यार्थियों के व्यवहार में भी विभिन्नता पाई जाती है। यह व्यवहार विद्यार्थियों की उपलब्धि को प्रभावित करती है। इस इकाई के अध्ययन से कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के औसत बुद्धि, शीलगुण, अभिवृत्ति, अभिरूचि एवं अन्य व्यवहारों के बारे में जानकारी प्राप्त होगी। इन्हीं व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर आप अपने विद्यार्थियों के व्यवहारों को भली-भाँति समझ सकते हैं। अतः विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने के लिए शिक्षकों को व्यक्तिगत भिन्नताओं की जानकारी महत्त्वपूर्ण है।

इस इकाई में हम वैयक्तिक विभिन्नताओं के विभिन्न पक्षों पर चर्चा करेंगे। जिनमें वैयक्तिक विभिन्नताओं के अर्थ, उसके निर्धारकों, आनुवांशिकी एवं वातावरण की भूमिका तथा वैयक्तिक विभिन्नताओं के महत्त्व एवं उसके निहितार्थ प्रमुख हैं। वैयक्तिक विभिन्नताओं के अर्थ में हम परिभाषाओं के माध्यम से इसे स्पष्ट रूप से समझने की कोशिश करेंगे। वैयक्तिक विभिन्नता के निर्धारकों में हम वैयक्तिक विभिन्नता किन-किन निर्धारकों के कारण हो सकती है, इसकी चर्चा करेंगे। आनुवांशिकी एवं वातावरण की भूमिका में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि वैयक्तिक

विभिन्नता में इसकी क्या भूमिका हो सकती है। हम इकाई के अंत में वैयक्तिक विभिन्नताओं के महत्त्व एवं उसके निहितार्थों के बारे में अध्ययन करेंगे।

हम आशा करते है कि आप इस इकाई को रूचि लेकर पढ़ेगे तथा इसे अपने शिक्षण में अपनाकर खुद तथा विद्यार्थियों को लाभान्वित करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. वैयक्तिक विभिन्नताओं के अर्थ को भली-भांति समझ सकेंगे।
2. वैयक्तिक विभिन्नताओं के निर्धारकों के बारे में जान सकेंगे
3. वैयक्तिक विभिन्नता में आनुवंशिकी एवं वातावरण की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगे।
4. अधिगम प्रक्रिया में वैयित्तक विभिन्नताओं के संदर्भ में शिक्षण-कार्य एवं नीतियों की विवेचना कर सकेंगे।
5. कक्षा शिक्षण में वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।

12.3 वैयक्तिक विभिन्नता अर्थ एवं प्रकृति Meaning & Nature of Individual differences

कोई भी दो व्यक्ति आपस में समान नहीं होते हैं। उनमें किसी न किसी प्रकार की विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता शारीरिक एवं मानसिक गुणों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जैसे कोई व्यक्ति लम्बा होता है, तो कोई छोटा। कोई गोरा होता है, तो कोई काला। कोई बुद्धिमान होता है तो कोई मूढ़ इत्यादि ये सभी शारीरिक एवं मानसिक गुण सभी व्यक्तियों में अलग-अलग पाए जाते है। इसी वैयक्तिक अन्तर को वैयक्तिक विभिन्नता कहा जाता है। कार्टर बी० गुड (Carter B. Good) द्वारा रचित डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन (1959, P172) में निम्न रूप से परिभाषित किया गया है-

1. 'व्यक्तियों में किसी एक विशेषता या अनेक विशेषताओं को लेकर पाये जाने वाली भिन्नतायें या अन्तर।'

   The Variations of Deviations among individuals in regard to a single characteristics or a number of characteristics.
2. अपने संपूर्ण रूप में वे सारे भेद और अन्तर जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग करते है।

   Those differences which in their totality distinguish one individual from another.

रेबर(Reber, 1985) ने वैयक्तिक विभिन्नता को परिभाषित करते हुए कहा है- ”एक ऐसी मनोवैज्ञानिक घटना के लिए यह नाम दिया जाता है जो उन विशेषताओं या शील गुणों पर बल डालता है जिनके अनुसार वैयक्तिक जीव भिन्न होते दिखाए जा सकते हैं।“

"A label used for an approach to psychological phenomena that focuses a characteristic or traits along which individual organisms may be shown to differ"

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि वैयक्तिक विभिन्नता का संबंध वस्तुतः जीवों अथवा प्राणियों के गुणों या विशेषताओं से होता है। इसके आधार पर हम वैयक्तिक विभिन्नता को दो प्रमुख श्रेणियों में रख सकते है- व्यक्ति के अंदर भिन्नताएँ (Differences within the person) तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्नताएँ (Differences between one person to another person) पहले प्रकार की भिन्नताओं को अन्तः वैयक्तिक विभिन्नता (Intraindividual differences) तथा दूसरे तरह की वैयक्तिक विभिन्नता को अन्तर वैयक्तिक (Inter individual differences) कह सकते हैं।

वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति (Nature of Individual Difference)

वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति या उसके स्वरूप को समझने के लिए इसकी कुछ विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा। स्कीनर (Skinner, 1962) ने जो विशेषताएँ बताए हैं वो प्रमुख हैं-

1. **विभिन्नता (Variability)**- विभिन्नता से अर्थ किसी समूह के दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अलग-अलग प्रकार के शीलगुण पाए जाते हैं। अतः वैयक्तिक विभिन्नता है कि कोई भी शीलगुण किन्हीं दो व्यक्तियों में समान रूप में नहीं पाई जाती है।
2. **प्रसामान्यता (Normality)-** प्रसामान्यता एवं सांख्यिकीय शब्दावली है जिसके द्वारा वैयक्तिक विभिन्नता की व्याख्या की जा सकती है। प्रसामान्यता में हम व्यक्तियों के समूह को एक निर्धारित शीलगुण को लेकर मापते हैं तो पाया जाता है कि वैसे कम ही व्यक्ति है जिनमें यह शीलगुण अधिक या कम मात्रा में पाया गया है तथा अधिकतर व्यक्ति वैसे है जिनमें यह शीलगुण अधिक मात्रा में है।
3. **वृद्धि की विभिन्नता दर (Differential rate of growth)**- व्यक्तियों में यह देखा गया है कि सभी व्यक्तियों में वृद्धि अलग-अलग दर से होती है। एक ही उम्र के व्यक्ति कोई लम्बा होता है, तो कोई छोटा होता है। इससे पता चलता है कि सभी व्यक्तियों में शारीरिक विकास एवं परिवक्ता की दर (rate) एक समान न होकर भिन्न-भिन्न होती है।
4. **अधिगम की विभिन्नता दर (Differential rate of learning)-** एक ही कक्षा के बालक की अधिगम/सीखने की क्षमता अलग-अलग होती है। कोई बालक किसी विषय

वस्तु को जल्दी सीख लेता है, तो कोई देर से। सीखने या अधिगम की दर या क्षमता सभी बालकों में एक समान न होकर उनमें अन्तर होता है।

5. **शीलगुणों में परस्पर संबंध (Inter relationship of traits)-** सभी शीलगुण आपस में एक दूसरे से संबंधित होते है, जिसके कारण किसी एक शीलगुण में अन्तर दूसरे शीलगुण को प्रभावित करता है। जैसे एक ही कक्षा के छात्रों की अभिरूचि (Interest)अलग-अलग होने के कारण ही उनकी उपलब्धि का स्तर भी अलग-अलग होती है।

12.4 वैयक्तिक विभिन्नता के निर्धारक(Determinents of Individual differences)

वैयक्तिक विभिन्नता को निर्धारित या इसे प्रभावित करने वाले कई क्षेत्र है, जिनमें वैयक्तिक विभिन्नता पाई जाती है। वे निर्धारित या प्रभावित करने वाले क्षेत्र निम्न हैं-

1. **शारीरिक विकास (Determinents of Individual differences)-** व्यक्तिगत विभिन्नता शारीरिक विकास में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसके लिए किसी विशेष उपकरण एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। इसे कोई भी व्यक्ति देखकर पहचान सकता है। जैसे कोई व्यक्ति नाटा है या लम्बा। कोई गोरा है या सॉवला है। एक ही आयु के बालकों में शारीरिक विकास एवं परिपक्वता में स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। शिक्षक इस प्रकार के विभिन्नता का प्रयोग कक्षा के शिक्षण में कर सकते हैं।
2. **मानसिक विकास (Mental development)-** मानसिक विकास शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वैयक्तिक विभिन्नता है। आयु भिन्न होने पर मानसिक विकास में तो अन्तर होता ही है साथ ही एक ही उम्र के बालकों के मानसिक विकास में भी अंतर पाया जाता है। विशेषकर उनके बुद्धि स्तर (Intelligence level) में। फ्रीमैन तथा फ्लोरी(Freeman & Flory, 1967) द्वारा किए गए अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि स्कूल के छात्रों की बुद्धि का मापन करने में उनमें, प्रसामान्यता की विभिन्नता (Difference of normality) पाई जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि कुछ बच्चे प्रखर बुद्धि के होते है अर्थात् जिनकी बुद्धिलब्धि (IQ) 120 या इससे ऊपर होती है और कुछ बच्चे ऐसे होते है जिनकी बुद्धि लब्धि (IQ) 90 से नीचे होती है अर्थात् मंद बुद्धि। अधिकतर छात्रों की बुद्धि लब्धि 100 से 110 के बीच ही होती है।
3. **सांवेगिक विभिन्नता (Emotional differences)-** बालकों में सांवेगिक विभिन्नता भी पाई जाती है। कुछ बालकों में क्रोध, भय, डर इत्यादि जैसे संवेग अधिक होते है तथा कुछ बालकों में यह संवेग कम पाए जाते हैं। कुछ बालकों में स्नेह, प्यार जैसे संवेगों की प्रधानता होती है तो कुछ बालकों में सहानुभूति एवं परोपकारिता की प्रधानता होती है। यह

भी देखा जाता है कि एक ही परिस्थिति में कुछ छात्रों में एक ही तरह के संवेग उत्पन्न होते है तो कुछ दूसरे छात्रों में दूसरे तरह का संवेग एवं भाव (Feeling) की उत्पत्ति होती है।

4. **सामाजिक विकास (Social development)**-- बालकों में सामाजिक विकास के क्षेत्र में भी स्पष्ट विभिन्नता पाई जाती है। कुछ बालक कक्षा के नेतृत्व को अपने दामन में समेटना पसंद करते हैं तो कुछ बालक इसे सिर दर्द समझकर अपना दामन छुड़ाना चाहते थे। यहाँ तक कि सामाजिक परिस्थिति समान रहने पर भी विभिन्न बालकों द्वारा विभिन्न तरह की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ की जाती है।
5. **उपलब्धियों में अन्तर (Social development)**-कई कारण होते है कि जिससे बालकों या छात्रों की उपलब्धियों में विभिन्नता पाई जाती है। एक ही कक्षा में पढ़ने वाले, एक ही उम्र, एवं एक ही बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियाँ (Educational achievement) अलग-अलग होती है। किसी छात्र की शैक्षिक उपलब्धियाँ काफी अधिक होती है तो किसी छात्र की शैक्षिक उपलब्धियाँ कम होती है। स्कीनर (Skiner, 1962) तथा बेले (Bayley, 1991) ने ऐसे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों में अंतर का प्रमुख कारण उनकी अभिरूचि, प्रेरणा (Motivation) तथा अभ्यास (Practice) में अन्तर होता है।
6. **भाषा विकास (Language development)**- भाषा विकास के क्षेत्र में भी बालकों में वैयक्तिक विभिन्नता पाई जाती है। समान उम्र होने के बावजूद भी बालकों में भाषा पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती है। कुछ बालकों में बोलने, लिखने तथा समझने की शक्ति अधिक विकसित होती है तो कुछ बालकों में यह कम होती है। इस कारण भी समान उम्र एवं बुद्धि के बालकों के भाषा विकास में अन्तर हो जाता है।
7. **अभिरूचियों एवं अभिक्षमता में विभिन्नता (Differences in interest and aptitudes)**- छात्रों की अभिरूचियों में भी अन्तर होता है। किसी छात्र को विज्ञान में अभिरूचि होती है, तो किसी छात्र को भाषा सिखने में। इसी प्रकार कोई छात्र संगीत में अधिक अभिरूचि दिखाता है तो कोई खेल कूद में। छात्रों में अन्तर अभिरूचि में ही नहीं बल्कि अभिक्षमता (aptitude) में भी होती है। कुछ छात्रों में गाना गाने की अभिक्षमता या अन्तः शक्ति (Potentiality) अधिक होती है। तो कुछ छात्रों में गणित सीखने की अभिक्षमता या अन्तः शक्ति अधिक होती है। इस प्रकार छात्रों में विभिन्नता अभिक्षमता एवं अभिरूचि के ख्याल से भी होती है।
8. **यौन विभिन्नताएँ (Sex differences)**- व्यक्तियों के बीच में यौन विभिन्नताएँ भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। लड़कियों का शारीरिक विकास लड़कों के शारीरिक विकास की अपेक्षा तीव्रता से होता है। लड़कों का शरीर पेशीय (Muscular) एवं भारी होता है जबकि लड़कियों का शरीर कोमल, मुलायम तथा समान उम्र के लड़कों को अपेक्षा हल्का होता है। लड़कियों की आवाज में मधुरता होती है जबकि लड़कों की आवाज में कर्कशता अधिक होती है।

9. **व्यक्तित्व विभिन्नता (Differences in personality)**-बालकों के व्यक्तित्व में भी विभिन्नता पाई जाती है। कोई बालक अन्तर्मुखी (Introvert) होते है तो कोई बर्हिमुखी (Extrovert) होते है। किसी में नेतृत्व संबंधी गुण अधिक होता है तो किसी में अनुयायी बनने का गुण अधिक होता है। कैटेल (Cattel, 1945) के अनुसार किसी-किसी व्यक्ति में कार्डिनल शीलगुण (Cordinal traits) होते हैं जिनसे वे विख्यात होते है परन्तु अधिकतर छात्रों में ऐसे शीलगुण नहीं होते और वे केन्द्रीय शीलगुण (Central traits) से ही प्रभावित होते पाए जाते हैं।
10. **ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक क्षमताओं में अन्तर (Differences in sensory and motor capacities)**-व्यक्तियों में अन्तर ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक क्षमताओं में भी होता है। कई अध्ययनों से यह पता चला है कि कुछ छात्रों में क्रियात्मक नियंत्रण (Motor Control) तथा ज्ञानात्मक क्रियात्मक समन्वय (Sensory Motor coordination)की क्षमता अधिक होती है। जबकि कुछ छात्रों में ऐसी क्षमताएँ सामान्य होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ छात्र ऐसे कार्यो में श्रेष्ठ होते है, जिनमें ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक समन्वय की अधिकता होती है।

12.5 वैयक्तिक विभिन्नता में आनुवांशिकता एवं वातावरण की भूमिका Role of Heredity & Environment in Individual differences

आनुवंशिकता Heredity

वैयक्तिक विभिन्नता में आनुवंशिकता की प्रमुख भूमिका होती है। **डगलस और हालैंड** ने वंशानुक्रम की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है- ''एक प्राणी के वंशानुक्रम में वे सभी संरचनाएँ, शारीरिक विशेषताएँ, क्रियाएँ अथवा समताएँ सम्मिलित रहती है। जिन्हें वह अपने माता-पिता, अन्य पूर्वजों या प्रजाति से प्राप्त करता है।''

One's heredity consists of all the structures, physical Characteristics, functions or capacities derived from parents, other ancestry or species- 1947, p.51

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि जो गुण माता-पिता में होते है उसी तरह के गुण उनके संतानों में होती है। ये गुण शारीरिक संरचना से उसकी क्रियाओं एवं क्षमताओं से संबंधित होती है। जैसे बुद्विमान एवं उत्तम शीलगुण वाले माता-पिता के बच्चों में भी उत्तम शीलगुण होते हैं तथा उनका भी बुद्वि स्तर उत्तम होता है, परन्तु चोर एवं उचक्के माता पिता के बच्चों में भी वैसे ही गुण विकसित हो जाते है। इसका कारण आनुवंशिकता, ही होता है। इसे साबित करने के लिए कई अध्ययन किए गए हैं। जिनमें से जुड़वॉ बच्चों (Identical twin children) का शीलगुण सामान्य बच्चों या भ्रात्रीय

जुड़वॉ बच्चों (fraternal twin children) के शीलगुणों से भिन्न होता है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका कारण आनुवंशिकता (Heredity) में अन्तर है। एकांकी जुड़वॉ बच्चों (Identical twin children) की आनुवंशिकता 100: समान होती है, जबकि अन्य बच्चों की आनुवंशिकता मात्र 50: ही समान होती है।

वातावरण Environment

वैयक्तिक विभिन्नता में वातावरण की भी प्रमुख भुमिका होती है। बोरिंक, लैगफील्ड व वैल्ड (Boring, Langfield and weld) नें वातावरण को परिभाषित किया है-
“पित्रयेको (Gene) को छोड़कर अन्य जो भी वस्तु व्यक्ति को प्रभावित करती है, उसे वातावरण कहते है”।

The Environment is a very thing that affects the individual accepts his genes-1961)

वुडवर्थ व मार्क्विस (Wood worth and Marquis) 1948 के अनुसार –
“वातावरण में वे सभी बाह्य तत्व आ जाते है, जिन्होंने व्यक्ति को अपना जीवन प्रारम्भ करने के समय से प्रभावित किया है।’’
Environment covers all the outside factors that acted on the individual since he began life.

यह देखा गया है कि एक ही माता-पिता के सभी संतान एक समान नहीं होती हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि उसमें वातावरण की भूमिका होती है। वातावरण में भौतिक वातावरण (Physical environment) तथा सामाजिक वातावरण (Social environment) का प्रभाव वैयक्तिक विभिन्नता पर सर्वाधिक पड़ता है। जिस देश के भौतिक वातावरण में ठंड की प्रधान्नता होती है जैसे इंग्लैंड, अमेरिका रूस आदि देशों का वातावरण जिसमें सालों भर ठंड ही ठंड होती है, वहाँ के लोग अधिक फुर्तीले एवं गोरे होते है। दूसरी तरफ, गर्म वातावरण के लोगों में आलसीपन अधिक होता है एवं उनका रंग भी श्याम अधिक होता है। उसी तरह यदि बालक एक ऐसे परिवार से आता है जिसे सामाजिक रूप से सबल (Socially advantaged) कहा जाता है, तो उसका चरित्र एवं व्यक्तित्व शीलगुण वैसे बालकों से भिन्न होता है जो सामाजिक रूप से दुर्बल (Socially disadvantaged) परिवार से आते है। अतः स्पष्ट है कि वैयक्तिक विभिन्ना में वातावरण की भी प्रमुख भूमिका होती है।

12.6 वैयक्तिगत विभिन्नताओं के महत्त्व एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ

हम सभी यह जानते हुए भी कि एक ही कक्षा के छात्रों में वैयक्तिक विभिन्नता पाई जाती है, उन सभी छात्रों को एक साथ ही अध्यापन विधि द्वारा एक ही पाठ्यक्रम (Curriculum) की शिक्षा देते है।

लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसी परिस्थिति में छात्रों को उतना लाभ नहीं मिल पाता है, जितना की मिलना चाहिए। अतः समस्या यह है कि छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नता को देखते हुए उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें। इस समस्या को देखते हुए हमलोग निम्नांकित उपायों को ध्यान में रख सकते हैः-

1. **समूहीकरण या वर्गीकरण (Grouping or Classification)-** गुणवत्ता परक शिक्षा के लिए यह जरूरी है कि छात्रों का अलग-अलग समूहीकरण या वर्गीकरण किया जाय। प्राचीन काल में उम्र के आधार पर छात्रों को विभिन्न वर्गो या समूहों में बाँटकर अध्ययन किया जाता था। परन्तु, आजकल यह प्रथा समाप्त हो गई है और अब छात्रों को बुद्दि के आधार पर समुहीकरण किया जाना प्रारंभ हुआ है। इस कसौटी पर छात्रों को प्रखर बुद्धिवाला समूह, सामान्य बुद्धि वाला समूह एवं निम्न बुद्धिवाला समूह में बाँट दिया जाता है और उसी के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे छात्रों के शिक्षा से सर्वाधिक लाभ होगा। कुछ मनोवैज्ञानिकों का सुझाव यह है कि इस तरह का तैयार किया गया समूह यदि बुद्धि के अलावा अन्य कारकों जैसे अभिरूचि (Interest) अभिक्षमता (Aptitude) आदि के ख्याल से भी समरूप (homogeneou) बना लिया जाए, तो इस परिस्थिति में दी गई शिक्षा और भी अधिक उत्तम होगी।
2. **पाठ्यक्रम (Curriculum)** - शिक्षकों को विभिन्न समूहों के छात्रों के लिए एक समान पाठ्यक्रम नहीं बनाकर उस समूह की बुद्धि अभिरूचि एवं अभिक्षमता (Aptitude) के अनुकूल पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए। इससे छात्रों को अधिक से अधिक लाभ होगा। प्रत्येक समूह के लिएबनाए गए पाठ्यक्रम को कठोर (rigid) न होकर लचीला (Flexible) होना चाहिए ताकि उसमें आवश्यकतानुसार परिर्वतन किया जा सकें।
3. **शारीरिक भिन्नता (Physical differences)-** कक्षा के सभी छात्र शारीरिक रूप से एक समान नहीं होते है। कुछ छात्र छोटे कद के होते है, तो कुछ छात्र लम्बे कद के। कुछ छात्रों को कम दिखाई देता है तथा कम सुनाई देता है। इस तरह की शारीरिक विभिन्नता के अनुसार शिक्षकों को कक्षा में छात्रों के बैठने का स्थान सुनिश्चित करना चाहिए। छोटे कद एवं कम दिखाई एवं सुनाई देने वाले छात्रों को कक्षा में अगले बेंच पर बैठने की व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा वे कक्षा में दी जानेवाली शिक्षा से अधिक लाभान्वित नही हो पाएगें।
4. **शिक्षण विधियाँ-** शिक्षकों को चाहिए कि अध्यापन विधियों का चयन छात्र की श्रेणी के अनुसार करें। तीव्र बुद्धि के छात्रों को पढ़ाने की विधि कम बुद्धि के छात्रों को पढ़ाने की विधि से भिन्न होनी चाहिए। अगर इन सभी तरह के बालकों को एक ही तरह की अध्यापन विधि से पढ़ाया जाता है, तो इससे छात्रों को कोई खास लाभ नहीं पहुँचेगा और शिक्षा व्यर्थ जाएगी।
5. **व्यवसायिक निर्देशन (Vocational guidance)-** सभी बालकों का रूझान विभिन्न तरह के व्यवसाय के प्रति समान नहीं रहता। कोई छात्र किसी अमुक व्यवसाय को अधिक

पसंद करता है तो दूसरा छात्र दूसरे तरह के व्यवसाय को अधिक पसंद करता है। इस वैयक्तिक विभिन्नता के आलोक में शिक्षकों को चाहिए कि वे छात्रों को शिक्षा दें। इससे बालकों में आत्म संतुष्टि अधिक होगी और आत्मनिर्भरता (Self dependency) जैसे शील गुणों का विकास होगा।

6. **गृह कार्य (Home task or Assignment)-** शिक्षक छात्रों को गृह कार्य देते हैं। गृह कार्य देते समय वैयक्तिक विभिन्नता का ज्ञान शिक्षक के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। गृह कार्य देते समय शिक्षक छात्र की बुद्धि, अभिक्षमता, रूझान का स्तर एवं उसकी घरेलू परिस्थितियों को यदि ध्यान में रखते है तो इससे शिक्षक ठीक मात्रा में गृह कार्य छात्रों को दे पाएँगें और उसे छात्र भी ठीक ढंग से पूरा करके लाएँगे।

इससे स्पष्ट होता है कि वैयक्तिक विभिन्नता के ज्ञान से शिक्षा को काफी लाभ प्राप्त होता है। इससे शिक्षकों को अपना कर्त्तव्य निभाने में काफी मदद मिलती है।

अभ्यास प्रश्न

1. कार्टर बी॰ गुड द्वारा दी गई वैयक्तिक विभिन्नता की कोई एक परिभाषा लिखिए।
2. स्कीनर द्वारा बताई गई वैयक्तिक विभिन्नता कीविशेषताओं के नाम लिखिए।
3. _______________के अनुसार एक प्राणी के वंशानुक्रम में वे सभी संरचनाएँ, शारीरिक विशेषताएँ, क्रियाएँ अथवा समताएँ सम्मिलित रहती है। जिन्हें वह अपने माता-पिता, अन्य पूर्वजों या प्रजाति से प्राप्त करता है।
4. पित्रयेको को छोड़कर अन्य जो भी वस्तु व्यक्ति को प्रभावित करती है, उसे________ कहते है।
5. “वातावरण में वे सभी बाह्य तत्व आ जाते है, जिन्होंने व्यक्ति को अपना जीवन प्रारम्भ करने के समय से प्रभावित किया है।’’ यह कथन किसका है।
6. गुणवत्ता परक शिक्षा के लिए यह जरूरी है कि छात्रों का अलग-अलग_______________ या वर्गीकरण किया जाना चाहिए।
7. समूह के लिएबनाए गए पाठ्यक्रम को _______________ न होकर_______________ होना चाहिए ताकि उसमें आवश्यकतानुसार परिर्वतन किया जा सकें।

12.7 सारांश

इस इकाई में हमलोगों ने वैयक्तिक विभिन्नता के अर्थ एवं प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त की। हमने जाना कि वैयक्तिक विभिन्नता का संबंध वस्तुतः जीवों या प्राणियों के गुणों या विशेषताओं से होता

है। इसी के आधार पर हम वैयक्तिक विभिन्नता को दो प्रमुख श्रेणियों में रखते हैं- व्यक्ति के अंदर की भिन्नताएँ एवं एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्नताएँ।

वैयक्तिक विभिन्नता को निर्धारित करने वाले कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं- जिनमें शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विभिन्नता, उपलब्धि, भाषा विकास, अभिरूचियों एवं अभिक्षमता, यौन, व्यक्तित्व एवं ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक क्षमताएँ प्रमुख है।

वैयक्तिक विभिन्नता में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान आनुवांशिकता एवं वातावरण का होता है। इन्हीं के द्वारा वैयक्तिक विभिन्नता जीवों या मनुष्यों में पाई जाती है।

वैयक्तिक विभिन्नता का अध्ययन शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। जिसके माध्यम से शिक्षा के समस्याओं को दूर किया जा सकता है। वे महत्त्वपूर्ण कारक समूहीकरण या वर्गीकरण, पाठ्यक्रम, शारीरिक भिन्नता, शिक्षण विधियाँ, व्यावसायिक निर्देशन तथा गृह कार्य है। इनको अपनाकर हम सभी बालकों को उचित शिक्षा दे सकते है।

12.8 शब्दावली

1. **वैयक्तिक विभिन्नता**-‘व्यक्तियों में किसी एक विशेषता या अनेक विशेषताओं को लेकर पाये जाने वाली भिन्नतायें या अन्तर।’
2. **आनुवांशिकता-** जीव- गुणों का एक पीढ़ी से दूसरी में स्थानांतरण

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ‘व्यक्तियों में किसी एक विशेषता या अनेक विशेषताओं को लेकर पाये जाने वाली भिन्नतायें या अन्तर।’
2. स्कीनर द्वारा बताई गई वैयक्तिक विभिन्नता कीविशेषताऐं हैं –विभिन्नता,प्रसामान्यता, वृद्धि की विभिन्नता दरअधिगम की विभिन्नता दर,शीलगुणों में परस्पर संबंध
3. डगलस और हालैंड
4. वातावरण
5. वुडवर्थ व मार्क्विस का
6. समूहीकरण
7. कठोर,लचीला

12.10संदर्भग्रंथ

1. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 (2004) उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निगं प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

12.11निबंधात्मक प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ को समझाइएँ।
2. वैयक्तिक विभिन्नता के विशेषताओं को लिखें।
3. वैयक्तिक विभिन्नता को निर्धारित करने वाले क्षेत्रों का वर्णन करे।
4. वैयक्तिक विभिन्नता में आनुवांशिकी एवं वातावरण के भूमिका की चर्चा करे।
5. वैयक्तिक विभिन्नता के महत्त्वों पर प्रकाश डालें।

इकाई-13बुद्धि : इसकाअर्थ, परिभाषायें, IQ केसन्दर्भमेंबुद्धिमापन

Intelligence: Its Meaning, Definitions, Measurement of Intelligence in terms of IQ

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा
13.4 बुद्धिकेप्रकार
13.5 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ
13.6 बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण
13.7 बुद्धि लब्धि की सीमाएँ तथा विचलन बुद्धि लब्धि
13.8 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिताएँबुद्धि परीक्षण की सीमाएँ
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
13.12 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें
13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

बुद्धि के कारण ही, मानव अन्य सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धिचाहे मनुष्य की जैसी भी योग्यता हो लेकिन ये मानव की खुद के लिए व अंतोगत्वा राष्ट्र की प्रगति के लिए एक अहम निर्धारक तत्व हैं। अत: इस योग्यता को जानने, जॉचने व परखने के लिए मनुष्य सभ्यता के शुरूआती दौर से ही प्रयासरत व जिज्ञासु रहा है। इस इकाई में आपको बुद्धि : इसका अर्थ, परिभाषायें, IQ के सन्दर्भ मेंबुद्धि मापनआदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाएगी ताकि आप इसके सही स्वरूप को जान सकें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनके पश्चात आप-

- बुद्धि को परिभाषित कर सकेंगे।
- बुद्धि की प्रकृति को बता पायेंगें।
- IQ के सन्दर्भ मेंबुद्धि मापन की व्याख्या कर सकेंगे।
- बुद्धि मापन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- बुद्धि के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगें।
- बुद्धि मापन के गुण-दोषों को स्पष्ट कर सकेंगे।

13.3 बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा

बुद्धि वह योग्यता है जिससे मनुष्य अपनी नई आवश्यकताओं के अनुकूल अपने चिंतन को चेतन रूप से अभियोजित कर लेता है। बुद्धि को मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है। आज तक बुद्धि की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है। कोई इसे समायोजन की योग्यता मानते हैं तो कोई मानव की समस्त वैश्विक योग्यता। कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिकों द्वारा बुद्धि को कुछ इस तरह परिभाषित किया गया है-

टरमन के अनुसार, ‘‘बुद्धि अमूर्त विचारों के बारे में सोचने की योग्यता है।‘
स्टर्न के अनुसार, ‘‘बुद्धि एक सामान्य योग्यता है जिसके बारे द्वारा व्यक्ति नई परिस्थितियों में अपने विचारों को जानबूझकर समायोजित कर लेता है।‘‘
वुडवर्थ के अनुसार, ‘‘बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।‘‘
स्टर्न के अनुसार, ‘‘बुद्धि जीवन की नई परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुरूप समायोजन की सामान्य योग्यता है।‘
बकिंघम के अनुसार, ‘‘सीखने की शक्ति ही बुद्धि की है।‘
रायबर्न के अनुसार, ‘‘बुद्धि वह शक्ति है, जो हमको समस्याओं का समाधान करने के उदेश्यों को प्राप्त करने की क्षमता देती है।‘‘

गाल्ट्न के अनुसार, ‘‘बुद्धि पहचानने तथा सीखने की शक्ति है।‘

मैक्डूगल के अनुसार, ‘‘बुद्धि पूर्व अनुभवों के प्रकाश में जन्मजात प्रवृत्ति को सुधारने की योग्यता है।‘

वेश्लर, के अनुसार, बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है अर्थात् बुद्धि को कई तरह की क्षमताओं का योग माना है।"

स्टोडार्ड के अनुसार ''बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।''

राबिन्सन तथा राबिन्सन, ने भी बुद्धि को संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है।

बोरिंग, के अनुसार," बुद्धि वही है, जो बुद्धि परीक्षण मापता है।

बुद्धि की प्रकृति : इन सभी परिभाषाओं से बुद्धि की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला जा सकता है-

1. बुद्धि वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करने की क्षमता है।
2. बुद्धि सीखने की क्षमता है।
3. बुद्धि अमूर्त चिंतन करने की क्षमता है।
4. बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का समग्र योग है।
5. यह व्यक्ति के समस्या समाधान करने की योग्यता को प्रदर्शित करता है।
6. बुद्धि द्वारा ही किसी समस्या के समाधान में गत अनुभूतियों का लाभ मिलता है।
7. बुद्धि विवेकशील चिंतन करने की योग्यता है।
8. बुद्धि को प्रत्यक्ष व्यवहार के आधार पर मापा जा सकता है।
9. बुद्धि के विकास के लिए आनुवांशिकी व वातावरण दोनों ही उत्तरदायी कारक है।
10. यह अपनी ऊर्जा को किसी कार्य को करने में संकेन्द्रण की क्षमता है।
11. बुद्धि मानसिक परिपक्वता का द्योतक हैं।
12. यह आगमन विधि व निगमन विधि द्वारा तर्क करने की योग्यता है।
13. यह उच्च श्रेणी के चिंतन प्रक्रिया के लिए आवश्यक हैं।
14. यह एक प्रत्यक्षण/सूझ की योग्यता है।
15. यह जटिल, कठिन, मितव्यय, अमूर्त व सामाजिक मूल्यों वाले कार्य को करने की योग्यता है।
16. बुद्धि शाब्दिक व अशाब्दिक योग्यता है।
17. बुद्धि एक परिकल्पित सम्प्रत्यय है।

18. बुद्धि को सतर्कता, धारणा, विचार एवं प्रतीक, स्वयं की आलोचना करने की क्षमता, आत्मविश्वास और तीव्र प्रेरणा की क्षमता के रूप में समझा जा सकता है।
19. बुद्धि में व्यक्तिगत भिन्नतायें पायी जाती है।
20. बुद्धि को किसी कार्य करने की प्रणाली के द्वारा अवलोकन किया जा सकता है।

13.4बुद्धिकेप्रकार

बुद्धि के विभिन्न परिभाषाओं और सिद्धांतों से इसके स्वरूप व प्रकार का पता चलता है। बुद्धि का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिसे किसी एक कारक (Factor) या क्षमता के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है। ई0एल0 थार्नडाईक, डोनेल्ड हेब और वर्नन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को निम्न प्रकारों में विभक्त किया है:-

1. **आनुवांशिक क्षमता के रूप में बुद्धि (Intelligence as Genetic Capacity):-** इसके अनुसार बुद्धि को पूर्णत: वंशागत माना जाता है। इसे हेबब (Hebb, 1978) ने बुद्धि 'ए' (Intelligence 'A') की संज्ञा दी है। स्पष्टत: यह बुद्धि का एक जीनोटाइपिक (Genotypic) प्रकार है तथा इसमें बुद्धि को व्यक्ति का आनुवांशिक गुण माना जाता है।
2. **अवलोकित व्यवहार के रूप में बुद्धि (Intelligence as an observable behaviour):-** इस परिप्रेक्ष्य में बुद्धि को आनुवांशिकता व वातावरण के अंत:क्रिया का परिणाम माना जाता है। जिस सीमा तक व्यक्ति नये वातावरण या अपने वर्तमान वातावरण के साथ समायोजित करता है, इस सीमा तक उसे बुद्धिमान समझा जाता है। इसे हेब्ब ने बुद्धि 'बी' (Intelligence 'B') की संज्ञा दी है जिसका अर्थ फेनोटाइपिक (Phenotypic) प्रारूप पर आधारित है।
3. **परीक्षण श्रेयांक के रूप में बुद्धि (Intelligence as test score):-** बुद्धि एक परिकल्पनात्मक संप्रत्यय है। इसके मापन के लिए इसका संक्रियात्मक परिभाषा का होना आवश्यक है। बोरिंग के अनुसार ''बुद्धि वही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है''। इसे हेबब ने बुद्धि 'सी' (Intelligence 'C') की संज्ञा दी है।

सैट्टलर (Sattler, 1974) के अनुसार बुद्धि 'ए''बी' तथा 'सी' से संबंधित बहुत से ऐसे कारक हैं जो परीक्षार्थी के परीक्षण निष्पादन को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में परीक्षार्थी की संज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक विशेषतायें, परीक्षक की विशेषताएं व परीक्षा की विशेषताओं से संबंधित तत्व हैं। 'ए''बी' तथा 'सी' बुद्धि में सिर्फ 'सी' बुद्धि को ही परीक्षण द्वारा मापा जा सकता है।

थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है:-

1. **अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence):-** यह बुद्धि अमूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है। यह विचारों के परिचालित करने की क्षमता से संबंधित है।
2. **मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence):-** यह बुद्धि मूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है। यह वस्तुओं के परिचालित करने की क्षमता से संबंधित है।
3. **सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence):-** यह बुद्धि सामाजिक समायोजन की क्षमता से संबंधित है। यह बुद्धि व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाने के लिए काम आती है।

इसके अतिरिक्त आजकल बुद्धि के और दो प्रकारों की चर्चा की जाती है, जो निम्नलिखित है:-

1. **संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence):-** यह बुद्धि अपने संवेग व दूसरों के संवेगों को समझने में सहायक है। यह संवेगात्मक समस्याओं को हल करने में मदद करती हैं।
2. **आध्यात्मिक बुद्धि (Spiritual Intelligence):-** यह व्यक्ति के आध्यात्मिक परिपक्वता का सूचकांक है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति स्व अनुशासित, कर्तव्यपरायण, परोपकारी, चेतना का विकसित स्वरूप वाले होते हैं। इसके सोचने का तरीका मानवतावादी उपागम पर आधारित होता है।

अभ्यास प्रश्न

1...................बुद्धि व्यक्ति के आध्यात्मिक परिपक्वता का सूचकांक है।

2.....................बुद्धि अपने संवेग व दूसरों के संवेगों को समझने में सहायक है।

3.....................बुद्धि अमूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है।

4. बुद्धि .... जिसका अर्थ फेनोटाइपिक (Phenotypic) प्रारूप पर आधारित है।

5. बुद्धि वही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है''। इसे हेबब ने बुद्धि..........की संज्ञा दी है।

13.5 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ (Meaning of Intelligence Measurement or Testing)

बाह्य व्यवहार द्वारा मानसिक योग्यता, संज्ञानात्मक परिपक्वता और समायोजन की क्षमता का मापन बुद्धि मापन कहलाता है। बुद्धि मापन का कार्य विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के माध्यम से किया जाता

हे। इस परीक्षणों में सम्मिलित पदों की प्रकृति व प्रकार के आधार पर बुद्धि लब्धि सूचकांक तैयार किया जाता है।

बुद्धि मापांक के अवयव (Components of Intelligence Quotient)

1. **तैथिक या कालक्रमिक आयु (Chronological Age):-** किसी व्यक्ति के वास्तविक जन्मतिथि से वर्तमान समय के अवधि को तैथिक या कालक्रमिक आयु की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति की कालक्रमिक आयु (chronological age, CA) जन्म लेने के बाद बीत चुकी अवधि होती है। इसकी जानकारी व्यक्ति (परीक्षार्थी) या उनके माता-पिता से पूछकर अथवा जन्मकुंडली, विद्यालय के रिकार्ड (Record) को देखकर प्राप्त की जा सकती है।
2. **मानसिक आयु (Mental Age):-** सर्वप्रथम 1905 में अल्फ्रेड बिने तथा थियोडोर साइमन (Theodore Simon) ने औपचारिक रूप में बुद्धि के मापन का सफल प्रयास किया। 1908 में अपनी मापनी का संशोधन करते समय उन्होंने मानसिक आयु (Mental Age, MA) का संप्रत्यय दिया। मानसिक आयु के माप का अभिप्राय है, किसी व्यक्ति के मानसिक परिपक्वता का सूचकांक अर्थात किसी व्यक्ति का बौद्धिक विकास अपनी आयु वर्ग के अन्य व्यक्तियों की तुलना में कितना हुआ है। यदि किसी बच्चे की मानसिक आयु 5 वर्ष है तो इसका अर्थ है कि किसी बुद्धि परीक्षण पर उस बच्चे का निष्पादन 5 वर्ष वाले बच्चे के औसत निष्पादन के बराबर है।
3. **बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ):-** 1912 में विलियम स्टर्न ने बुद्धि को मापने के लिए मानसिक लब्धि के संप्रत्यय का विकास किया जिसका सूत्र निम्न प्रकार से है।

$$\text{मानसिक लब्धि (Mental Quotient)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{कालानुक्रमिक आयु}}$$

1916 में टरमन (Terman) ने मानसिक लब्धि के स्थान पर बुद्धि लब्धि के संप्रत्यय को जन्म दिया।

$$\text{बुद्धि लब्धि (IQ)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{कालानुक्रमिक आयु}} x100$$

अर्थात् किसी व्यक्ति की मानसिक आयु को उसकी कालानुक्रमिक आयु से भाग देने के बाद उसको 100 से गुणा करने से उसकी बुद्धि लब्धि प्राप्त हो जाती है। गुणा करने में 100 की संख्या का उपयोग दशमलव बिन्दु समाप्त करने के लिए किया जाता है।

इस सूत्र के माध्यम से बुद्धि लब्धि के मापन में तीन प्रकार की स्थितियाँहो सकती है:-

1. जब मानसिक आयु (MA) = कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ = 100 होगा।
2. जब मानसिक आयु (MA)>कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।
3. जब मानसिक आयु (MA)< कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से कम होगा।

उदाहरण के लिए एक 8 वर्ष के बच्चे की मानसिक आयु (MA)10 वर्ष हो तो उसकी बुद्धि लब्धि (IQ)125 (10/8x100) होगी। परन्तु उसी बच्चे की मानसिक आयु यदि 6 वर्ष होती तो उसकी बुद्धि लब्धि 75 (6x100/8) होती। प्रत्येक आयु स्तर पर व्यक्तियों की समष्टि की औसत बुद्धि लब्धि 100 होती है।

अभ्यास प्रश्न

सही और गलत कथन का चयन करें।

6. बुद्धि लब्धि (IQ) = $\frac{\text{कालानुक्रमिक आयु}}{\text{मानसिक आयु}} x100$

7. जब मानसिक आयु (MA), कालानुक्रमिक आयु (CA) के समान हो तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।

8. जब मानसिक आयु (MA)>कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।
9. जब मानसिक आयु (MA)< कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।

13.6 बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण (Distribution of IQ Scores)

बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण किसी जनसंख्या में सामान्य प्रायिकता वितरण के अनुसार होता है। अधिकांश लोगों का बुद्धि लब्धि प्राप्तांक मध्य क्षेत्र में तथा बहुत कम लोगों के बुद्धि लब्धि प्राप्तांक बहुत अधिक या बहुत कम होते हैं। बुद्धि लब्धि प्राप्तांकों का यदि एक आवृति वितरण वक्र (Frequency Distribution Curve) बनाया जाए तो यह लगभग एक घंटाकार वक्र (Bell Shaped Curve) के सदृश होता है। इस वक्र को सामान्य वक्र (Normal Curve) कहा जाता है। ऐसा वक्र अपने केन्द्रीय माध्य के दोंनों ओर सममित (Symmetrical) आकार का होता है। एक सामान्य वितरण के रूप में बुद्धि लब्धि प्राप्तांकों के वितरण को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

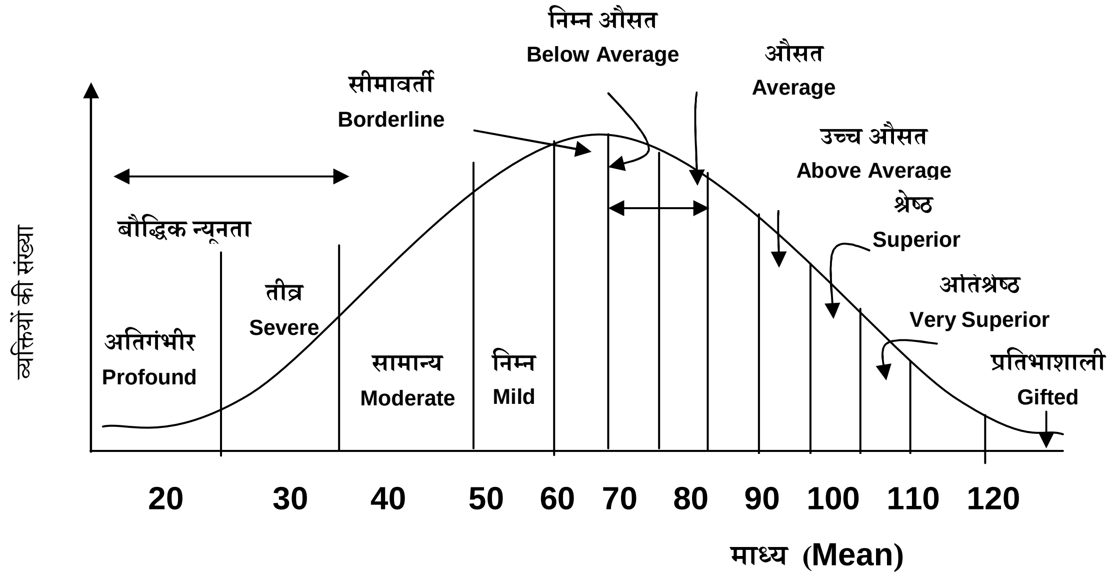

बुद्धि लब्धि प्राप्तांक (IQ Score)

किसी भी जनसंख्या में बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण सामान्य वक्र के अनुरूप होता है। किसी जनसंख्या की बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का माध्य(औसत) 100 होता है। जिन व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि प्राप्तांक 90 से 110 के बीच होती है उन्हें सामान्य बुद्धि वाला कहा जाता है। जिनकी बुद्धि लब्धि 70 से भी कम होती है वे मानसिक मंदन (Mental Retardation) से प्रभावित समझे जाते हैं और जिनकी बुद्धि लब्धि 130 से अधिक होती है वे आसाधारण रूप से प्रतिभाशाली समझे जाते है। किसी व्यक्ति के बुद्धि लब्धि प्राप्तांक की व्याख्या निम्न तालिका की मदद से की जा सकती है-

बुद्धि लब्धि के (IQ) के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

(IQ) वर्ग	वर्णनात्मक वर्गनाम	जनसंख्या प्रतिशत
130+	अतिश्रेष्ठ	2.2
120-130	श्रेष्ठ	6.7

110-119	उच्च औसत	16.1
90-109	औसत	50.0
80-89	निम्न औसत	16.1
70-79	सीमावर्ती मानसिक मंद	6.7
55-69	निम्न मानसिक मंद	
40-54	सामान्य मानसिक मंद	
25-39	तीव्र मानसिक मंद	2.2
0-24	अतिगंभीर मानसिक मंद	

इस तालिका में वर्णित पहले वर्ग के लोगों को बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली (Intelligence wise Gifted) कहा जाता है, जबकि दूसरे वर्ग के लोगों को मानसिक रूप से चुनौती ग्रस्त (Mentally Challenged) या मानसिक रूप से मंदित (Mentally Retarded) कहा जाता है। ये दोंनो वर्ग अपनी संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा अभिप्रेरणात्मक विशेषताओं मे सामान्य लोगों की अपेक्षा पर्याप्त भिन्न होते हैं।

13.7बुद्धिलब्धि(IQ) कीसीमाएँतथाविचलनबुद्धिलब्धि(Deviation Intelligence Quotient, DIQ):

बुद्धि लब्धि का संप्रत्यय दोष-रहित नहीं है। वर्तमान समय में IQ का संप्रत्यय संदिग्ध बन गया है, जिसमें कई त्रुटियॉ हैं। सामान्यत: यह माना जाता है कि 16 वर्ष की आयु तक मानसिक आयु का विकास होता है, इसके बाद इसमें ह्रास होता जाता है, जबकि कालानुक्रमिक आयु बढ़ती जाती है। MA का स्थिर हो जाना या इसमें ह्रास होना तथा CA का निरंतर बढ़ना, IQ के संप्रत्यय को भ्रामक बना देता है। अर्थात् यह संप्रत्यय वयस्क व्यक्तियों की बौद्धिक योग्यता को व्यक्त करने में सक्षम नहीं है। वेश्लर ने सन् 1981 में वेश्लर वयस्क बुद्धि मापनी (Wechsler Adult Intelligence Scale, WAIS) को संशोधित कर IQ के बदले विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, DIQ) का संप्रत्यय दिया जो मानसिक आयु तथा कालानुक्रमिक आयु का अनुपात न

होकर एक प्रामाणिक अंक (Standard Score) या Z-Score के सूत्र के आधार पर निकाला जाता है। Z-Score को निकालने का सूत्र निम्नवत् है:-

$$Z = \frac{\text{प्रयोज्य द्वारा प्राप्त अंक (X)} - \text{मध्यमान (M)}}{\text{मानक विचलन (SD)}}$$

Z score के आधार पर ही DIQ का सूचकांक निकाला जाता है।

DIQ = 100+16 Z

DIQ एक ऐसा मानक प्राप्तांक (Standard Score) है जिसका विकास आर्थर ओटिस (Arthur Otis) के शोधों से हुआ है। यह प्राप्तांक आज बुद्धि परीक्षण के मापन के क्षेत्र में एक लोकप्रिय मापक बन गया है। IQ के सूत्र के साथ समस्या यह उत्पन्न हुई कि व्यक्ति की कालानुक्रमिक आयु तो हमेशा बढ़ती है परन्तु 17-18 की आयु के बाद सामान्यत: नहीं बढ़ती है। अत: IQ का पारंपरिक सूचकांक एक भ्रामक परिणाम देता है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए DIQ के संप्रत्यय का विकास हुआ।

किसी बुद्धि परीक्षण पर एक व्यक्ति का प्राप्तांक उसी व्यक्ति की आयु समूह के अन्य व्यक्तियों के प्राप्तांकों के औसत (माध्य) से कितनी दूरी (प्रमाप विचलन) पर है, इसका पता DIQ से चलता है। DIQ ज्ञात करने के लिए प्रत्येक आयु समूह के लिए Z- प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है और फिर उस Z प्राप्तांक को एक ऐसे वितरण में बदल दिया जाता है जिसका माध्य =100 तथा प्रमाप विचलन =16 होता है। इसका सूत्र निम्न प्रकार से है:-

DIQ= 16 Z+ 100

जहाँ $Z = \frac{X - \text{माध्य}}{\text{प्रमाप विचलन}}$

X= व्यक्ति का किसी बुद्धि परीक्षण पर उसका प्राप्तांक

Wechsler Adult Intelligence Scale (WAIS) में DIQ का उपयोग किया जाता है। अगर किसी व्यक्ति का इस बुद्धि परीक्षण पर प्राप्तांक एक प्रमाप विचलन इकाई माध्य से ऊपर है, तो उसका DIQ= 16 x 1+100=116 होगा जिससे पता चलता है कि उसका DIQ अपनी आयु

समूह के व्यक्तियों के औसत से ऊपर है। उसी तरह से यदि किसी व्यक्ति का प्राप्तांक यदि माध्य से एक प्रमाप विचलन कम है तो उसका DIQ प्राप्तांक 84 होगा जिसका अर्थ है कि उसका DIQ अपने आयु समूह के व्यक्तियों के औसत से नीचे है। इस तरह DIQ में प्रत्येक उम्र स्तर पर प्रमाप विचलन (Standard deviation) का एक स्थिर मान होता है, जिसके परिणामस्वरूप IQ में होने वाला असामान्य परिवर्तनशीलता को नियंत्रित करता है।

वेश्लर के अनुसार IQ के साथ एक कठिनाई यह है कि 15-16 साल की आयु के बाद मानसिक आयु (MA) तेजी व क्रमिक रूप से नहीं बढ़ती है। दूसरी कठिनाई यह है कि व्यस्कों के लिए मानसिक आयु का संप्रत्यय अर्थहीन है। अत: IQ के बदले DIQ का संप्रत्यय बुद्धि का मूल्याकंन करने में ज्यादा सक्षम है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति का बुद्धिलब्धि प्राप्तांक से यह पता चलता है कि औसत जिसे IQ कहा गया है, से किसी बुद्धि परीक्षण पर व्यक्ति का निष्पादन कितना विचलित है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

10. DIQ= 16 (.......) + 100
11. DIQ एक .... है जिसका विकास आर्थर ओटिस (Arthur Otis) के शोधों से हुआ है।
12. DIQ का माध्य .... तथा प्रमाप विचलन .... होता है।
13. ....ने WAIS को संशोधित कर IQ के बदले विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, DIQ) का संप्रत्यय दिया।

13.8 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिताएँ

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षा में बुद्धि परीक्षण की अनेक उपयोगिताओं का वर्णन किया है जिनमें मुख्य हैं:-

1. कक्षोन्नति के निर्णय में।
2. शिक्षकों के चयन में।
3. विभिन्न प्रकार के निर्देशन देने में (व्यक्तिगत, व्यावसायिक व शैक्षिक निर्देशन में)।
4. छात्रों के श्रेणीकरण में।
5. शैक्षिक दुर्बलता के निदान में।
6. विद्यार्थियों के समायोजन में।

7. मानसिक बीमारियों के इलाज में।
8. कक्षा में प्रवेश लेने में।
9. अनुशासन की समस्या के समाधान में।
10. पाठ्यक्रमों तथा व्यवसाय चयन में।

13.9 बुद्धि परीक्षण की सीमाएँ (Limitations of Intelligence Testing)

बुद्धि परीक्षण कई उपयोगी उद्देश्य को पूर्ण करता है जैसे- चयन, परामर्श, निर्देशन, आत्मविश्लेषण और निदान में। जब तक ये परीक्षण किसी प्रशिक्षित परीक्षणकर्ता द्वारा नहीं उपयोग किए जाते, जानबूझकर या अनजाने में इनका दुरूपयोग हो सकता है। अप्रशिक्षित परीक्षणकर्ताओं द्वारा किए गए बुद्धि परीक्षणों के कुछ दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं:-

- किसी परीक्षण पर किसी व्यक्ति का खराब प्रदर्शन, उसके निष्पादन व आत्मसम्मान पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।
- परीक्षण द्वारा माता-पिता, अध्यापकों तथा बड़ों के भेद-भावपूर्ण आचरण को बढ़ावा मिलने का भय बना रहता है।
- मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय जनसंख्याओं के पक्ष में अभिनत बुद्धि परीक्षण समाज के सुविधावंचित समूहों से आने वाले बच्चों की IQ को कम आंकने की सम्भावना बनी रहती है।
- बुद्धि परीक्षण सृजनात्मक संभाव्यताओं और बुद्धि के व्यावहारिक पक्ष का माप नहीं कर पाता है और उनका जीवन में सफलता से ज्यादा संबंध नहीं होता। बुद्धि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों का एक संभाव्य कारक हो सकती है।

13.10 सारांश (Summary)

बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है अर्थात् बुद्धि को कई तरह की क्षमताओं का योग माना जाता है।

बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।

बुद्धि को संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना गया है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है।

बुद्धि को समझने के लिए बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है व सिद्धान्तों के रूप में इसे आबद्ध किया है। ये सिद्धान्त बुद्धि की मापन की प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है।

बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है। ई0एल0 थार्नडाईक, डोनेल्ड हेब और वर्नन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को विभिन्न प्रकारों में विभक्त किया है।

13.11 शब्दावली (Glossary)

- **बौद्धिक प्रतिभाशीलता** (Intellectual Giftedness):- विविध प्रकार के कृत्यों में श्रेष्ठ निष्पादन के रूप में प्रदर्शित असाधारण सामान्य बौद्धिक क्षमता।
- **बुद्धि** (Intelligence):- चुनौतियों का सामना करते समय, संसाधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करने, सविवेक चिंतन करने और जगत को समझने की क्षमता।
- **बुद्धि लब्धि** (Intelligence Quotient, IQ) :- कालानुक्रमिक आयु से मानसिक आयु का अनुपात इंगित करने वाला मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त एक सूचकांक।
- **बुद्धि परीक्षण** (Intelligence Test):- किसी व्यक्ति का स्तर मापने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
- **मानसिक आयु** (Mental Age) :- आयु के रूप में अभिव्यक्त बौद्धिक कार्यशीलता का मापक।
- **प्रसामान्य संभाव्यता वक्र** (Normal Probability Curve):- सममितीय घंटाकार, आवृति वितरण अधिकांश प्राप्तांक मध्य में पाये जाते है और दोनों छोर की ओर समानुपातिक ढंग से कम होते जाते है। बहुत से मनोवैज्ञानिक चर इसी रूप में वितरित होते है।

13.12 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

1. आध्यात्मिक बुद्धि (Spiritual Intelligence) 2. संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence) 3. अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) 4.बुद्धि 'बी' (Intelligence 'B') 5. बुद्धि 'सी' (Intelligence 'C') 6. गलत 7. गलत 8. सही 9. गलत 10. Z 11. मानक प्राप्तांक (Standard Score) 12. 100 और 16 13. वेश्लर

13.13 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें

- एन0सी0ई0आर0टी0 (2007)- मनोविज्ञान (कक्षा-12) के लिए पाठ्य पुस्तकें।
- सिंह, ए0के0 (2008)- शिक्षा मनोविज्ञान, भारतीभवन, पटना।
- भटनागर, ए0बी0 (2009)- अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आर0लाल0, प्रकाशक, मेरठ।
- बैरन आर0ए0 (2001)- साइकोलॉजी (पांचवा संस्करण), एलिन एंड बेकन।
- लाहे, बी0बी0 (1998)- साइकोलॉजी-एन इंट्रोडक्शन, टाटा मैक्ग्रा डिल।

13.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ) की सीमाओं का वर्णन करते हुए विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, IQ) का मूल्यांकन कीजिए।
2. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता व उनकी सीमाओं का वर्णन कीजिए।
3. बुद्धि लब्धि प्राप्तांक के वितरण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. "बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

इकाई 14 : बुद्धि के सिद्धान्त
Theories of Intelligence

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 बुद्धि के सिद्धान्त: महत्व एवं वर्गीकरण
14.4 बुद्धि के कारक सिद्धान्त
14.4.1 बुद्धि का द्विकारक सिद्धान्त
14.4.2 बुद्धि का समूहकारक सिद्धान्त
14.4.3 बुद्धि का बहुकारक सिद्धान्त
14.5 बुद्धि के कारक सिद्धान्त: विश्लेषण एवं निष्कर्ष
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

शिक्षा मनोविज्ञान से सम्बन्धित यह चौदहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप बता सकते हैं कि बुद्धि क्या है? बुद्धि की विभिन्न परिभाषाऐं क्या हैं?

इन परिभाषाओं से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि मनोवैज्ञानिकों में बुद्धि के स्वरूप के विषय में मत भिन्नता है तथा इनसे इस बात की भी व्याख्या नहीं हो पाती कि बुद्धि की संरचना क्या है अर्थात् बुद्धि में कौन-कौन से तत्त्व सम्मिलित हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा समय समय पर प्रस्तुत किये गये बुद्धि सम्बन्धी सिद्धान्तों द्वारा इस प्रष्न का उत्तर देने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में विस्तार से उन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है साथ ही उनका विश्लेषण भी किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप बुद्धि के विभिन्न कारक सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे और उन सिद्धान्तों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. बता सकेंगे कि बुद्धि के सिद्धान्त क्यों महत्वपूर्ण हैं।
2. बुद्धि के विभिन्न कारक सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बुद्धि के विभिन्न कारक सिद्धान्तों में अन्तर कर सकेंगे।
4. बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों को श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।

14.3 बुद्धि के सिद्धान्त: महत्व एवं वर्गीकरण

बुद्धि की संरचना क्या है और बुद्धि कैसे कार्य करती है, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर भिन्न-भिन्न निष्कर्ष निकाले हैं। इन निष्कर्षों को बुद्धि के सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इन सिद्धान्तों से बुद्धि की संरचना एवं कार्य विधि को समझने में सहायता मिलती है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि की संरचना, प्रकृति तथा उसके अर्थ का विश्लेषण, संश्लेषण सम्भव है। ये सिद्धान्त बुद्धि की जटिल प्रक्रिया को समझने में सहायता प्रदान करते हैं। इससे व्यक्ति में निहित इस शक्ति का सर्वांगीण विकास करने में सहायता मिलती है।

बुद्धि के संरचना की पूर्णरूपेण व्याख्या तब हो पाती है जब हम बुद्धि के सिद्धान्तों की ओर ध्यान देते हैं। वास्तव में मनोवैज्ञानिकों का प्रारम्भ से ही प्रयास रहा है कि बुद्धि की व्याख्या करने के लिए एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाए। इस प्रयास के परिणामस्वरूप हमें बुद्धि के कई सिद्धान्त प्राप्त हैं। इन सभी सिद्धान्तों का वर्गीकरण मूल रूप से निम्नांकित दो प्रमुख श्रेणियों में किया गया है-
(क) कारकीय सिद्धान्त (Factorial Theories)
(ख) प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त (Process-oriented Theories)

कारकीय सिद्धान्तों की व्याख्या निम्न प्रकार से है-

(क) कारकीय सिद्धान्त Factorial Theories

इसके अन्तर्गत उन मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को सम्मिलित किया गया है जिन्होंने बुद्धि की संरचना (structure) की व्याख्या कुछ कारकों के रूप में की है। प्रायः इन कारकों को विषेष सांख्यिकीय विधि (Statistical Analysis) जिसे कारक विश्लेषण (factor analysis) कहा जाता है, के आधार पर ज्ञात किया जाता है।
इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार से हैं-

1. एक-कारक सिद्धान्त(Unitary or Monarchic Theory)

2. स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त(Spearman’s Two Factor Theory)
3. थर्स्टन का समूहकारक सिद्धान्त(Thurstone Group Factor Theory)
4. बहुकारक सिद्धान्त (Multi Factor Theory)
5. कैटेल का सिद्धान्त(Catell’s Theory)
6. गार्डनर का बहु बुद्धि सिद्धान्त(Gardner’s Theory of Multiple intelligence)
7. पदानुक्रमिक सिद्धान्त (Hierarchical Theory)

इस श्रेणी में भी मनोवैज्ञानिकों के दो समूह हैं।

प्रथम समूह में वैसे मनोवैज्ञानिक हैं जिनका मत है कि बुद्धि समस्या समाधान करने, तर्क करने तथा ज्ञान प्राप्त करने की एक सामान्य एवं संगठित क्षमता है। स्पीयरमैन इस समूह के अग्रणी मनोवैज्ञानिक हैं जिनका मानना है कि किसी भी बौद्धिक कार्य के निष्पादन का आधार सामान्य कारक होता है।

द्वितीय समूह में उन वैज्ञानिकों को स्थान दिया गया है जो यह मानते हैं कि बुद्धि बहुत सारे भिन्न-भिन्न मानसिक क्षमताओं, जो करीब-करीब स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील होते हैं, का एक योग होता है। इसमें थर्स्टन, कैटेल, थार्नडाइक, वर्नन, गिलफोर्ड तथा गार्डनर आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

(ख) प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त(Process Oriented Theories)

लगभग 1960 तक बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या कारक सिद्धान्तों द्वारा काफी प्रभावित रही। परन्तु इसके बाद के वर्षों में जब संज्ञानात्मक मनोविज्ञान(Cognitive Psychology) पर अधिक जोर दिया जाने लगा, तो वैसी परिस्थिति में बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या नये-नये सिद्धान्तों द्वारा अधिक की जाने लगी। इन सिद्धान्तों को प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त कहा गया। इस सिद्धान्त की मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या उसके भिन्न-भिन्न कारकों के रूप में न करके उन बौद्धिक प्रक्रियाओं के रूप में की गयी है जिसे व्यक्ति किसी समस्या के समाधान करने में या सोच विचार करने में लगाता है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बुद्धि के लिए संज्ञान(Cognition) तथा संज्ञानात्मक प्रक्रिया (Cognitive process) का प्रयोग अधिक किया गया। ये सिद्धान्त निम्नांकित दो तथ्यों की व्याख्या से सम्बन्धित है-

1. व्यक्ति किसी दिये हुए समस्या का समाधान करने में किन-किन प्रक्रियाओं का सहारा लेता है?
2. व्यक्ति में बौद्धिक प्रक्रियाओं (intellectual processes) का विकास कैसे होता है? जैसे-जैसे व्यक्ति में परिपक्वता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे इन प्रक्रियाओं में किस ढंग का परिवर्तन आता है?

   इसके अन्तर्गत पियाजे, ब्रुनर, स्टेनवर्ग, जुआन पासकुएल लियोनी, जेन्सन आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त प्रमुखता से आते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. बुद्धि के सिद्धान्तों का वर्गीकरण किन दो प्रमुख श्रेणियों में किया गया है?
2. कारक सिद्धान्त के अन्तर्गत आने वाले दो प्रमुख सिद्धान्तों के नाम बताएँ?
3. कारकीय सिद्धान्त के अन्तर्गत बुद्धि की संरचना कुछ..............................के रूप में की गयी है।
4. प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त के अर्न्तगत बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या ....प्रक्रियाओं के रूप में की गयी है।
5. एक शब्द में उत्तर दीजिए-
   i. कारकीय सिद्धान्त में कारकों को ज्ञात करने हेतु प्रयोग की जाने वाली विशेष सांख्यिकीय विधि कौन सी है?
   ii. प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त के अन्तर्गत आने वाले किसी एक मनोवैज्ञानिक का नाम बताइये?
6. निम्न में उपयुक्त विकल्पों का चयन करें-

   (क) निम्न में से कौन कारकीय सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं हैं-

   (1) स्पीयरमैन (2) थर्स्टन

   (3) पियाजे (4) गार्डनर

14.4 बुद्धि के कारक सिद्धान्त

पिछले खण्ड में आप बुद्धि के सिद्धान्त के महत्व से परिचित हो चुके हैं साथ ही बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों के वर्गीकरण को भी जान चुके हैं। अब हम कुछ प्रमुख कारकीय सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

14.4.1 स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त (Spearman’s two factor theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन ने 1904 में किया। इन्होंने कारक विश्लेषण की प्रविधि द्वारा कई प्रयोगात्मक अध्ययनों से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया और बताया कि बुद्धि की संरचना में मूल रूप से दो कारक निहित होते हैं- सामान्य कारक (General factor या ‘g’ factor) तथा विशिष्ट कारक (Specific factor या ‘s’ factor)

सामान्य कारक या ‘g’कारक-स्पीयरमैन के अनुसार‘g’ कारक से तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति में कोई भी मानसिक कार्य करने की एक सामान्य क्षमता (general capacity) भिन्न-भिन्न

मात्रा में मौजूद होती है। यही कारण है कि 'g' कारक को स्पीयरमैन ने मानसिक ऊर्जा की संज्ञा प्रदान की है। स्पीयरमैन के अनुसार जिस व्यक्ति में 'g' कारक जितना ही अधिक होगा वह व्यक्ति उतना ही अधिक सभी तरह के मानसिक कार्यों को करने में प्रवीण होगा।

सामान्य कारक की विशेषताऐं:

स्पीयरमैन के अनुसार सामान्य कारक की दो प्रमुख विशेषताऐं हैं-

1. सामान्य कारक जन्मजात योग्यता है। इसलिए इस कारक पर किसी तरह के शिक्षण , प्रशिक्षण , पूर्व अनुभवों आदि का प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. प्रत्येक व्यक्ति में सामान्य कारक की मात्रा निश्चित होती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी व्यक्तियों में इसकी मात्रा समान होती है। वास्तव में, प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक मानसिक कार्य करने की जो क्षमता होती है, वह निश्चित नहीं होती है। किसी में इस क्षमता की मात्रा अधिक हो सकती है तथा किसी में इसकी मात्रा कम हो सकती है।

विशिष्ट कारक या 'S'कारक:स्पीयरमैन का यह भी विचार था कि प्रत्येक मानसिक कार्य करने में कुछ विशिष्टता की भी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि मानसिक कार्य एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्न होते हैं। स्पीयरमैन ने इसे ही 'S' कारक का नाम दिया है।

विशिष्ट कारक की विशेषताऐं

विशिष्ट कारक की निम्न विशेषताऐं बतायी गयी हैं-

1. विशिष्ट कारक का स्वरूप परिवर्तनशील होता है। एक मानसिक क्रिया में एक तरह के विशिष्ट कारक की आवश्यकता होती है तो दूसरे तरह की मानसिक क्रिया में दूसरे तरह के विशिष्ट कारक की आवश्यकता होती है।
2. एक ही व्यक्ति में विशिष्ट कारक की मात्रा भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए निश्चित नहीं होती है। एक कार्य के लिए एक व्यक्ति में विशिष्ट कारक की मात्रा अधिक हो सकती है परन्तु उसी व्यक्ति में दूसरे कार्य के लिए विशिष्ट कारक की मात्रा कम हो सकती है। जैसे, एक व्यक्ति में गाना गाने का विशिष्ट कारक अधिक हो सकता है परन्तु उसी व्यक्ति में पेन्टिंग की क्रिया के लिए जिस विशिष्ट कारक की जरूरत है, उसकी मात्रा कम हो सकती है।
3. विशिष्ट कारक पर व्यक्ति के प्रशिक्षण,पूर्व अनुभवों आदि का काफी प्रभाव पड़ता है। प्रशिक्षण देकर हम किसी खास मानसिक कार्य के लिए आवश्यक विशिष्ट कारक की मात्रा को बढ़ा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रशिक्षण देकर हम किसी को अच्छा 'तबलावादक' बना सकते हैं या अच्छा 'चित्रकार' बना सकते हैं।

स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त की उपयुक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि स्पीयरमैन के अनुसार बौद्धिक कार्य में सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक दोनों ही सम्मिलित होते हैं जिसे चित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

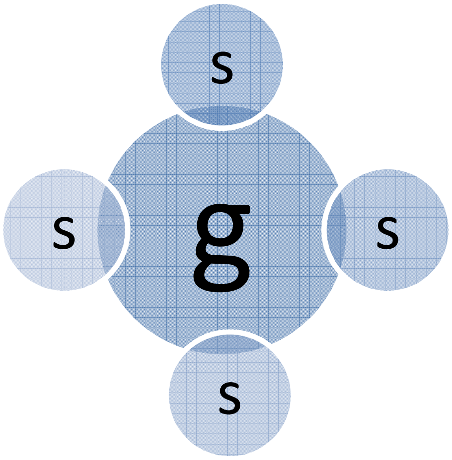

चित्र-14.1: स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त

स्पष्ट है कि इन दोनों कारकों में 'g' कारक को अधिक महत्व दिया गया है।'g' कारक कम होने से व्यक्ति को किसी भी बौद्धिक कार्य करने में पूर्ण सफलता नहीं मिलेगी। स्पीयरमैन के अनुसार विषयों में स्थानान्तरण केवल सामान्य कारकों के द्वारा ही सम्भव होता है। इसलिए स्पीयरमैन के बुद्धि सिद्धान्त को 'g' कारक सिद्धान्त भी कहा गया है। जबकि विशिष्ट कारक व्यक्ति की किन्हीं विषेष क्रियाओं में पाया जाता है। विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट कारक पाये जाते हैं। एक व्यक्ति में केवल एक विशिष्ट कारक पाया जाता है तो अन्य में कई विशिष्ट कारक निहित रहते हैं। व्यक्ति की विषय में प्रवीणता उसकी विशिष्ट योग्यताओं के अतिरिक्त सामान्य योग्यताओं पर निर्भर है जो उसकी सम्पूर्ण मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती है।

स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त की आलोचना:

1. स्पीयरमैन के सिद्धान्त में बुद्धि की व्याख्या सिर्फ दो कारकों अर्थात्'g' कारक तथा 'S' कारक के आधार पर की गयी है। थर्स्टन एवं गिलफोर्ड ने स्पीयरमैन के इस तथ्य की आलोचना की है और कहा है कि बुद्धि की व्याख्या करने के लिए अनेक कारकों की आवश्यकता पड़ती है जो केवल दो तत्त्वों या कारकों से सम्भव नहीं है।

2. स्पीयरमैन के अनुसार प्रत्येक कार्य को करने में कुछ सामान्य योग्यता की आवश्यकता पड़ती है और कुछ विशिष्ट योग्यता की। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक कार्य में अलग-अलग विशिष्ट योग्यता चाहिए। परन्तु व्यवहार में हम ऐसा नहीं पाते। अनेक कार्यों को मिलाकर ऐसे समूहों में बॉटा जा सकता है जिसमें एक ही प्रकार की योग्यता की आवश्यकता पड़ती है, जैसे- फोरमैन, मैकेनिक एवं इंजीनियर के कार्य में, या नर्सिंग, कम्पांउडर तथा डॉक्टर के व्यवसाय में।

इन आलोचनाओं के बावजूद स्पीयरमैन का बुद्धि सिद्धान्त बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और इसे मनोवैज्ञानिकों द्वारा बुद्धि के अन्य कारक सिद्धान्तों की नींव माना गया है।

अभ्यास प्रश्न

7. बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?
8. ....के अनुसार बुद्धि के दो तत्त्व होते हैं (1)........................ और (2)............................।
9. स्पीयरमैन के अनुसार ‘g’ कारक होता है-
    i. जन्मजात और निश्चित
    ii. जन्मजात और अनिश्चित
    iii. अर्जित और अनिश्चित
    iv. अर्जित और निश्चित
10. स्पीयरमैन के अनुसार‘S’ कारक है-
    i. अपरिवर्तनषील
    ii. निश्चित परिस्थितियों में परिवर्तनशील
    iii. कभी परिवर्तनशील और कभी अपरिवर्तनशील
    iv. इनमें से कोई नहीं

14.4.2 थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त (Thurstone’s group factor theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एल0 एल0 थर्स्टन ;1938 द्वारा किया गया है जो कई वर्षों तक किये गये कारक विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, बुद्धि की व्याख्या कई कारकों के आधार पर की जाती है न कि सिर्फ दो कारकों के आधार पर। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी बौद्धिक कार्य में अनेक छोटे-छोटे विशिष्ट कारक या तत्त्व नहीं पाये जाते हैं जो अलग अलग मानसिक क्षमताओं के द्योतक हों। साथ ही साथ

किसी बौद्धिक कार्य में‘g’ कारक की भी प्रधानता नहीं होती है। इस प्रकार थर्स्टन ने स्पीयरमैन के‘g’कारक की मान्यता को अस्वीकृत किया है।

थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त के अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं या क्षमताओं का एक सामान्य प्राथमिक कारक (common primary factor) होता है जो उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को आपस में सूत्र में बांधे रखता है तथा साथ ही साथ इन मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक क्रियाओं से भिन्न रखता है। ऐसी सभी मानसिक प्रक्रियाएँ जिनका एक प्राथमिक कारक होता है, आपस में सहसम्बन्धित होते हैं एवं एक साथ मिलकर समूह का निर्माण करते हैं। इस समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले कारक को प्राथमिक कारक (primary factor) की संज्ञा दी जाती है।

इसी तरह से दूसरे तरह की मानसिक प्रक्रियाओं को एक सूत्र में बाँधने वाला अन्य प्राथमिक कारक होता है। ऐसी सभी प्रक्रियाओं का एक अन्य समूह होता है। फिर तीसरे तरह की मानसिक क्षमताओं का एक तीसरा प्राथमिक कारक होता है जो उन सभी क्षमताओं को आपस में बांधकर रखता है।

इस तरह थर्स्टन के सिद्धान्त के अनुसार भिन्न-भिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ अपने अलग-अलग प्राथमिक कारकों द्वारा एक सूत्र में बाँधकर अलग-अलग समूह का निर्माण करती है। अतः बुद्धि में मानसिक क्षमताओं के कई समूह होते हैं जिनमें प्रत्येक समूह का अपना अलग-अलग प्राथमिक कारक होता है जो उन सभी मानसिक क्षमताओं को एक सूत्र में बांधे रखता है। ऐसे प्राथमिक कारक एक दूसरे से स्वतन्त्र हुआ करते है अर्थात् उनमें नाम मात्र का ही सहसम्बन्ध होता है। परन्तु किसी एक प्राथमिक कारक के अन्तर्गत आने वाली सभी तरह की मानसिक क्षमताएँ आपस में काफी सह-सम्बन्धित होती हैं।

थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्राथमिक या प्रारम्भिक मानसिक क्षमताओं (Primary Mental Abilities) का स्पष्टीकरण किया है। उन सात प्रारम्भिक मानसिक क्षमताओं का वर्णन निम्नांकित है-

1. **शाब्दिक अर्थ क्षमता(Verbal meaning ability or V)** - शब्दों तथा वाक्यों के अर्थ एवं शाब्दिक सम्बन्धों को समझने की क्षमता को शाब्दिक अर्थ क्षमता कहा गया है जिसे अक्षर ‘V’ द्वारा सम्बोधित किया गया है। शाब्दिक सम्बन्धों को समझने की क्षमता को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

   उदाहरण- पैर: जूता:: हाथ:? (अंगूर, सिर, दस्ताना, अंगुली)

   उत्तर- दस्ताना

2. **शब्द प्रवाह क्षमता (Word fluency ability or W)**- दिए हुए शब्दों से असम्बन्धित या अलग शब्दों को त्वरित गति से सोचने की क्षमता को शब्द प्रवाह कहा गया है। इसे अक्षर 'w' से सम्बोधित किया गया। इसे भी हम नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं-

   उदाहरण- निम्नांकित अक्षरों को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि जानवरों के नाम बन जाएँ -

अक्षर	उत्तर
ebar	bear
odg	dog
act	cat
ehn	hen

   उदाहरण- क अक्षर से शुरु होने वाले शब्द लिखो।

   (उत्तर- कमल, कलम, कबूतर, कौआ, कल..........)

3. **आंकिक क्षमता (Numerical ability or N)**- परिशुद्धता (accuracy) तथा तीव्रता के साथ आंकिक गणना (manipulate) करने की क्षमता को आंकिक क्षमता कहा गया है और इसे अक्षर 'S' द्वारा सम्बोधित किया गया। उदाहरणार्थ-

		755
$(29)^2$	=	841
		872
		910

4. **स्थानिक क्षमता (Spatial ability or S) -** किसी दिए हुए स्थान (space) में काल्पनिक रूप से वस्तुओं के परिचालन (manipulate) करने की क्षमता को स्थानिक क्षमता कहा गया। इसे अक्षर 'S' से सम्बोधित किया गया। यह दो-तीन परिमाणों में स्थान स्मरण करने की सामर्थ्य है।

5. **तर्क क्षमता(Reasoning ability or R)**- वाक्यों के समूह या अक्षरों के समूह मे छिपे नियम (Principle) की खोज करने की क्षमता को तर्क क्षमता कहा गया। इसे अक्षर 'R' द्वारा सम्बोधित किया गया। निम्न उदाहरण के द्वारा यह स्पष्ट होता है-

   उदाहरण- गुप्त लेखन

S A W	5, 8, 3
S A T	5, 8, 6
W A S	3, 8, 5

बताओ कौन सा अक्षर किस अंक के लिए है?
उत्तर- S=5, W=3, A=8, T=6

6. **स्मृति क्षमता(Memory ability or M)-** किसी पाठ, विषय या घटना को शीघ्रता से स्मरण कर लेने की क्षमता को स्मृति क्षमता कहा गया। इसे अक्षर'M' से सम्बोधित किया गया। इसमें शब्दों के साथ कुछ अंक दिए रहते हैं, जैसे- Box 76, Chain 54, Fan 39, Lamp 80। अगले पृष्ठ पर वस्तु का संख्या क्रम दिया रहता है और प्रयोज्य को वस्तुओं के नाम बताने पड़ते हैं।

7. **प्रत्यक्षीकरण गति क्षमता(Perceptual Speed ability or P)-** किसी घटना या वस्तु की विस्तृतता(details) का तेजी से प्रत्यक्षीकरण करने की क्षमता इसके अन्तर्गत आती है। प्रत्यक्ष विवरणों को शीघ्रता एवं यथार्थता से ग्रहण करना, समानताओं एवं अन्तरों की शीघ्र पहचान करना इसी योग्यता से सम्बन्धित है। इसका सम्बोधन'P' अक्षर द्वारा किया गया। इसको स्पष्टता से निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है-

   उदाहरण-

696 352 456 696 870 230 696	980 552 666 630 980 240 980

स्तम्भ के उपर जो संख्याएँ लिखी हैं, उन्हें देखें। नीचे की संख्याओं में वे दुबारा कहाँ हैं? उन्हें रेखांकित करें।
इस तरह से हम देख सकते हैं कि थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में प्राथमिक क्षमताओं के आधार पर बुद्धि की व्याख्या की है। ये सभी क्षमताएँ एक दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं। इसकी संरचना को निम्न चित्र द्वारा भली - भाँति समझा जा सकता है-

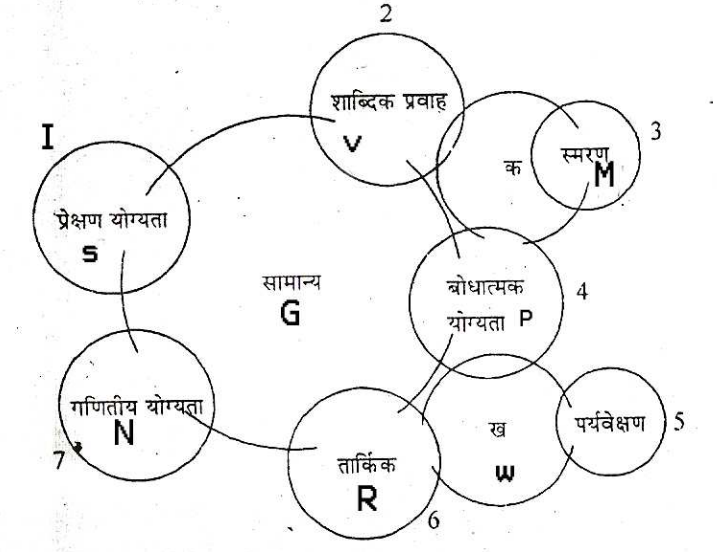

चित्र12.4: थर्स्टन के समूह तत्त्व सिद्धान्त की रेखीय प्रस्तुती।

चित्र 14.2: थर्स्टन का समूहकारक सिद्धान्त

उपर्युक्त चित्र में N आंकिक योग्यता, R तर्कक्षमता, Vशाब्दिक अर्थ क्षमता,W शब्द प्रवाह क्षमता,S स्थानिक क्षमता, M स्मृति क्षमता तथा P प्रत्यक्षीकरण गति क्षमता को दर्शाता है।

समूह कारक सिद्धान्त की आलोचना

एटकिन्सन तथा हिलगार्ड (Atkinson & Hilgard, 1983) ने थर्स्टन के सिद्धान्त की समीक्षा की और बताया कि इस सिद्धान्त में कुछ दोष भी है जो इस प्रकार है-

1. थर्स्टन ने इस बात पर पर्याप्त जोर दिया है कि उनके द्वारा प्रतिपादित सात प्राथमिक क्षमताएँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं अर्थात् उनमें सहसम्बन्ध नहीं है। परन्तु कई मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट रूप से पाया है कि ये सभी क्षमताएँ आपस में पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं हैं बल्कि वे बहुत हद तक सहसम्बन्धित हैं।
2. थर्स्टन के अनुसार चूँकि ये सभी सात क्षमताएँ आपस में स्वतन्त्र होती हैं, अतः 'g' कारक के समान कोई कारक वास्तव में नहीं होता है। इसी आधार पर थर्स्टन ने स्पीयरमैन के 'g' कारक को अस्वीकृत किया था। लेकिन जब सचमुच में ये सात क्षमताएँ स्वतन्त्र न होकर आपस में सहसम्बन्धित पाए गये तो ऐसी परिस्थिति में स्पीयरमैन के 'g' कारक को ही समर्थन मिल जाता है। थर्स्टन ने भी इस आलोचना को स्वीकार किया है और कहा है कि वे सात क्षमताएँ प्रथम क्रम के 'g' कारक नहीं हैं बल्कि द्वितीय क्रम के 'g' कारक हैं।
3. थर्स्टन के सिद्धान्त का आधार कारक विश्लेषण था। कारक विश्लेषण द्वारा कितनी तरह की क्षमताओं की पहचान की जा सकती है, यह तो निश्चित नहीं है। अतः थर्स्टन द्वारा यह

निश्चित कर देना कि बुद्धि में मूलतः सात ही तरह की प्राथमिक मानसिक क्षमताएँ होती हैं, न तो उचित है और न ही वैज्ञानिक।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी थर्स्टन का यह सिद्धान्त काफी लोकप्रिय सिद्धान्त है तथा स्पीयरमैन के सिद्धान्त से अधिक श्रेष्ठ माना गया है।

अभ्यास प्रश्न

11. बुद्धि के समूह कारक सिद्धान्त के प्रतिपादक का नाम बताएँ ?
12. समूह कारक सिद्धान्त के अन्तर्गत मानसिक योग्यताओं की संख्या है-
    (1) 5 (2) 7
    (3) 9 (4) 8
13. थर्स्टन के सिद्धान्त के अनुसार निम्न में से कौन सी योग्यता प्राथमिक योग्यता नहीं है-
    (1) आंकिक योग्यता (2) शाब्दिक अर्थ योग्यता
    (3) शब्द प्रवाह योग्यता (4) पढ़ने की तत्परता
14. थर्स्टन द्वारा वर्णित प्राथमिक मानसिक क्षमताओं के नाम लिखें।

14.4.3 थॉर्नडाइक का बहुकारक सिद्धान्त (Thorndike's Multiple factor theory)

थॉर्नडाइक ने स्पीयरमैन के सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कहा है कि बुद्धि सिर्फ दो कारकों या तत्त्वों के मिलने से नहीं होता है बल्कि बुद्धि की रचना बहुत से छोटे-छोटे तत्त्वों या कारकों के मिलने से होती है। प्रत्येक कारक या तत्त्व एक विशिष्ट मानसिक क्षमता का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा साथ ही साथ एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं। ऐसे ही बहुत से कारकों के आपस में मिलने से बुद्धि की रचना होती है, ठीक वैसे ही जैसे अनेक ईंटों के मिलने से एक मकान का निर्माण होता है। जिस तरह प्रत्येक ईंट एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हुए भी अपना योगदान करके एक मकान का निर्माण करता है, ठीक उसी तरह से अनेक विशिष्ट क्षमताएँ जो एक दूसरे से स्वतन्त्र होती है, मिलकर बुद्धि का निर्माण करती है। अतः थॉर्नडाइक के सिद्धान्त के अनुसार कोई सामान्य बुद्धि नाम की चीज नहीं होती है जैसा कि स्पीयरमैन ने कहा था। बुद्धि कई विशेष मानसिक क्रियाओं या क्षमताओं का एक योग है।

थॉर्नडाइक के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के भिन्न-भिन्न मानसिक क्रियाओं के बीच सहसम्बन्ध का कारण 'g' कारक नहीं होता है बल्कि उन मानसिक क्रियाओं में कई उभयनिष्ठ तत्त्व पाये जाते हैं। दिये हुए मानसिक क्रियाओं में जितने ही अधिक उभयनिष्ठ तत्त्व (common elements होंगे, उनके बीच समसम्बन्ध उतना ही अधिक होगा। उदाहरणार्थ- मान लीजिए कि मानसिक कार्य 'X' तथा 'Y' में अलग-अलग 10-10 तत्त्वों या कारकों की आवश्यकता है। इन तत्त्वों या कारकों में से 8 ऐसे तत्त्व हैं, जो इन दोनों तरह की मानसिक क्रियाओं को पूरा करने में उभयनिष्ठ (Common) हैं।

ऐसी परिस्थिति में दोनों मानसिक कार्यों के बीच उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध होगा। दूसरी ओर यदि यह मान लिया जाय कि इन दोनो मानसिक कार्यों के बीच दो-दो ही तत्त्व ऐसे हैं जिन्हें उभयनिष्ठ कहा जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों कार्यों के बीच धनात्मक सम्बन्ध तो होगा, परन्तु काफी कम। इस प्रकार जब दो मानसिक कार्यों के प्रतिपादन में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है तो यह स्पष्ट है कि उसमें उभयनिष्ठ कारक (common factor) निहित है। इन तत्त्वों या कारकों की उभयष्ठिता के आधार पर थार्नडाइक ने स्पीयरमैन के 'g' कारक की एक तरह से आलोचना की है।

थॉर्नडाइक का यह भी विचार था कि कुछ मानसिक कार्य ऐसे होते हैं जिनके तत्त्वों या कारकों में उभयनिष्ठता (commonness) कम होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक मानसिक कार्य का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। तत्त्वों या कारकों के बीच इस तरह की अ-उभयनिष्ठता (uncommonness) के कारण ही दो मानसिक कार्यों या उनके मापने के लिए बने परीक्षणों के बीच सहसम्बन्ध पूर्ण नहीं होता है। इस तरह की व्याख्या देकर थार्नडाइक ने स्पीयरमैन के 'S' कारक की भी आलोचना की है क्योंकि इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि दो मानसिक कार्यों या उन्हें मापने के लिए बने परीक्षणों के बीच कम सहसम्बन्ध 'S' कारक के कारण नहीं होता है, बल्कि इसलिए होता है क्योंकि इन दोनों मानसिक कार्यों के तत्त्वों या कारकों के बीच अ-उभयनिष्ठता होती है।

थॉर्नडाइक के द्वारा वर्णित बहुकारक सिद्धान्त के आधार पर बुद्धि की संरचना को चित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

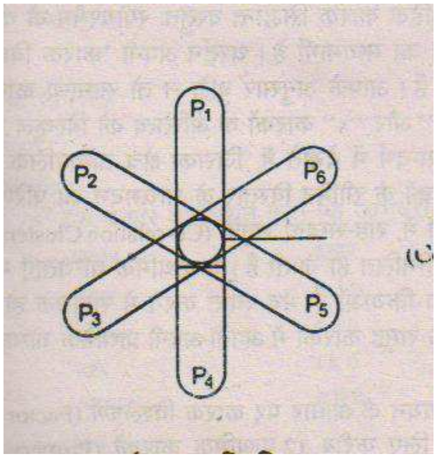

चित्र 14.3: थॉर्नडाइक का बहुकारक सिद्धान्त

प्रस्तुत चित्र में esa P_1, P_2, P_3, P_4,……P_6आदि विभिन्न मानसिक योग्यताएँ हैं और C उनमें उभयनिष्ठ (common factor) कारक हैं।

इस प्रकार इस सिद्धान्त में स्पीयरमैन के सामान्य कारक (General factor) की अवहेलना करके अपने द्वारा प्रतिपादित उभयनिष्ठ कारक को महत्व दिया गया है। यह उभयनिष्ठ कारक कुछ अंश में तो समस्त मानसिक क्रियाओं में पाया जाता है।

थार्नडाइक के सिद्धान्त की आलोचना

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो थार्नडाइक का सिद्धान्त स्पीयरमैन के सिद्धान्त से मौलिक रूप से भिन्न नहीं है। वास्तव में थार्नडाइक ने 'g' कारक को एक तरह से स्वीकार किया क्योंकि स्पीयरमैन ने जिसे सामान्य कारक या तत्त्व कहा है उसे थार्नडाइक ने उभयनिष्ठ तत्त्व (common element) कहा है तथा जिसे स्पीयरमैन ने विशिष्ट कारक या 'S' कारक कहा है उसे थार्नडाइक ने अ-उभयनिष्ठ (uncommon factor) कहा है।

यदि इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर है तो सिर्फ इतना कि स्पीयरमैन ने 'g' कारक को छोटी-छोटी इकाइयों या उपकारकों (subfactors) में नहीं बाँटा है जबकि थार्नडाइक ने इसे कई उपकारकों का योग माना है।

अभ्यास प्रश्न

15. बहुकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन एल0 एल0 थर्स्टन ने किया। (सत्य/असत्य)
16. द्विकारक सिद्धान्त के प्रतिपादक थार्नडाइक हैं। (सत्य/असत्य)
17. थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि कई विशेष मानसिक क्षमताओं का योग है। (सत्य/असत्य)
18. थार्नडाइक के अनुसार व्यक्ति के भिन्न-भिन्न मानसिक क्रियाओं के मध्य सहसम्बन्ध का कारण होता है-
    - i. सामान्य कारक (general factor)
    - ii. विशिष्ट कारक (specific factor)
    - iii. उभयनिष्ठ कारक (common factor
    - iv. समूह कारक (group factor)

14.5 बुद्धि के कारक सिद्धान्त विश्लेषण एवं निष्कर्ष

पिछले खण्ड में आप बुद्धि के मुख्य कारक सिद्धान्तों का अध्ययन कर चुके हैं। उपरोक्त वर्णित सिद्धान्तों के द्वारा बुद्धि की संरचना को विभिन्न प्रकार से समझाने का प्रयास किया गया। स्पीयरमैन ने जहाँ दो कारकों का उल्लेख किया वहीं थर्स्टन ने बुद्धि की संरचना में मुख्य रूप से सात प्राथमिक

मानसिक क्षमताओं को स्वीकार किया जबकि थार्नडाइक ने माना कि बुद्धि की संरचना बहुत से छोटे-छोटे तत्त्वों या कारकों के मिलने से होती है।

स्पीयरमैन ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि दो कारकों का योग है। प्रथम कारक को उन्होंने सामान्य कारक (‘g’ कारक) तथा दूसरे को विशिष्ट कारक (‘S’कारक) कहा। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामान्य कारक या ‘g’ कारक व्यक्ति के सभी कार्यों में सहायक होता है जबकि विशिष्ट कारक या ‘S’कारक कारक कार्य विशेष के लिए ही सहायक होता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के विशिष्ट कारकों को S_1, S_2, S_3, S_4 आदि से व्यक्त किया।

दूसरे शब्दों में, सामान्य बुद्धि नाम की कोई चीज अवश्य है जो सभी क्रियाओं में विद्यमान रहती है और इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट योग्यताएँ होती हैं जिनके द्वारा मनुष्य विशिष्ट समस्याओं का सामना करता है। उदाहरणस्वरूप किसी व्यक्ति की हिन्दी की योग्यता में कुछ तो उसकी सामान्य बुद्धि होती है और कुछ भाषा सम्बन्धी विशिष्ट योग्यता होती है। अर्थात $g+s_1$या गणित में उसकी योग्यता कारण होगा $g+s_2$ । इस प्रकार कई विशिष्ट योग्यताएँ हो सकती हैं। इस आधार पर व्यक्ति की पूर्ण बुद्धि (जिसे यदि ‘A’ की संज्ञा दे दी जाए) को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

$g+s_1+s_2+s_3+\ldots\ldots\ldots = A$

एल0 एल0 थर्स्टन ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि न तो बुद्धि किसी एक योग्यता का द्योतक है, न दो योग्यताओं का, न तीन योग्यताओं का और न अनेक योग्यताओं का, अपितु यह सामूहिक योग्यताओं के अनेक समूहों का योग है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि प्रत्येक ऐसे समूह का एक प्राथमिक कारक होता है जो समूह का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने इस प्रकार के सात प्राथमिक कारकों का उल्लेख किया । इस आधार पर बुद्धि की संरचना को संक्षेप में निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जाता है-

बुद्धि = N+V+S+W+R+M+P

जहाँ N आंकिक क्षमता, V षाब्दिक अर्थक्षमता,S स्थानिक क्षमता,W शब्द प्रवाह क्षमता, R तर्क क्षमता, M स्मृति क्षमता, P प्रत्यक्षीकरण गति क्षमता का द्योतक है।

थर्स्टन के अनुसार ये सात मानसिक क्षमताएँ ही बुद्धि के रूप में कार्य करती हैं। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि जिस मनुष्य में इन सात मानसिक क्षमताओं में जो क्षमता अधिक होती है वह व्यक्ति उसी के अनुकूल विकास करता है। दूसरे शब्दों में, थर्स्टन के प्राथमिक मानसिक क्षमताओं के आधार पर यह पता चल जाता है कि बुद्धि के खास-खास क्षेत्र में व्यक्ति कितना मजबूत या कमजोर है। उदाहरणस्वरूप, इन क्षमताओं के आधार पर यह आसानी से पता चल जाता है कि एक व्यक्ति शब्द प्रवाह तथा शाब्दिक बोध में बहुत मजबूत है किन्तु तर्क या विवेचना में बहुत कमजोर है।

थॉर्नडाइक ने बुद्धि की संरचना का वर्णन करते हुए कहा कि बुद्धि में सामान्य योग्यता या कारक (g कारक) जैसा कोई कारक नहीं होता अपितु इसके अन्तर्गत कई कारक होते हैं। किसी भी मानसिक क्रिया में कई कारक मिल कर कार्य करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि जिन अनुभवों में उद्दीपन

(Stimulus, S) और अनुक्रिया (Response, R)में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है उनका प्रयोग व्यक्ति भविष्य में उसी प्रकार की समस्याओं को हल करने में करता है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि किसी कारण यदि कोई व्यक्ति एक प्रकार के कार्यों को करने में दक्ष है तो यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे कार्यों में भी दक्ष होगा।

थॉर्नडाइक के अनुसार बुद्धि के कोई एक, दो या तीन कारक नहीं होते। बुद्धि में कारक उतने ही होते हैं जितनी कि मनुष्य की क्रियाएँ। ये विभिन्न कारक मिलकर एक उभयनिष्ठ कारक का निर्माण करते हैं। आंकिक, शाब्दिक, दिशा, तर्क, स्मरण तथा भाषण की योग्यता इसके अतिरिक्त कारक हैं। थार्नडाइक का यह मत सम्बन्ध अथवा संयोजना पर आधारित है। जितने अधिक सम्बन्ध होंगे, व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होगा।

निष्कर्ष

उपरोक्त सभी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त बुद्धि के स्वरूप एवं संरचना का बोध कराने एवं उसकी व्याख्या करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। ये सभी सिद्धान्त अपने-अपने ढंग से बुद्धि की संरचना में विभिन्न कारकों या तत्त्वों का योगदान स्वीकार करते हैं। सभी अपनी-अपनी दृष्टि से तर्क प्रस्तुत करते हैं और स्वयं को सही ठहराने का प्रयास करते हैं। वर्तमान समय में अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि बुद्धि में दोनों तरह की क्षमताएँ अर्थात् विभिन्न तरह के संज्ञानात्मक कार्यों एवं समस्याओं को ठीक ढंग से करने की सामान्य क्षमता तथा अन्य कई विशिष्ट क्षमताएँ सम्मिलित होती हैं। इन सभी सिद्धान्तों एवं विचारों का समन्वय करके ही हम बुद्धि की संरचना तथा उसके स्वरूप का उचित अवलोकन तथा मूल्यांकन कर सकते हैं। समन्वय के इस दृष्टिकोण को लेकर चला जाए तो हमें किसी भी बौद्धिक कार्य या मानसिक प्रक्रिया में निम्न प्रकार के कारक या तत्त्वों की उपस्थिति दृष्टिगोचर हो सकती है-

1. स्पीयरमैन द्वारा प्रतिपादित 'सामान्य कारक (g कारक) - जो सभी कार्यों में सामान्य होता है।
2. थर्स्टन द्वारा प्रतिपादित प्राथमिक कारक - जो विशिष्ट समूह के कार्यों में विद्यमान होता है।
3. विशिष्ट तत्त्व S_1, S_2, S_3 आदि जो अत्यन्त विशिष्ट कार्यों मे विद्यमान होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

19. थॉर्नडाइक के अनुसार बुद्धि दो कारकों का योग है। (सत्य/असत्य)
20. थर्स्टन के अनुसार बुद्धि सामूहिक योग्यताओं के अनेक समूहों का योग है। (सत्य/असत्य)
21. स्पीयरमैन के अनुसार बुद्धि अनेक मानसिक योग्यताओं का योग है। (सत्य/असत्य)
22. निम्न में से कौन सा जोड़ा सुमेलित नहीं है?

i. बहुकारक सिद्धान्त: कैटेल
ii. द्विकारक सिद्धान्त: स्पीयरमैन
iii. समूहकारक सिद्धान्त: एल0 एल0 थर्स्टन

23. अनुभवों में उद्दीपन - अनुक्रिया सम्बन्ध स्थापित होने का उल्लेख किया है-

(1) स्पीयरमैन ने (2) थर्स्टन ने

(3) पियाजे ने (4) थॉर्नडाइक ने

14.6 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात आप यह जान चुके हैं कि-

- बुद्धि के कई सिद्धान्त हैं जिन्हें मोटे तौर पर दो भागों में बांटा गया है- कारक सिद्धान्त तथा प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त। कारक सिद्धान्त में स्पीयरमैन, थर्स्टन, थार्नडाइक आदि का सिद्धान्त तथा प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त में पियाजे का सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण है।
- कारक सिद्धान्त के अन्तर्गत बुद्धि की संरचना की व्याख्या कुछ कारकों के रूप में की गयी है वहीं प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त के अन्तर्गत बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या उन बौद्धिक प्रक्रियाओं के रूप में की गयी है जिसे व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने में या सोच विचार करने में करता है।
- स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि की संरचना में मूल रूप से दो कारक निहित होते हैं- सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक।
- थर्स्टन के अनुसार बुद्धि में मानसिक क्षमताओं के अनेक समूह होते हैं जिनमें प्रत्येक समूह का अपना अलग-अलग प्राथमिक कारक होता है जो उन सभी मानसिक क्षमताओं को एक सूत्र में बांधे रखता है। थर्स्टन ने अपने सिद्धान्त में सात प्राथमिक मानसिक क्षमताओं की बात की है।
- थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि की संरचना बहुत से कारकों के मिलने से होती है और व्यक्ति के भिन्न-भिन्न मानसिक क्रियाओं के बीच सहसम्बन्ध का कारण उभयनिष्ठ कारक होते हैं न कि सामान्य कारक।

14.7 शब्दावली

1. **कारकीय सिद्धान्त (Factorial theories)** बुद्धि के ऐसे सिद्धान्त जिसके अन्तर्गत बुद्धि की संरचना की व्याख्या कुछ कारकों के रूप में की गयी है।

2. **प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त (Process oriented theories)** ऐसे बुद्धि सिद्धान्त जिसमें बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या अनेक बौद्धिक प्रक्रियाओं के रूप में की गयी है।
3. **संज्ञान (Cognition)**-संज्ञान से तात्पर्य मानसिक क्रियाओं से होता है। हमलोग अपने ज्ञान को कैसे ग्रहण करते हैं, उसे संचित करते हैं, उसका स्मरण या पुनः प्राप्ति करते हैं तथा उसका उपयोग करते हैं, आदि सभी मानसिक प्रक्रियाएँ संज्ञान में सम्मिलित होती हैं। ऐसी मानसिक प्रक्रियाओं में प्रत्यक्षण, स्मृति, ध्यान, पैटर्न पहचान, भाषा, सम्प्रत्यय निर्माण, समस्या समाधान, तर्क करना, निर्णय लेना आदि को सम्मिलित किया जाता है।
4. **संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Cognitive Psychology)**-मनोविज्ञान की वह षाखा, जिसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
5. **सामान्य कारक (General Factor or 'g' factor)**-प्रत्येक व्यक्ति में किसी भी मानसिक कार्य करने की एक सामान्य क्षमता, जिसकी मात्रा विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है।
6. **विशिष्ट कारक (Specific Factor or 'S' Factor)**-किसी मानसिक कार्य को करने हेतु आवश्यक विशिष्टता को विशिष्टता को विशिष्ट कारक की संज्ञा दी गयी है।
7. **समूह कारक (Group Factor):** सभी मानसिक प्रक्रियाओं या क्षमताओं में सामान्य प्राथमिक कारक होता है जो उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को आपस में सूत्र में बांधे रखता हैं तथा साथ ही साथ इन मानसिक क्रियाओं को अन्य मानसिक क्रियाओं से भिन्न रखता है। ऐसी सभी मानसिक प्रक्रियाएँ जिनका एक प्राथमिक कारक होता है, आपस में सहसम्बन्धित होते हैं एवं एक साथ मिलकर समूह का निर्माण करते हैं।
8. **प्राथमिक कारक (Primary Factor):** थर्स्टन द्वारा वर्णित वह कारक जो समूह का प्रतिनिधित्व करता है उसे प्राथमिक कारक की संज्ञा दी जाती है।
9. **उभयनिष्ठ कारक (Common Factor):** थार्नडाइक द्वारा वर्णित वह कारक जो कुछ अंष में समस्त मानसिक क्रियाओं में पाया जाता है, उसे उसने उभयनिष्ठ कारक की संज्ञा दी है।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बुद्धि के सिद्धान्तों का वर्गीकरण निम्न दो प्रमुख श्रेणियों में किआ गया है- कारकीय सिद्धान्त, प्रक्रिया-उन्मुखी सिद्धान्त
2. कारक सिद्धान्त के अन्तर्गत आने वाले दो प्रमुख सिद्धान्तों के नाम हैं- द्विकारक सिद्धान्त, समूहकारक सिद्धान्त
3. कारकों
4. बौद्धिक

5. i. कारक विश्लेषण ii. पियाजे
6. (3) पियाजे
7. स्पीयरमैन
8. स्पीयरमैन, सामान्य कारक, विशिष्ट कारक
9. i. जन्मजात और निश्चित
10. ii निश्चित परिस्थितियों में परिवर्तनशील
11. एल0 एल0 थर्स्टन
12. 7
13. (4) पढ़ने की तत्परता
14. (1) आंकिक क्षमता (2) शाब्दिक अर्थ क्षमता (3) शब्द प्रवाह क्षमता (4) स्थानिक क्षमता

    (5) तर्क क्षमता (6) स्मृति क्षमता (7) प्रत्यक्षीकरण गति क्षमता
15. असत्य
16. असत्य
17. सत्य
18. iii उभयनिष्ठ कारक (common factor)
19. असत्य
20. सत्य
21. असत्य
22. i बहुकारक सिद्धान्त: कैटेल
23. (4) थॉर्नडाइक ने

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, अरूण कुमार, (2008), संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
2. पाठक, पी0 डी0, (1982), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
3. अस्थाना, विपिन एवं अस्थाना, श्वेता, (2005), मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. भटनागर, सुरेश, (2004), शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का विकास, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
5. मंगल, एस0 के0 एवं मंगल, शुभा, (2003), शिक्षण एवं अधिगम का मनोविज्ञान, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

6. बिश्नोई, उन्नति, (2007), शिक्षण अधिगम मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
7. पचौरी, गिरीश, (2004), अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
8. लाल, रमन बिहारी एवं जोशी , सुरेश चन्द्र, (2008), शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
9. लाल, रमन बिहारी एवं मानव, रामनिवास, (2005), शिक्षा मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
10. Mangal, S. K. , (2009), Advanced Educational Psychology, PHI Learning Pvt. Ltd., New Delhi
11. Pandey, K.P., (1988), Advanced Educational Psychology, Konark Publishers Pvt. Ltd., Delhi
12. Suri, S. P., Sodhi, T. S., Dumral, B. D. & Dumral, Prabhjot, (2004), Psychological Foundations of Education, Bawa Publications, Patiala
13. Good, Carter V., (1959), Dictionary of Education, McGraw Hill Book Co., New York.
14. Guilford, J.P., (1957), The Nature of Human Intelligence, McGraw Hill, New York.
15. Chawhan, S. S., (1996), Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi
16. Crow, L. D. & Crow, A., (1973), Educational Psychology, Eurasia Publishing House, New Delhi.
17. Baron, Robert A., (2003), Psychology, Pearson Education, Delhi.

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बुद्धि के सिद्धान्तों को किस रूप में वर्गीकृत किया गया है? उनका संक्षेप में वर्णन करें।
2. स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
3. थर्स्टन के समूहकारक सिद्धान्त की उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।
4. बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रतिपादित किये जाने वाले प्रमुख कारक सिद्धान्तों का विवेचनात्मक वर्णन कीजिए। उनके सम्बन्ध में आप का निष्कर्ष क्या है?

इकाई-15 बुद्धि परीक्षण: Intelligence Testing

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 बुद्धि का अर्थ
15.4 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ
15.5 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
15.6 बुद्धि परीक्षणों की समानतायें एवं विषमतायें
15.7 वैश्विक स्तर पर बुद्धि परीक्षण के उदाहरण
15.8 भारत में विकसित कुछ मुख्य बुद्धि परीक्षण
15.9 बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन
15.10 बुद्धि परीक्षण की सीमाएँ
15.11 सारांश
15.12 शब्दावली
15.13 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
15.14 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें
15.15 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मानव अपनी बुद्धि के कारण ही अन्य सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि मानव की समग्र क्षमता या योग्यताहै। अत: इस समग्र क्षमता या योग्यता को जानने, जॉचने व परखने के लिए मनुष्य सभ्यता के प्रारंभिक दौर से ही प्रयासरत व जिज्ञासु रहा है। चीनी सभ्यता में परीक्षा प्रणाली के माध्यम से लोक-नियोजन प्रक्रिया में वैधानिकता और वैज्ञानिकता लाना यह लोगों के बुद्धि मापन से ही संबंधित रहा है। प्राचीन काल में भारत में शास्त्रार्थ का आयोजन, दार्शनिक प्रश्नोत्तरी के माध्यम से विवेक व ज्ञान का परीक्षण, बुद्धि के मापन कार्य से ही संबंधित है। आजकल विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु परीक्षा का आयोजन हो या नौकरी पाने के लिए साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना सभी किसी न किसी तरह बुद्धि मापन से संबंधित है। अर्थात् बुद्धि मापन की प्रक्रिया को जानना व समझना, बहुत ही आवश्यक है ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बहुत ही प्रभावशाली

बनाया जा सके। अत: प्रस्तुत इकाई में आपको बुद्धि परीक्षण के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाएगी।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

: बुद्धि परीक्षण के संप्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
: बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
: बुद्धि परीक्षण के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की व्याख्या कर पायेगें।
: बुद्धि परीक्षण के गुण-दोषों को स्पष्ट कर सकेंगे।
: बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

15.3 बुद्धि का अर्थ

बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है (वेश्लर, 1944) अर्थात् बुद्धि को कई तरह की क्षमताओं का योग माना है। स्टोडार्ड (1941) के अनुसार ‘‘बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।’’ राबिन्सन तथा राबिन्सन, 1965 ने भी बुद्धि को संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है। बोरिंग 1923, के अनुसार बुद्धि वही है, जो बुद्धि परीक्षण मापता है।

उपरोक्त संदर्भ में आपने बुद्धि की प्रकृति, परिभाषा सिद्धान्त व प्रकार का अध्ययन किया जो कि बुद्धि के अर्थ, मापन व इसके प्रकार को समझने के लिए अत्यावश्यक है। अब यहॉ हम लोग बुद्धि की मापन के अर्थ व इसके प्रकार का अध्ययन करेंगें।

15.4 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ

बाह्य व्यवहार द्वारा मानसिक योग्यता, संज्ञानात्मक परिपक्वता और समायोजन की क्षमता का मापन बुद्धि मापन कहलाता है। बुद्धि मापन का कार्य विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के माध्यम से किया जाता हे। इस परीक्षणों में सम्मिलित पदों की प्रकृति व प्रकार के आधार पर बुद्धि लब्धि सूचकांक तैयार किया जाता है।

बुद्धि परीक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:- बुद्धि परीक्षण की अनौपचारिक क्रिया शायद मानव सभ्यता के शुरूआत से ही रही है। मानव सभ्यता के शुरूआती दौर से ही वैयक्तिक विभिन्नताओं को जानने के विभिन्न तरीकों का प्रयोग होता आ रहा है। विभिन्नता के कारण ही प्राय: एक सी ही पाठ्य सामग्री, पाठ्य विधि एवं सुविधाओं के उपलब्ध कराये जाने के बावजूद भी दो छात्र समान रूप से प्रगति नहीं कर पाते हैं। उनके अनुसार वह योग्यता जो व्यक्ति को सुगमता, शीघ्रता एवं उचित प्रकार से सीखने के लिए प्रेरित करती है, बुद्धि कहलाती है। व्यक्ति के भौतिक स्वरूप में अंतर के साथ ही बुद्धि में भी अन्तर पाया जाता है। निम्नलिखित समय रेखा के माध्यम से बुद्धि मापन के ऐतिहासिक विकास को समझा जा सकता है।

- 1775-78 मेंलेवेटर ने चेहरे से व्यक्ति के मानसिक योग्यताओं को आकलित करने की बात बतायी।
- 1807 में गॉल ने सिर व ललाट की विशेषता को बुद्धि परीक्षण का आधार माना।
- 1871 में लम्ब्रोजो ने सिर की बनावट से बुद्धि को पता लगाने के ढंग बताये।
- 1805 में इंग्लैण्ड के फ्रांसिस गाल्टन ने बुद्धि के मापने में सांख्यिकीय रीति अपनाने की बात पर जोर डाला।
- 1904 में स्पीयरमैन ने बुद्धि का द्वि-कारकीय सिद्धांत का विकास सहसंबंध विधि द्वारा किया।
- 1890 आर0बी0 कैटिल ने 'मानसिक परीक्षण व मूल्यांकन' (Mental test and Evaluation) नामक अपनी पुस्तक में सर्वप्रथम 'मानसिक परीक्षण' शब्द की शुरूआत की।
- 1905 में अल्फ्रेड बिर्ने ने औपचारिक रूप से बुद्धि परीक्षण की शुरूआत की।
- 1908 में बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण मापदंड का पहला संशोधन हुआ और इसमें इन्होंने मानसिक आयु का संप्रत्यय दिया।
- 1910 में बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण का दूसरा संशोधन हुआ।
- 1912 में विलियम स्टर्न ने बुद्धि को मापने के लिए मानसिक आयु व तैथिक आयु के अनुपात को प्रयोग करने की सलाह दी।
- 1916 में मानसिक आयु व तैथिक आयु के अनुपात में 100 से गुणन को बुद्धिलब्धि की संज्ञा दी।

15.5 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

बुद्धि परीक्षण कई प्रकार के होते हैं। इनके वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार हो सकते हैं:-

1. परीक्षणों को प्रशासित करने की प्रक्रिया के आधार पर-
   - अ. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण।
   - ब. सामूहिक बुद्धि परीक्षण।

2. परीक्षण के एकांश के स्वरूप के आधार पर-

अ. शाब्दिक या वाचिक बुद्धि परीक्षण।
ब. अशाब्दिक या अवाचिक बुद्धि परीक्षण।
स. निष्पादन बुद्धि परीक्षण।

3. परीक्षण के एकांश में संस्कृति के प्रतिविम्बन के आधार पर-

अ. संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण।
ब. संस्कृति स्वच्छ बुद्धि परीक्षण।
स. संस्कृति अभिनत बुद्धि परीक्षण।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षण:- वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण वह परीक्षण होता है जिसके द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है। समूह बुद्धि परीक्षण को एक साथ बहुत से व्यक्तियों पर प्रशासित किया जाता है। वैयक्तिक परीक्षण में आवश्यक होता है कि परीक्षणकर्ता परीक्षार्थी से सौहार्द स्थापित करे और परीक्षण सत्र के समय उसकी भावनाओं और अभिव्यक्तियों के प्रति संवेदनशील रहे। समूह परीक्षण में परीक्षणकर्ता को परीक्षार्थियों की निजी भावनाओं से परिचित होने का अवसर नहीं मिलता। वैयक्तिक परीक्षणों में परीक्षार्थी पूछे गये प्रश्नों का मौखिक अथवा लिखित रूप में भी उत्तर दे सकता है अथवा परीक्षणकर्ता के आदेशानुसार वस्तुओं का प्रहस्तन भी कर सकता है। समूह परीक्षण में परीक्षार्थी सामान्यत: लिखित उत्तर देता है और प्रश्न भी प्राय: बहुविकल्पी स्वरूप के होते हैं।

शाब्दिक, अशाब्दिक तथा निष्पादन परीक्षण:- एक बुद्धि परीक्षण पूर्णत: शाब्दिक, पूर्णत: अशाब्दिक या अवाचिक अथवा पूर्णत: निष्पादन परीक्षण हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई बुद्धि परीक्षण इन तीनों प्रकार के परीक्षणों के एकांशों का मिश्रित रूप भी हो सकता है। शाब्दिक परीक्षणों में परीक्षार्थी को मौखिक अथवा लिखित रूप में शाब्दिक अनुक्रियायें करनी होती है। इसलिए शाब्दिक परीक्षण केवल साक्षर व्यक्तियों को ही दिया जा सकता है। अशाब्दिक परीक्षणों में एकांशों के रूप में चित्रों अथवा चित्र निरूपणों का उपयोग किया जाता है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non-Verbal) दोंनो हो सकता है। बिने-साइमन परीक्षण (Binet Simon Test), स्टैन्फोर्ड-बिने मापनी (Stanford- Binet Scale), वेश्लर-वेलेव्यू स्केल (Wechsler- Bellevue Scale) आदि वैयक्तिक शाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं। पास एलांग टैस्ट (Pass Along Test), ब्लॉक डिजाइन टैस्ट (Block Design Test), क्यूब कंस्ट्रक्शन टैस्ट (Cube Construction Test) आदि अशाब्दिक परीक्षण के उदाहरण है।

सामूहिक परीक्षण भी शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोंनों हो सकते हैं। मोहसिन सामान्य बुद्धि परीक्षण (Mohsin General Intelligence Test), आर्मी अल्फा टैस्ट (Army Alpha Test), आदि सामूहिक शाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं। इसी प्रकार आर्मी बीटा टैस्ट (Army Beta Test), रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (RPM) आदि सामूहिक अशाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं।

संस्कृति निष्पक्ष तथा संस्कृति- अभिनत परीक्षण (Culture Fair and Culture Loaded Test):- बुद्धि परीक्षण संस्कृति निष्पक्ष अथवा संस्कृत-अभिनत हो सकते हैं। बहुत से बुद्धि परीक्षण उस संस्कृति के प्रति अभिनति प्रदर्शित करते हैं, जिसमें वे बुद्धि परीक्षण विकसित किए जाते हैं। अमेरिका तथा यूरोप में विकसित किए गए बुद्धि परीक्षण नगरीय तथा मध्यवर्गीय सांस्कृतिक लोकाचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए इन परीक्षणों पर उस देश के शिक्षित मध्यवर्गीय श्वेत व्यक्ति सामान्यत: अच्छा निष्पादन कर लेते हैं। इन परीक्षणों के एकांश (प्रश्न) एशिया या अफ्रीका के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का ध्यान नहीं रखते। इन परीक्षणों के मानकों का निर्माण भी पश्चिमी संस्कृति के व्यक्तियों के समूहों से किया गया है।

किसी ऐसे परीक्षण का निर्माण करना लगभग असम्भव कार्य है जो सभी संस्कृतियों के लोगों पर एकसमान सार्थक रूप से अनुप्रयुक्त किया जा सके। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे परीक्षणों का निर्माण करने का प्रयास किया है जो संस्कृति निष्पक्ष हो या सभी संस्कृति के लिये संस्कृति-उपयुक्त हों अर्थात जो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों में भेदभाव न करें। ऐसे परीक्षणों में एकांशों की रचना इस प्रकार की जाती है कि वे सभी संस्कृतियों में सर्वनिष्ठ रूप से होने वाले अनुभवों का मूल्यांकन करे या उस परीक्षण में ऐसे प्रश्न रखे जायें जिनमें भाषा का उपयोग न हो। शाब्दिक परीक्षणों में पाई जाने वाली सांस्कृतिक अभिनति अशाब्दिक तथा निष्पादन परीक्षण में कम हो जाती है।

इस तरह स्पष्ट है कि बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा संस्कृति स्वच्छ/निष्पक्ष परीक्षण। इन चारों परीक्षणों की मौलिक विशेषताओं को निम्न तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है-

15.6 बुद्धि परीक्षणों की समानतायें एवं विषमतायें

बुद्धि परीक्षण के प्रकार	**निर्देश में भाषा का प्रयोग (Use of**	**एकांश में भाषा का प्रयोग (Use**	**वस्तुओं का वास्तविक जोड़-तोड़**	**उदाहरण (Example)**

	Language in its instruction)	of Language in items)	(Actual manipulation of objects)	
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)	✓	✓	X	स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण, आर्मी अल्फा टैस्ट, डा0 जलोटा बुद्धि परीक्षण वैश्लर-वैलेव्यू बुद्धि परीक्षण, बर्ट तर्क परीक्षा, टरमन मानसिक योग्यता समूह परीक्षण
अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Intelligence Test)	✓	X	X	रैवेन प्रोगेसिव मैट्रिसेज
अभाषाई बुद्धि परीक्षण/संस्कृति स्वच्छ परीक्षण (Non language Intelligence Test/Culture Fair Test)	X	X	X	गुडएनफ ड्रा-ए-मैन परीक्षण कैटेल संस्कृति मुक्त परीक्षण
क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test)	✓	X	✓	भाटिया क्रियात्मक परीक्षण, माला, आकार फलक परीक्षण मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण, पैटर्न ड्राइंग टैस्ट

बुद्धि को विभिन्न तरीके से मापने के लिए विश्वस्तर पर व भारत में बहुत प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का विकास किया है। यहॉ पर वैश्विक स्तर पर विकसित बुद्धि परीक्षणों व भारत में विकसित बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण दिये गये हैं ताकि आप मुख्य बुद्धि परीक्षणों से अवगत हो सकें।

15.7 वैश्विक स्तर पर बुद्धि परीक्षण के उदाहरण

- बिने साइमन मापनी (1905)
- बिने साइमन संशोधित मापनी (1908)
- पुन: संशोधन बिने-साइमन मापनी (1911)
- स्टेनफोर्ड बिने संशोधित परीक्षण (1916)
- स्टेनफोर्ड पुन: संशोधन (1937)
- स्टेनफोर्ड पुन: संशोधन (1960)
- मैरिल पामर मापनी
- मिनिसोटा पूर्व-विद्यालय मापनी
- वॉन चित्र शब्दावली
- गुडएनफ ड्राइंग-ए-मैन परीक्षण
- रेवेन प्रोगेसिव मैट्रिसेज
- वैश्लर वयस्क बुद्धि मापनी
- अलेक्जेंडर पुरस्सरण क्रियात्मक परीक्षण
- आर0बी0 कैटिल संस्कृति युक्त बुद्धि परीक्षण मापनी
- बर्ट तर्क शक्ति परीक्षण
- गैसिल विकास अनुसूची
- कुहलमन-एण्डरसन बुद्धि परीक्षण
- टरमन मानसिक योग्यता समूह परीक्षण
- टरमन मैक्नेमर मानसिक योग्यता परीक्षण
- मिलर अनुपात-पूर्ति परीक्षण
- पिन्टनर-पैटर्सन निष्पादन परीक्षण
- आर्थर निष्पादन मापदण्ड

15.8 भारत में विकसित कुछ मुख्य बुद्धि परीक्षण

- पं0 लज्जाशंकर झा(1933) - रिचार्डसन सिम्पलेक्स मेन्टल परीक्षण का हिन्दी अनुकूलन

- आर0आर0 कुमारिया सामूहिक बुद्धि परीक्षण (1937)
- एल0के0 शाह सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- सी0टी0 फिलिप्स (1930) सामूहिक शाब्दिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- डा0 सोहनलाल (1942) इलाहाबाद बुद्धि परीक्षण
- सिलवा (1942) बर्ट शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 टी0सी0 बिकरी (1942) अशाब्दिक समूह परीक्षण (हिन्दी-उर्दू)
- वी0जी0 झिंगरन (1950) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद (1954) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- सी0एम0 भाटिया (1955) उपलब्धि परीक्षण श्रंखला
- मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद (1956) बिने साइमन Lप्रारूप अनुकूलन
- एस0एम0 मोहसिन (1943) बिहार सामान्य बुद्धि परीक्षण
- केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (CIE)(1950-60) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मेन्जिल (1938) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- विकरी एवं ड्रेपर (1942) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- जी0एच0 नाफडे (1942) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- रामनाथ कुन्टु (1959) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- एम0जी0 प्रेमलता (1959) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मनोविज्ञानशाला (1956) टेवन प्रोगेसिव मैट्रिक्स अनुकूलन
  तथा पिजन के अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- प्रमिला पाठक (1959) ड्राइंग-ए-मैन टैस्ट
- डा0 एम0सी0 जोशी (1960) सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण
- प्रयाग मेहता (1961) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 आर0के0 टण्डन (1961) सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- डा0 राय चौधरी (1961) वयस्क बुद्धि परीक्षण
- डा0 एस0 जलोटा (1963) साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण
- मजूमदार (1964) वेश्लर वयस्क मापनी अनुकूलन
- ए0एन0 मिश्रा (1966) मानव आकृति ड्राइंग टैस्ट
- जी0सी0 आहूजा (1966) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- चटर्जी एवं मुखर्जी (1967) अभाषीय बुद्धि परीक्षण
- डी0एम0 बहोसर (1967) सामूहिक अशाब्दिक परीक्षण
- डा0 जी0पी0 शैरी (1970) वयस्क बुद्धि परीक्षण
- प्रमिला आहूजा (1970) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 आर0के0 टण्डन- बच्चों के लिए सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण

- डा0 पी0एन0 महरोत्रा (1971) मिश्रित सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- ओझा एवं चौधरी (1971) शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- एस0पी0 कुलश्रेष्ठ (1971) बिने साइमन परीक्षण- भारतीय अनुकूलन
- उदय शंकर- CIE शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण

अभ्यास प्रश्न

1. .... के अनुसार,"बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।"
2. ....के अनुसार,"बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है"।
3. वेश्लर-वेलेव्यू स्केल (Wechsler- Bellevue Scale) .... परीक्षण का उदाहरण है।
4. पास एलांग टैस्ट (Pass Along Test),... परीक्षण का उदाहरण है।
5. ब्लॉक डिजाइन टैस्ट (Block Design Test), ...परीक्षण का उदाहरण है।
6. क्यूब कंस्ट्रक्शन टैस्ट (Cube Construction Test) ....परीक्षण का उदाहरण है।
7. ड्रा-ए-मैन परीक्षण ....परीक्षण का उदाहरण है।
8. मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग ....परीक्षण का उदाहरण है।
9. शाब्दिक परीक्षणों में पाई जाने वाली सांस्कृतिक अभिनति ....तथा ....में कम हो जाती है।
10. मोहसिन सामान्य बुद्धि परीक्षण (Mohsin General Intelligence Test) और आर्मी अल्फा टैस्ट (Army Alpha Test) ....परीक्षण के उदाहरण हैं।
11. आर्मी बीटा टैस्ट (Army Beta Test) और रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (RPM) .... सामूहिक .... के उदाहरण हैं।

15.9 बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन

जितने भी प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का आपने अध्ययन किया है सभी की अपनी -अपनी विशेषताऐं हैं। कोई भी परीक्षण अपने आप में पूर्ण नहीं है। अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार बुद्धि परीक्षण का

चुनाव किया जाता है। यहॉ पर हम लोग व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षण तथा शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगें।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण व सामूहिक बुद्धि परीक्षण की तुलना -

क्रम संख्या	व्यक्तिगत परीक्षण	सामूहिक परीक्षण
1.	वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है, जैसे स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण	सामूहिक बुद्धि परीक्षण को एक साथ बहुत से व्यक्तियों को समूह में दिया जा सकता है। जैसे- आर्मी अल्फा परीक्षण
2.	इस परीक्षण को प्रशासित करने के लिए अनुभवी व्यक्ति चाहिए	यह परीक्षा सामान्य योग्यता का व्यक्ति भी ले सकता है।
3.	समय, धन व मेहनत की दृष्टिकोण से यह परीक्षण मितव्ययी नहीं है।	यह अपेक्षाकृत मितव्ययी है।
4.	इस परीक्षण के माध्यम से परीक्षार्थी के असफलता के कारणों का पता लगाया जा सकता है।	अपेक्षाकृत जटिल व दुरूह कार्य है।
5.	इस परीक्षा में परीक्षार्थी व परीक्षक का निकट संबंध होता है।	इसमें निकट संबंध की सम्भावना नहीं के बराबर होती है।
6.	प्रश्नों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।	प्रश्नों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।
7.	परीक्षणों का निर्माण कठिन कार्य है।	परीक्षणों का निर्माण अपेक्षाकृत आसान है।
8.	इस परीक्षा के माध्यम से परीक्षार्थी की भाषा और व्यवहार का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।	इस परीक्षा में इन बातों का आंशिक ज्ञान हो पाता है।
9.	इन परीक्षणों की विश्वसनीयता व वैधता अधिक होती है।	विश्वसनीयता व वैधता अपेक्षाकृत कम होती है।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना-

क्रम संख्या	शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test)	अशाब्दिक परीक्षण (Non Verbal Test)
1.	इस तरह के बुद्धि परीक्षणों में एकांशों को	एकांशों को संकेत, चित्र या वस्तुओं के

	भाषा के माध्यम से प्रकट किया जाता है।	माध्यम से प्रकट किया जाता है।
2.	यह संस्कृति अभिनति परीक्षण होता है।	यह अपेक्षाकृत संस्कृति स्वच्छ परीक्षण होता है।
3.	शाब्दिक परीक्षणों में परीक्षार्थी को मौखिक अथवा लिखित रूप में शाब्दिक अनुक्रियाएँ करनी होती हैं।	एकांशों का उत्तर देने के लिए लिखित भाषा के उपयोग की आवश्यकता नहीं होती।
4.	यह परीक्षण भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों को नहीं दिया जा सकता है, बल्कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिया जा सकता है, जिस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में वह परीक्षण निर्मित हुआ है।	यह भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों को आसानी से दिया जा सकता है।
5.	यह परीक्षण केवल साक्षरों के लिए उपयुक्त है।	यह परीक्षण असाक्षर व साक्षर दोनों के बुद्धि परीक्षण के लिए उपयुक्त है।
6.	इन परीक्षाओं के माध्यम से परीक्षार्थी की वाचन शक्ति, वर्गीकरण क्षमता, सादृश्य सम्बन्ध स्थापन शक्ति (Analogy)आदि योग्यताओं का मापन किया जाता है।	इन परीक्षाओं के माध्यम से चित्र-रचना, आकृति चित्रण निर्दिष्ट आकार के गुटके बनाने इत्यादि योग्यताओं का परीक्षण किया जाता है।

15.10बुद्धि परीक्षण की सीमाएँ

बुद्धि परीक्षण कई उपयोगी उद्देश्य को पूर्ण करता है जैसे- चयन, परामर्श, निर्देशन, आत्मविश्लेषण और निदान में। जब तक ये परीक्षण किसी प्रशिक्षित परीक्षणकर्ता द्वारा नहीं उपयोग किए जाते, जानबूझकर या अनजाने में इनका दुरूपयोग हो सकता है। अप्रशिक्षित परीक्षणकर्ताओं द्वारा किए गए बुद्धि परीक्षणों के कुछ दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं:-

- किसी परीक्षण पर किसी व्यक्ति का खराब प्रदर्शन, उसके निष्पादन व आत्मसम्मान पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।
- परीक्षण द्वारा माता-पिता, अध्यापकों तथा बड़ों के भेद-भावपूर्ण आचरण को बढ़ावा मिलने का भय बना रहता है।
- मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय जनसंख्याओं के पक्ष में अभिनत बुद्धि परीक्षण समाज के सुविधावंचित समूहों से आने वाले बच्चों की IQ को कम आंकने की सम्भावना बनी रहती है।

- बुद्धि परीक्षण सृजनात्मक संभाव्यताओं और बुद्धि के व्यावहारिक पक्ष का माप नहीं कर पाता है और उनका जीवन में सफलता से ज्यादा संबंध नहीं होता। बुद्धि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों का एक संभाव्य कारक हो सकती है।

15.11सारांश

बुद्धिको संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना गया है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है।

बाह्य व्यवहार द्वारा मानसिक योग्यता, संज्ञानात्मक परिपक्वता और समायोजन की क्षमता का मापन बुद्धि मापन कहलाता है। बुद्धि मापन का कार्य विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के माध्यम से किया जाता हे। इस परीक्षणों में सम्मिलित पदों की प्रकृति व प्रकार के आधार पर बुद्धि लब्धि सूचकांक तैयार किया जाता है।

बुद्धि परीक्षण की अनौपचारिक क्रिया शायद मानव सभ्यता के शुरूआत से ही रही है। मानव सभ्यता के शुरूआती दौर से ही वैयक्तिक विभिन्नताओं को जानने के विभिन्न तरीकों का प्रयोग होता आ रहा है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण वह परीक्षण होता है जिसके द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है। समूह बुद्धि परीक्षण को एक साथ बहुत से व्यक्तियों पर प्रशासित किया जाता है।

एक बुद्धि परीक्षण पूर्णत: शाब्दिक, पूर्णत: अशाब्दिक या अवाचिक अथवा पूर्णत: निष्पादन परीक्षण हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई बुद्धि परीक्षण इन तीनों प्रकार के परीक्षणों के एकांशों का मिश्रित रूप भी हो सकता है।

बुद्धि परीक्षण संस्कृति निष्पक्ष अथवा संस्कृत-अभिनत हो सकते हैं। बहुत से बुद्धि परीक्षण उस संस्कृति के प्रति अभिनति प्रदर्शित करते हैं, जिसमें वे बुद्धि परीक्षण विकसित किए जाते हैं। किसी ऐसे परीक्षण का निर्माण करना लगभग असम्भव कार्य है जो सभी संस्कृतियों के लोगों पर एकसमान सार्थक रूप से अनुप्रयुक्त किया जा सके। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे परीक्षणों का निर्माण करने का प्रयास किया है जो संस्कृति निष्पक्ष हो या सभी संस्कृति के लिये संस्कृति-उपयुक्त हों अर्थात जो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों में भेदभाव न करें।

बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा संस्कृति स्वच्छ/निष्पक्ष परीक्षण।

इस तरह स्पष्ट है कि बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा संस्कृति स्वच्छ/निष्पक्ष परीक्षण।

15.12शब्दावली

- **सांस्कृतिक निरपेक्ष परीक्षण**(Culture fair test):- ऐसा परीक्षण जो परीक्षार्थियों में सांस्कृतिक अनुभवों के आधार पर विभेदन नहीं करता है।
- **समूह परीक्षण**(Group Test):- वैयक्तिक परीक्षण के विपरीत एक ही समय पर एक से अधिक व्यक्तियों व्यक्तियों को देने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
- **वैयक्तिक परीक्षण**(Individual Test):- ऐसा परीक्षण जो विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा एक समय में किसी एक अकेले व्यक्ति को ही दिया जा सकता है। बिने और वेश्लर बुद्धि परीक्षण, वैयक्तिक परीक्षणों के उदाहरण हैं।
- **बुद्धि परीक्षण**(Intelligence Test):- किसी व्यक्ति का स्तर मापने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
- **निष्पादन परीक्षण**(Performance Test) :- ऐसा परीक्षण जिसमें भाषा की भूमिका न्यूनतम होती है क्योंकि उस कार्य में वाचिक अनुक्रियाओं की अपेक्षा प्रकट गत्यात्मक या पेशीय अनुक्रियाओं की आवश्यकता पड़ती हे।
- **शाब्दिक परीक्षण**(Verbal Test) :- ऐसा परीक्षण जिसमें अपेक्षित अनुक्रियाऐं करने के लिए परीक्षार्थी की शब्दों एवं संप्रत्ययों को समझने और उनका उपयोग करने की योग्यता महत्वपूर्ण होती है।

15.13अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

1. स्टोडार्ड (1941) 2. वेश्लर, 1944 3. वैयक्तिक शाब्दिक 4. अशाब्दिक परीक्षण 5. अशाब्दिक परीक्षण 6. अशाब्दिक परीक्षण 7. संस्कृति मुक्त 8. क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) 9. अशाब्दिक तथा निष्पादन परीक्षण10. समूहिक शाब्दिक परीक्षण 11. अशाब्दिक परीक्षण।

15.14सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें

- एन0सी0ई0आर0टी0 (2007)- मनोविज्ञान (कक्षा-12) के लिए पाठ्य पुस्तकें।

- सिंह, ए0के0 (2008)- शिक्षा मनोविज्ञान, भारतीभवन, पटना।
- भटनागर, ए0बी0 (2009)- अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आर0लाल0, प्रकाशक, मेरठ।
- बैरन आर0ए0 (2001) साइकोलॉजी (पांचवा संस्करण), एलिन एंड बेकन।
- लाहे, बी0बी0 (1998) साइकोलॉजी-एन इंट्रोडक्शन, टाटा मैक्ग्रा हिल।

15.15निबन्धात्मक प्रश्न

1. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. सांस्कृतिक निरपेक्ष परीक्षण व सांस्कृतिक सापेक्ष परीक्षण के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना कीजिए।
4. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता व उनकी सीमाओं का मूल्यांकन कीजिए।
5. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण व सामूहिक बुद्धि परीक्षण के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. भारत में विकसित बुद्धि परीक्षणों के बारे में विस्तार पूर्वक लिखें।

इकाई 16 सृजनात्मकता Creativity

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ
16.4 सृजनात्मकताकी विशेषताएँ
16.5 सृजनात्मकता के तत्व
16.6 सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ
16.7 बालकों में सृजनात्मकता विकसित करना
16.8 सृजनात्मकतापरीक्षण
16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 अभ्यासप्रश्नो के उत्तर
16.12 संदर्भ ग्रंथ
16.13 निबंधात्मक प्रश्न

16.1प्रस्तावना

हम में से प्रत्येक व्यक्ति अनुपम है, इसलिये सभी प्राणियो में एक ही स्तर की सृजनात्मक योग्यता विद्यमान नहीं। हम में से कई व्यक्तियों में उच्च स्तरीय सृजनात्मक प्रतिभायें होती है और यही व्यक्ति कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार, शिक्षण आदि विभिन्न मानवीय क्षेत्रों में संसार का नेतृत्व करते हैं।

अच्छी शिक्षा, अच्छी देखभाल, सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिये अवसरों की व्यवस्था, सृजनात्मकता को अंकुरित एवं पोषित करती है। इसमें माता-पिता समाज तथा अध्यापक अपनी भूमिका निभा सकते हैं। वे बच्चों के पालन-पोषण तथा उनकी सृजनात्मक योग्यताओं के विकास में सहायता दे सकतें हैं। अतः शिक्षा-प्रक्रिया का उद्देश्य बच्चो में सृजनात्मक योग्यताओं का विकास होनो चाहिये। इसके लिये अध्यापको तथा माता-पिताओं को सृजनात्मकता के विकास के साधनो का परिचय प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। इस इकाई में आप सृजनात्मकता और सृजनातमकता को विकसित करने के विषय में अध्ययन करेगें।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. सृजनात्मकता का अर्थ जान पाऐंगे।
2. सृजनात्मकता की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
3. सृजनात्मकताकी विशेषताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगें।
4. सृजनात्मकता के तत्वों को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. सृजनात्मकता बालकों की विशेषताएँ लिख सकेंगे।
6. सृजनात्मकता को विकसित करने हेतु विभिन्न सुझावों की व्याख्या कर सकेंगे।

16 .3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ
Meaning and Definitions of Creativity

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिविटी का हिन्दी रुपांतरण है।सृजनात्मकता से अभिप्राय है रचना सम्बंधी योग्यता , नवीन उत्पाद की रचना।मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सृजनात्मक स्थिति अन्वेषणात्मक होती है।विभिन्न विद्वानों ने सृजनात्मकता की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये उसे अपनी-अपनी तरह से परिभाषित करनेका प्रयत्न किया है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानो की परिभाषाओं पर हम विचार करेगें।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार- " सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।"
"Creativity is essentially found in new construction or production". **James Drever**

क्रो एवं क्रो- "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।
"Creativity is a mental process to express the original outcomes" **Crow & Crow**

स्टेगनर एवं कार्वोस्की- ' ' किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है।' '

ड्रैवडाहल-' ' सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नये हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो।
"Creativity is the capacity of a person to produce composition products or ideas which are essentially new or novel and previously unknown to the producer". **Drevdahl**

विल्सन, गिलफोर्ड एवं क्रिस्टेनसैन- सृजनात्मक-प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई नवीन(कोई नई वस्तु, विचार या पुराने तत्वो का कोई नवीन संगठन या रूप) उत्पत्ति हो। यह नवीन उत्पत्ति किसी समस्या के समाधान में सहायोगी होनी चाहिये।

स्किनर-‘‘सृजनात्मक चिंतन का अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियाँ या निष्कर्ष नवीन, मौलिक, अन्वेषणात्मक तथा असाधारण हो। सृजनात्मक चिंतक वह है जो नये क्षेत्र की खोज करता है नये निरीक्षण करता है, नई भविष्यवाणियां करता है और नये निष्कर्ष निकालता है।‘‘

यदि हम इन परिभाषाओ का विश्लेषण करने का प्रयास करें जो ज्ञात होगा कि किसी नयी वस्तु का निर्माण या किसी नयी वस्तु की खेज इन तमाम परिभाषाओं का केन्द्रीय तत्व है। अतः हम आसानी के साथ इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नयी वस्तु की खोज करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की यह योग्यता भी सम्मिलित है जिसके द्वारा वह पूर्व-प्राप्त ज्ञान का पुनर्गठन करता है।

16.4 सृजनात्मकता की विशेषाताएँ Characteristics of Creativity

1. सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ मात्रा में सृजनात्मकता अवश्य होती है।
2. यद्यिप सृजनात्मक योग्यताएं प्रृकत-प्रदत होती है परन्तु प्रशिक्षण या शिक्षा द्वारा उनको विकसित किया जा सकता है।
3. सृजनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा किसी नयी वस्तु को उत्पन्न किया जाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वस्तु पूर्ण रूप से नयी हो। पृथक रूप से दिये गये तत्वो से नये एवं ताजा समिश्रण का निर्माण करना:पहले से ज्ञात तथ्यो या सिद्वांतो का पुनर्गठन करनाः किसी पूर्व-ज्ञात शैली में सुधार करना-आदि उतने ही सृजनात्मक कार्य हैं जितना रसायन विज्ञान का कोई नया तत्व ढूंढना या गणित का कोई नया सूत्र खोजना। ‘सृजनात्मकता‘ में केवल इस बात के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है कि किसी ऐसी वस्तु की पुनरावृति नहीं होनी चाहिये जिसका व्यक्ति को पहले से ज्ञान हो।
4. कोई भी सृजनात्मक-अभिव्यक्ति सृजक के लिये आनंद तथा संतुष्टि का सो्रत होती है। सृजक जो देखता या अनुभव करता है उसे अपने तरीके से प्रकट करता है। सृजक अपनी

रचना द्वारा ही अपने आप की अभिव्यक्ति करता है। सृजक अपने ही तरीके से वस्तुओं, व्यक्तियो तथा घटनाओ को लिखता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि रचना प्रत्येक व्यक्ति को वही अनुभव एवं वही संतोष प्रदान करें जो रचनाकर को प्राप्त हुआ हों।

5. सृजक वह व्यक्ति है जो अपने अहं को इस प्रकार प्रकट करता हो, यह मेरी रचना है,यह मेरा विचार है, मैने इस समस्या को हल किया है। अतः निर्माणात्मक क्रिया में अहं अवश्य निहित रहता है।
6. सृजनात्मक चिंतन बधा हुआ चिंतन नहीं होता इसमें अनगिनत विकल्पों तथा इच्छित कार्यप्रणाली को चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है ।
7. सृजनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। वैज्ञानिक आविष्कार कविता कहानी नाटक आदि लिखना नृत्य-'संगीत, चि़त्रकला , शिल्पकला, राजनीति एवं सामाजिक सम्बन्ध आदि में से कोई भी क्षेत्र इस प्रकार की अभिव्यक्ति की आधार भूमि बन सकता अतः जीवन अपने समूचे रूप से रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिये असंख्य अवसर प्रदान करता है।
8. जे0पी0गिलफोर्ड, टॉरैन्स, ड्रैवडाहलआदि कई विद्वानों ने सृजनात्मकता के विविध तत्वो को खोजने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप प्रवाहात्मक विचारधारा, मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्ण-चितन, आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता, सबन्धों को देखने तथा बनाने की योग्यता, आदि सृजनात्मक प्रक्रिया में सहायक माने गये है।

सृजनात्मक चिन्तन, चिन्तन का एक प्रमुख प्रकार है। सृजनात्मक चिन्तन को कई अर्थो में प्रयोग किया गया है। सृजनात्मक चिन्तन का सबसे लोकप्रिय अर्थ गिलफोर्ड (1967) द्वारा बतलाया गया है। इन्होंने चिन्तन को दो भागो में बांटा है -

1. अभिसारी चिन्तन
2. अपसारी चिन्तन

(1) अभिसारी चिन्तन - अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यो के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है, इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति रुढ़िवादी तरीका अपना कर अर्थात समस्या सम्बन्धी दी गयी सूचनाओं के आधार पर उसका समाधान करता है। अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति बहुत आसानी से एक पूर्व निष्चित क्रम में चिन्तन कर लेता है।

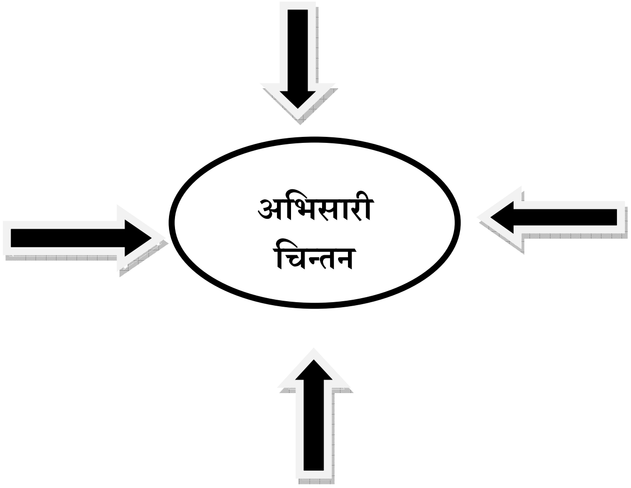

(2) अपसारीचिन्तन - अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिशकरता है। जब वह भिन्न-भिन्न दषाओं में चिन्तन करता है तो स्वभावतः वह समस्या के कई संभावित उत्तरों पर चिंतनता है और अपनी ओर से कुछ नये एवं मूल चीजों को जोड़ने की कोषिष करता है। इस तरह के चिन्तन की एक और विषेषता यह है (जो इसे अभिसारी चिन्तन से अलग करती है) कि इसमें व्यक्ति आसानी से एक पूर्व सुनिष्चित कदमों के अनुसार चिन्तन नहीं कर पाता है (क्योकि इसमें कुछ नया एवं मूल चिन्तन करना होता हैं) मनोवैज्ञानिकों ने अपसरण चिन्तन को सृजनात्मक चिन्तन के तुल्य माना है।

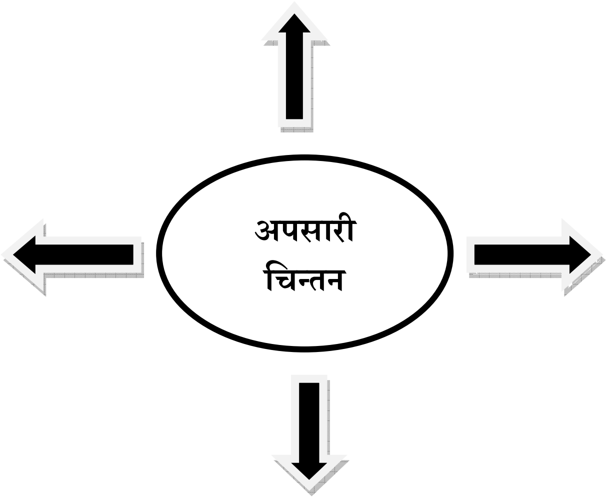

अभ्यास प्रश्न

1. ड्रैवडाहल के अनुसारसृजनात्मकता क्या है।
2. सृजनात्मकता ________ होती है।
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को किन दो भागो में बांटा है ?
4. ________ में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिश करता है।

16.5 सृजनात्मकताके तत्व

सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व निम्न हैं-

1. **प्रवाह (Fluency):** प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या परा अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है ।प्रवाह के भी चार भाग हैं-
   i. वैचारिक प्रवाह
   ii. अभिव्यक्ति प्रवाह
   iii. साहचर्य प्रवाह
   iv. शब्द प्रवाह
2. **लचीलापन (Flexibility):**लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये गये प्रत्युत्तरों या विकल्पों में लचीलापन के होने से है।अत: व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्प या उत्तर एक- दुसरे से कितने भिन्न हैं।
3. **मौलिकता (Originality):** मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है।इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तर प्रचलित उत्तरों से कितने भिन्न हैं। मौलिक्ता मुख्यतः नवीनता से सम्बंधित होती है।
4. **विस्तारण (Elaboration):** विस्तारण से अभिप्राय दिये गये विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण से होता है।

16.6सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ

सृजनात्मक बालक के व्यवहार में प्रायः निम्न गुणो एवं विशेषताओं की झलक मिलती है-

1. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
2. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
3. विस्तारीकरण की प्रवृति पाई जाती है अर्थात वह अपने विचारो कार्यो एवं योजनाओ के अत्यंत सूक्ष्म पहलुओ पर ध्यान देता हुआ हर बात को अधिक विस्तार से कहना आरे करना चाहता है।
4. वह समायोजन में सक्षम होता है एंव उसकी सहासिक कार्यो में प्रवृति होती है।
5. वह एकरसता और उबाऊपन की अपेक्षा कठिन और टेढ़े-मेढ़े जीवन पथ से आगे बढना पसन्द करता है।
6. जटिलता, अपूर्णता असमरूपता के प्रति उसका लगाव होता है और वह खुले दिमाग से सोचने मेविश्वास रखता है।
7. उसकी स्मरण शक्ति अच्छी होती है और उसके ज्ञान का दायरा भी विस्तृत होता है।
8. उसमें चुस्ती सजगता, ध्यान एवं एकाग्रता की प्रचुरता होती है।
9. उसमें स्वयं निर्णय लेने की पर्याप्त योग्यता होती है।
10. वह अस्पष्ट गूढ एवं अव्यक्त विचारो में रूचि रखता है।
11. समस्याओ के प्रति उसमें उच्च स्तर की संवेदना पाई जाती है।
12. उसकी विचार अभिव्यक्ति में अत्यधिक प्रवाहात्मकता पाई जाती है।
13. उसमें अपने सीखने या प्रशिक्षण को एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरण करने की योग्यता पाई जाती है।
14. उसके सोचने-विचारने के ढंग में केन्द्रीयकरण एवं रूढिवादिता के स्थान पर विविधता एवं प्रगतिशीलता पाई जाती है।
15. उसमें उच्च स्तर की सौन्दर्यात्मक अनुभूति, ग्राह्‌ता एवं परख क्षमता पाई जाती है।
16. समस्या के किसी नवीन हल एवं समाधान तथा योजना के किसी नवीन प्ररूप का उसकी ओ से सदैव स्वगत ही किया जाता है और इस दिशा में वह स्वयं भी अथक प्रयास करता रहता है
17. अन्य सामान्य बालको की अपेक्षा उसमें आत्म-सम्मान के भाव और अहं के तृष्टिकरण की आवश्यकता कुछ अधिक ही पाई जाती हे। वह आत्म-अनुशासित होता है। वह अपने

व्यवहार और सृजनात्मक उत्पादन में विनोदप्रियता आनद उल्लास स्वच्छंद एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति तथा बौद्धिक स्थिरता का प्रदर्शन करता है।

18. उसमें उच्च स्तर की विशेष कल्पनाशक्ति जिसे सृजनात्मक कल्पना का नाम दिया जाता है पाई जाती है।
19. विपरीत एवं विरोधी व्यक्तियो तथा परिस्थितियो को सहन करने तथा उनसे सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता भी उसमें पाई जाती है।
20. उसकी कल्पना एवं दिव्य स्वप्नो का संसार भी काफी अदभुत एंव महान होता है।

16.7 बालको में सृजनात्मकता विकसित करना

सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक अपनी बाल्यावस्था में कुछ न कुछ मात्रा में सृजनात्मकता के लक्षणो को प्रदर्शन करता है परन्तु आगे चलकर इनको भलि–भाँति पोषित और पल्लवित नहीं कर पाता। इस कमी को एक अच्छी शिक्षा व्यवस्था और पालन-पोषण के उचित तरीको द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। एक अध्यापक को सृजनात्मक बालकोंकी पहाचान से संबधित सभी बातों का पर्याप्त ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। ताकि व समय से ही सृजनशील बालको को सही पहचान कर उनकी सृजनात्मकता केविकास में भरपूर सहायेग प्रदान कर सके।प्रवाह,मौलिकता, लचीलापन, विविध-चितन आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता सबंधो को देखने तथा बनाने की योग्यता-आदि कुछ ऐसी योग्यतायें है जिनका विकास सृजनात्मकता के विकास में सहायक सिद्व हो सकता है। इन योग्यताओ को विकसित करने के लिये निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकतें है-

1. **उत्तर देने की स्वतन्त्रता-** अक्सर देखा जाता हे कि अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने या प्रचलित उत्तर की आशा रखतें है। इससे बच्चो में सृजनात्मकता विकसित नहीं होती है,अतः हमें बच्चो को उत्तर देने के लिये पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिये।
2. **अभिव्यक्ति के लिये अवसर**-अभिव्यक्ति की भावना बच्चों को अत्यधिक संतुष्टि प्रदान करती है। वस्तुतः वे तभी सृजनात्मक कार्यो में निश्चित रूप से जुटते हैंजब उनमें उनका अहं निहित हो अर्थात जब वे अनुभव करे कि उनके प्रयासों से ही अमुक सृजनात्मक कार्य सभव हो सका है। अतः हमें बच्चो को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिये जिनसे उन्हे अनुभव हो कि सृजन उनके द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।

3. **मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना**- बच्चो में किसी भी रूप में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिये। किसी समस्या का समाधान करने समय या किसी काम को सीखते समय यदि वे अपनी विधियो को परिवर्तित करना चाहते है तो उनको प्रोत्साहन मिलना चाहिये।उन्हें प्रचलित तरीकों से हटकर काम करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
4. **उचित अवसर एवं वातावरण प्रदान करना-** बच्चो में सृजनात्मकता को बढावा देने के लिये स्वस्थ एवं उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चे की जिज्ञासा तथा सहनशीलता को किसी भी सूरत में दबाना नहीं चाहिये। सृजनशील अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने के लिये हम पाठय-सहगामी क्रियाओं, सामाजिक उत्सवो धार्मिक मेंलो प्रदर्शनो आदि का प्रयोग कर सकतें है। नियमित कक्षा-कार्य को भी इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है। जिससे बच्चो मे सृजनात्मक चितंन का विकास हो।
5. **समुदाय के सृजनात्मक साधनो का प्रयोग करना**- बच्चो को सृजनात्मक-कला केन्द्रो तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक निर्माण-केन्द्रों की यात्रा करनी चाहिये। इससे उन्हें सृजनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। कभी-कभी कलाकारो वैज्ञानिको तथा अन्य सृजनशील व्यक्तियो को भी स्कूल में आमंत्रित करना चाहिये। इस प्रकार बच्चो के ज्ञान-विस्तार में सहायता मिल सकती है और उनमें सृजनशीलता को बढावा दिया जा सकता है।
6. **सृजनात्मक चितंन के अवरोधों से बचना**-परम्परावादिता शिक्षण की त्रृटिपूर्ण विधियाँ,असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार,परंपरागत कार्य आदतें पुराने विचारो आदर्शो और दुराग्रह और नवीन के प्रति भय ,छोटे-छोटे प्रत्येक कार्य में उपलब्धि की उच्च स्तर की मांग, परीक्षा में अधिक अंक अर्जित करने का दबाव,बालकों, को लीक से हटकर सोचने या कार्य करने को निरूत्साहित करना आदि ऐसे अनेक कारण और परिस्थितियाँ हैंजिनसे बालको में सृजनात्मकता के विकास और पोषण में बाधा पहुँचती है। अतः अध्यापक और अभिभावको का यह कर्तव्य है कि वे इन सभी कारणो और परिस्थितियो से बालकों की सृजनात्मकता को नष्ट होने से बचाने के लिये हर संभव प्रयत्न करे।
7. **मूल्यांकन प्रणाली में सुधार**- जो कुछ भी विद्यालय में पढा और पढाया जात है वह सब प्रकार से परीक्षा केंद्रित होता है। अतः जब तक परीक्षा और मूल्यांकन के ढाचें मे अनुकूल परिवर्तन नहीं आता तब तक किसी भी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सृजनात्मकता का पोषण नहीं किया जा सकता। परीक्षा प्रणाली में उन सभी बातो का समावेश करना चाहिये जिनेक द्वारा विद्यार्थियो को ऐसे अधिगम अनुभव अर्जित करने के लिये प्रोत्साहन मिले जो सृजनात्मकता का पोषण और विकास करते हो।
8. पाठयक्रम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विद्यालय पाठयक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिये कि वह बालको में

अधिक से अधिक सृजनात्मकता विकसित करने में सहायक सिद्व हो सके। पाठयक्रम काफी लचीला होना चाहिये और उसमें परीक्षा और मूल्यांकन की आवश्यकता से परे हटकर कुछ और पढने-पढाने एवं करने की पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिये।संक्षेप मे पाठयक्रम का आयोजन सब प्रकार से इस तरह किया जाना चाहिये कि उसके द्वारा सृजनशीलता में सहायक विभिन्न गुणोंका विकास में भरपूर सहयोग मिल सके।

9. श्रमशीलता आत्म-निर्भरता आत्म-विश्वास-आदि कुछ ऐसे गुण है जो सृजनात्मकता में सहायक होते हैं। बच्चो मे इन गणों का निर्माण करना चाहिये।
10. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीकों का प्रयोग- सृजनात्मकता के क्षेत्र में कार्य कर रहे अनुसंधानकर्ताओ ने बालको में सृजनात्मकता के विकास के लिये जिन विशेष तकनीक एवं विधियों का उपयोग उचित ठहराया है। इनमें से कुछ का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं।
    i. **मस्तिष्क उद्वेलनBrain Storming**- मस्तिष्क उद्वेलन एक ऐसी तकनीक एवं विद्या है जिसके द्वारा किसी समूह विशेष से बिना किसी रोक-टोक आलोचना मूल्यांकन या निर्णय की परवाह किये बिना किसी समस्या विशेष के हल के लिये विभिन्न प्रकार के विचारो एवं समाधानो को जल्दी-जल्दी प्रस्तुत करने के लिये कहा जाता है और फिर विचार विमर्श के बाद उचित हल एंव समाधान तलाशने का प्रयत्न किया जाता है।
    ii. **शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग Use of Teaching Models**- शिक्षा शास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित कुछ विशेष शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग भी बालको की सृजनशीलता के विकास में पर्याप्त योगदान दे सकता है। उदाहरण के लिये ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि-प्रतिमान संप्रत्ययो को ग्रहण करने के अलावा बालको को सृजनशील बनाने मे भी सहयोग देता है। और इसी तरह सचमैन का पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान वैज्ञानिक ढंग से पूछताछ करने के कौशल को विकसित करने के अतिरिक्त सृजन में सहायक विशेष गुणो को विकसित करने में पर्याप्त सहायता करता है।
    iii. **क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग Use of Gaming Technique**- खेल-खेल में ही सृजनात्मकता का विकास करेन की दृष्टि से क्रीड़न तकनीकों का अपना एक विशेष स्थान है। इस कार्य हेतु इन तकनीकों में जो प्रयोग सामग्री काम में लाई जाती है वह शाब्दिक और अशाब्दिक दोनो ही रूपो में होती है। प्रकार की क्रीड़नसामग्री द्वारा बालको को खेल-खेल मे ही निर्माण एवं सृजन के लिये जो बहुमूल्य अवसर प्राप्त होते है उन सभी का उनकी सृजनशीलता के विकास एवं पोषण हेतु पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

16.8सृजनात्मकतापरीक्षण

बुद्धिमापन के लिये जिस प्रकार हम बुद्धि –परीक्षणों का प्रयोग करते है वैसे ही सृजनात्मकता की परखके लिये हम सृजनात्मक परीक्षणों का प्रयोग कर सकतें है। इस कार्य के लिये विदेशोंमें तथा अपने देश में विभिन्न मनकीकृत उपयोगी परीक्षण मौजूद है। इनमें से कुछ काउल्लेख नीचे किय जा रहा है।

1. मानकीकृत विदेशी परीक्षण
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
   ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण
   iii. रिमोट ऐसोशियेशन परीक्षा
   iv. बालक एवं कॉरगन का सृजनात्मकता उपकरण
   v. सृजनात्मक योग्यता का ए0सी0परीक्षण
   vi. टौरैन्स का सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

2. भारत में मानकीकृत परीक्षण
   i. बकर मेहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवंअग्रजी
   ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण
   iii. शर्मा बहु-विध उत्पादन योग्यता परीक्षण
   iv. सक्सेना सृजनात्मक परीक्षण

जैसा कि पहले बतायाजा चुका है सृजनात्मकता बहुत सारी योग्यताओं और व्यक्तित्व आदि गुणों का एक जटिल सम्मिश्रण है। उपरोक्त वर्णितपरीक्षणो कें माध्यम से सृजनात्मकता के लिये आवश्यक विशेषगुणोंतथा विशेषताओं की उपस्थितिका अनुमान लगाने का प्रयत्न इन परीक्षणो में शामिल शाब्दिक तथा अशाब्दिक प्रश्नोतथा कार्यात्मक व्यवहार से किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम लिखिए।
6. सृजनात्मक बालक किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।
7. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम लिखिए।
8. किन्हीं दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।
9. किन्हीं दो भारत में मानकीकृत सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।

16.9 सारांश

सृजनात्मकता से अभिप्राय व्यक्ति विशेष की उस विलक्षण संज्ञानात्मक क्षमता या योग्यता से होता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन विचार या वस्तु का सृजन करने उसकी खोज या उत्पादन करने में कामयाब रहता है। सृजनात्मक सार्वभौमिक होती है तथा प्रकृति प्रदत होने के साथ-साथ प्रशिक्षण द्वारा भी इसे विकसित किया जा सकता है।

इसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक होता है। इसके प्रमुख अवयवों तथा तत्वों के रूप में हम प्रवाहात्मक विचारधारा मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्णचिंतन, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता संबधो को देखने तथा बनाने की योग्यता आदि की चर्चा कर सकतें है।

सृजनात्मक बालको की पहचान हेतु दो प्रकार के साधनो जैसे-सृजनात्मक परीक्षण तथा सृजनात्मक व्यवहार को जाँचने वाली अन्य तकनीको का उपयोग किया जा सकता है। सृजनात्मक परीक्षणों से सृजनात्मकता का निदान उसी रूप में सभव है। जैसे कि बुद्धि -परीक्षणो द्वारा बुंद्वि की जाँच के लिये किया जाता है। ऐसे परीक्षणो के उदाहरण रूप में हम टौरेन्स के सृजनात्मक चिंतन परीख्ज्ञण बकर मेहन्दी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण पासी सृजनात्मक परीक्षण आदि का नाम ले सकतें है।

विशेष प्रयत्नों तथा उचित शिक्षा-दीक्षा से बालको में अन्तःनिहित सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। ऐसे कुछ उपायो में हम जिनका प्रमुख रूप से उल्लेख कर सकते हैं। वे है- बालको को उत्तर देने की स्वतंत्रता प्रदान करना, उन्हें अपने अहं तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना उनकी मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना सृजनात्मक चिंतन के अवरोधो से बचाना पाठयक्रम के उचित आयोजन शिक्षण विधियों तथा मूल्यांकन प्रणाली में सुधार पर ध्यान देना, समुदाय के सृजनात्मक साधनो का प्रयोग करना तथा अपना उदाहरण एंव आर्दश प्रस्तुत करना तथा सृजनात्मकता के विकास से सम्बन्धित नवीनतम तकनीको जैसे मस्तिष्क उद्वेलन आदि की सहायता लेना।

16.10शब्दावली

1. **अभिसारी चिन्तन -** दिये गये तथ्यो के आधार पर किसी पूर्व निष्चित क्रम में चिन्तन करना।
2. **अपसारीचिन्तन -** भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन करना
3. **प्रवाह**-प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है ।

4. **लचीलापन**- लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये गये प्रत्युत्तरों या विकल्पों में एक- दुसरे से भिन्नता से है।
5. **मौलिकता**- मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है। मौलिक्ता मुख्यतः नवीनता से सम्बंधित होती है।
6. **विस्तारण**- विस्तारण का अभिप्राय दिये गये विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण है

16.11अभ्यासप्रश्नों के उत्तर

1. ड्रैवडाहल के अनुसार "सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नये हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो"
2. सार्वभौमिक
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को निम्न दो भागो में बांटा है -
   i. अभिसारी चिन्तन
   ii. अपसारी चिन्तन
4. अपसारी चिन्तन
5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम हैं-प्रवाह, लचीलापन, मौलिकता, विस्तारण।
6. सृजनात्मक बालक दो विशेषताएँ निम्न हैं-
   i. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
   ii. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
7. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम हैं-
   i. मस्तिष्क उद्वेलन
   ii. शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग
   iii. क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग
8. दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
   ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण
9. भारत में मानकीकृत दोसृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
   i. बकर मेहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवंअग्रजी

ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण

16.12संदर्भ ग्रंथ

1. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
2. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
3. पाण्डा, अनिल कुमार (2011), शिक्षा मनोविज्ञान , साहित्य रत्नालय, कानपुर
4. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।
5. अग्रवाल, सन्ध्या(2005), विजय प्रकाशन मन्दिर,वाराणसी

16.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मकता क्या है? सृजनात्मकता की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए। सृजनात्मकता विकसित करने के लिए विद्यालयों में क्या प्रावधान किए जाने चाहिए?
3. सृजनात्मकता की प्रकिया को स्पष्ट कीजिए। सृजनात्मकता के तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों का वर्णन कीजिए।

इकाई-17व्यक्तित्व: अवधारणा, विकास, एवं निर्धारक तत्वPersonality: Concept and its Development, Determinants of Personality

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 व्यक्तित्व की अवधारणा
17.4 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषायें
17.5 व्यक्तित्व की संरचना
17.6 व्यक्तित्व की विशेषतायें
17.7 व्यक्तित्व के प्रकार
17.8 व्यक्तित्व विकास का अर्थ
17.9 व्यक्तित्व विकास की अवस्थाऐं
17.10 व्यक्तित्व विकास के निर्धारक तत्व
17.11 सारांश
17.12 शब्दावली
17.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.14 सन्दर्भ ग्रंथ
17.15 निबंधात्मक प्रश्न

17.1प्रस्तावना

विगत इकाईयों में व्यक्ति के व्यवहार के संज्ञानात्मक पक्ष की विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। व्यक्ति के व्यवहार के गैर-संज्ञानात्मक पक्ष भी शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं तथा इनके अध्ययन की भी आवश्यकता होती है। इस इकाई में व्यवहार के गैर-संज्ञानात्मक पक्ष-'व्यक्तित्व' की चर्चा की गई है। व्यक्तिगत, संस्थागत एवं सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में आने वाली तरह-तरह की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए एवं वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यक्तित्व का अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

व्यक्तित्व की अवधारणा, अर्थ, संरचना एवं व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं निर्धारकों को समझा सकेगें।

17.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- व्यक्तित्व की अवधारणा एवं अर्थ के बता सकेंगे।
- व्यक्तित्व की संरचना, विशेषताओं एवं विभिन्न प्रकारों को समझा सकेंगे।
- व्यक्तित्व विकास का अर्थ एवं व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व विकास के विभिन्न निर्धारिकों का वर्णन कर सकेंगे।

17.3व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग साधारण बातचीत के दौरान बहुतायत से किया जाता है। साधारणतः व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप, रंग तथा शारीरिक गठन आदि से लगाया जाता है। दैनिक जीवन में प्रायः हम यह सुना करते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बड़ा अच्छा है, प्रभावशाली है या खराब है। अच्छे व्यक्तित्व का अभिप्राय यह है कि उस व्यक्ति की शारीरिक रचना सुन्दर है, वह स्वस्थ एवं मृदुभाषी है, उसका स्वभाव व चरित्र अच्छा है और वह दूसरों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। निःसन्देह ये गुण एवं अच्छे व्यक्तित्व के लक्षण हैं किन्तु यह व्यक्तित्व का एक पहलू है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का कुछ और अर्थ होता है। व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यवहार का दर्पण है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार क्रियाओं एवं उसकी गतिविधियों द्वारा होती है। व्यक्ति के आचरण-व्यवहार में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक गुणों का मिश्रण होता है, जिसमें कि एकरूपता और व्यवस्था पाई जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्ति का समस्त व्यवहार सामाजिक परिवेश से अनुकूलन करने के लिए होता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक परिवेश में अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण व्यवहार करने के ढंग में भिन्नता पाई जाती है। सामाजिक परिवेश में अपने को समायोजित करने के लिए वह जिस प्रकार का व्यवहार करता है, उससे उसका व्यक्तित्व बनता है या प्रकट होता है। व्यक्ति के व्यवहार पर उसकी आन्तरिक भावनाओं और बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

17.4व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाऐं

'व्यक्तित्व' शब्द के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। साधारणतः बोलचाल की भाषा में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग से ही लगाया जाता है, किन्तु विद्वानों ने इसका अर्थ नये दृष्टिकोणों से बताया है।

1. **शाब्दिक अर्थ**- व्यक्तित्व अंग्रेजी के 'पर्सनैलिटी' का हिन्दी रूपान्तर है। यह शब्द लैटिन शब्द 'पर्सोना' से लिया गया है जिसका अर्थ है वेशभूषा जिसे नाटक करते समय नाटक के पात्र पहनकर, तरह-तरह के रूप बदला करते थे। आरम्भ में इस शब्द का अर्थ बाह्य आवरण के रूप में किया जाता था। इस प्रकार व्यक्तित्व शब्द बाह्य गुणों की ओर संकेत करता है।
2. **सामान्य दृष्टिकोण से अर्थ**- जनसाधारण व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप तथा उन गुणों से लगाते हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरों को अपनी ओर आकर्षित और प्रभावित करके विजय पाता है।
3. **व्यवहार के दृष्टिकोण से अर्थ**- ''व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है।''
4. **दार्शनिक-दृष्टिकोण से अर्थ-** दर्शनशास्त्र के अनुसार, ''व्यक्तित्व आत्मज्ञान का ही दूसरा नाम है, यह पूर्णता का आदर्श है।''
5. **सामाजिक दृष्टिकोण से अर्थ**- समाजशास्त्र के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- '' व्यक्तित्व उन सब तत्वों का संगठन है जिनके द्वारा व्यक्ति को समाज में कोई स्थान प्राप्त होता है। इसलिए हम व्यक्तित्व को सामाजिक प्रवाह कह सकते हैं।''

6. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अर्थ-** इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की व्याख्या में वंशानुक्रम और वातावरण दोनों को महत्व प्रदान किया गया है। व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करने पर यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति में आन्तरिक और बाह्य जितनी भी विशेषताएँ, योग्यताएँ और विलक्षणताएँ होती हैं, उन सबका समन्वित या संगठित रूप व्यक्तित्व है। व्यक्ति को जन्म से जो गुण, क्षमताएँ या शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वे धीरे-धीरे विकसित होती रहती हैं। व्यक्ति अपने विकास-काल में अपनी जन्मजात शक्तियों के आधार पर वातावरण के साथ अभियोजन करने के लिए क्रिया-प्रतिक्रिया करता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप वह कुछ विशेष योग्यताएँ, कुशलता, आदतें, रूचि और दृष्टिकोण आदि अर्जित कर लेता है। वातावरण से अभियोजन स्थापित करने के प्रयत्न में उसके जन्मजात अर्जित गुणों का परिमार्जन और परिवर्द्धन होता रहता है। इसलिए व्यक्तित्व को 'गत्यात्मक संगठन' कहा गया है।

व्यक्तित्व की परिभाषाऐं

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। मनोवैज्ञानिक और शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई व्यक्तित्व की परिभाषाओं को जानना आवश्यक है-

बीसन्ज और बीसन्ज के अनुसार- ''व्यक्तित्व मनुष्य की आदतों, दृष्टिकोण तथा विशेषताओं का संगठन है। यह जीवशास्त्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों के संयुक्त कार्य द्वारा उत्पन्न होता है।''

मन के अनुसार- ''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों, रूचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा अभिरूचियों का सबसे विशिष्ट संगठन है।''

ड्रेवर के अनुसार- ''व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग, व्यक्ति के उन शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में प्रदर्शित करता है।''

ऑलपोर्ट के अनुसार- ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनो-शारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन निर्धारित करता है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के गुणों, लक्षणों, विशेषताओं, क्षमताओं आदि की संगठित इकाई कहा है। पूर्वोक्त परिभाषाओं से आलपोर्ट द्वारा दी गई परिभाषा अधिक उपयुक्त है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से व्यक्तित्व की व्याख्या करती है। इसमें व्यक्तित्व के सभी लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। जैसे मनो-शारीरिक व्यक्तित्व में मन और शरीर दोनों सम्मिलित है, गत्यात्मक-अर्थात् व्यक्तित्व के विकास और व्यवस्थापन में परिवर्तन और परिमार्जन होता रहता है, समायोजन- व्यक्तित्व का विकास समायोजन-क्रिया पर आधारित है और व्यक्तित्व का क्रियात्मक पक्ष है, वातावरण से अभियोजना करना है।

जी0 डब्ल्यू0 आलपोर्ट द्वारा व्यक्तित्व की परिभाषा में तीन बातों पर बल दिया गया है-

1. व्यक्तित्व एक मनो-शारीरिक गुणों का संगठन है। इसमें केवल शारीरिक गुण ही नहीं मानसिक गुण भी सम्मिलित है। व्यक्तित्व को गत्यात्मक संगठन इसलिए कहा है क्योंकि इसमें ऐसी शक्तियाँ हैं जो व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती रहती है।
2. प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की विभिन्न मनो-शारीरिक पद्धतियाँ होती हैं। मानसिक और शारीरिक गुण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इन दोनों का प्रभाव व्यक्तित्व में दिखाई पड़ता है। ये गुण स्थिर नहीं रहते, परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। इसलिए इसे गत्यात्मक संगठन कहा गया है।

3. इस परिभाषा में तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि यह पर्यावरण से समायोजन करने पर बल देती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुसार परिस्थितियों से समायोजन करने का प्रयास करता है क्योंकि दो व्यक्तियों की मनोशारीरिक अवस्थाएँ एक समान नहीं होतीं। व्यक्ति के अन्दर गत्यात्मक संगठन में भी भिन्नता पाई जाती है अर्थात् व्यक्तित्व सम्बन्धी समायोजन वैयक्तिक भिन्नताओं से प्रभावित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलपोर्ट की परिभाषा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में समन्वयवादी दृष्टिकोण रखती है। यह एक ओर मानसिक और शारीरिक गुणों के समन्वय पर जोर देती है और दूसरी ओर इसके गत्यात्मक स्वरूप और समायोजन पर बल देती है। इसलिये यह परिभाषा सभी मनोवैज्ञानिकों को मान्य है।

17.5व्यक्तित्व की संरचना

फ्रायड (1927) के अनुसार, व्यक्तित्व तीन तत्वों से निर्मित है- इदं(Id), अहं (Ego)तथा आदर्श अहं(Super Ego)। इदं का सम्बन्ध अचेतन मन से है। इसकी प्रकृति पशु प्रवृत्यात्मक है और यह सुखवादी सिद्धान्त से प्रभावित होने के कारण अचेतन स्तर की समस्त दमित, असामाजिक तथा अनैतिक इच्छाओं, प्रेरणाओं आदि की येन-केन प्रकारेण तत्काल सन्तुष्टि चाहता है। फ्रायड इसका क्षेत्र बहुत व्यापक मानता है। अहं, इदं का परिष्कृत और विकसित रूप है। यह तार्किक, व्यवस्थित और विवेकपूर्ण होता है और परिष्कृत प्रतिक्रियाओं द्वारा यथार्थ का ध्यान रखते हुए इदं की इच्छाओं की पूर्ति कराता है। यह यथार्थ के सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करता है।

आदर्श अहं, अहं का विकसित रूप है और व्यक्तित्व का अन्त में विकसित होने वाला नैतिक पक्ष है। इसके विकास में बाल्यवस्था की तादात्मयीकरण तथा अन्तःक्षेपण आदि क्रियायें सहायता करती हैं। इसका यथार्थ जगत से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यह निरपेक्ष नैतिकता के आधार पर व्यवहार करना चाहता है और व्यक्ति को बाल्यावस्था में प्राप्त आदर्शों की प्राप्ति के लिये उन्मुख करता है। व्यक्ति में इसका निर्माण उसके स्वयं के जीवन के अनुभव ही नहीं करते अपितु परम्परायें भी इसके निर्माण और विकास में सहयोग देती हैं। यह केवल मानव में पाया जाता है। प्रारम्भ में बालक अत्यन्त स्वार्थी और पशुवत् व्यवहार करता है। वह शुद्ध इदं का प्रतिरूप होता है। अतः अपनी समस्त इच्छाओं को बिना यथार्थ पर ध्यान दिये तत्काल तन्तुष्ट करना चाहता है। अहं, बाह्य वातावरण से सम्बन्धित होता है। अतः उससे उत्पन्न खतरों का ध्यान रखते हुए इदं की इच्छाओं को यथार्थ जगत के अनुरूप अभिव्यक्त करने और सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता है। आदर्श अहं और इदं एक दूसरे के नितान्त विरोधी हैं। यह प्रतिबन्धों से निर्मित है और इदं युक्त और स्वच्छन्द है। अहं इनकी विरोधी इच्छाओं में सामंजस्य कराने का प्रयास करता है, क्योंकि सभ्य समाज में रहने के लिये उसकी मान्यताओं का पालन करना अनिवार्य है और खोखले

आदर्शों को लेकर भी जीवित रहना कठिन है। इसी कारण इसे 'मन का मुख्य शासक' कहा गया है। यदि अहं शक्तिशाली है तो वह इर्द के आवेगों को रोकता है और आदर्श अहं के नैतिक लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। वास्तव में ये तीन भाग व्यक्तित्व की तीन दशायें हैं जो उसके विकास की अवस्थाओं से सम्बन्धित हैं। आदर्श अहं का विकास सभ्यता से सम्बन्धित है और इदं आदिम समाज और व्यक्तित्व से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, हम कहीं जा रहे हैं, रास्ते में आम का बाग पड़ता है जिसमें बढ़िया पके हुए आम लगे हुए हैं, हमारी इच्छा होती है कि तोड़कर भर पेट आम खाये जायें पर रखवाले का भय हमें विवश करता है कि हम उसके हटने की प्रतीक्षा करें, दूसरी ओर यह विचार आता है कि यह तो चोरी है, ऐसा करना अनुचित है। इसमें पहली इच्छा इदं, दूसरी अहं व तीसरी आदर्श अहं की है।

17.6व्यक्तित्व की विशेषताएं

व्यक्तित्व, शब्द में अनेक विशेषतायें निहित होती हैं। व्यक्तित्व में निम्न विशेषताओं को देखा जाता है-

1. **आत्म-चेतना-** व्यक्तित्व की पहली और मुख्य विशेषता है- आत्म-चेतना। इसी विशेषता के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है और उसके व्यक्तित्व की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है। पशु और बालक में आत्म-चेतना न होने के कारण यह कहते हुए कभी नहीं सुना जाता है कि इस कुत्ते या बालक का व्यक्तित्व अच्छा है। जब व्यक्ति यह जान जाता है कि वह क्या है, समाज में उसकी क्या स्थिति है, दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं- तभी उसमें व्यक्तित्व का होना स्वीकार किया जाता है।
2. **सामाजिकता**- व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है- सामाजिकता। समाज में पृथक मानव और उसके व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव में आत्म-चेतना का विकास तभी होता है, जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्तःक्रिया करता है। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। अतः व्यक्तित्व में सामाजिकता की विशेषता होना अनिवार्य है।
3. **सामंजस्य-** व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है- सामंजस्यता। व्यक्ति को न केवल बाह्य वातावरण से, वरन् अपने स्वयं के आन्तरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है। सामंजस्य करने के कारण उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है और फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व में विभिन्नत दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि चोर, डाकिये, पत्नी, डाक्टर आदि के व्यवहार और व्यक्तित्व में अन्तर मिलता है।
4. **दृढ़ इच्छा-शक्ति**- व्यक्तित्व की चौथी विशेषता है- दृढ़ इच्छा-शक्ति। यही शक्ति, व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता

प्रदान करती है। इस शक्ति की निर्बलता उसके जीवन का अस्त-व्यस्त करके उसके व्यक्तित्व को विघटित कर देती है।

5. **शारीरिक व मानसिक स्वास्थय**- व्यक्तित्व की पाँचवी विशेषता है- शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य। मनुष्य मनो-शारीरिक प्राणी है। अतः उसके अच्छे व्यक्तित्व के लिए अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का होना एक आवश्यक शर्त है।
6. **एकता व एकीकरण**- व्यक्तित्व की छठी विशेषता है- एकता व एकीकरण। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई अवयव अकेला कार्य नहीं करता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता है। ये तत्व है- शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि। व्यक्तित्व के इन सभी तत्वों में एकता या एकीकरण होता है।
7. **विकास की निरन्तरता-** व्यक्तित्व की अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण विशेषता है- विकास की निरन्तरता। उसके विकास में कभी स्थिरता नहीं आती है। जैसे-जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे उसके व्यक्तित्व के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। विकास की यह निरन्तरता, शैशवावस्था से जीवन के अन्त तक चलती रहती है। ऐसा समय कभी नहीं आता है, जब यह कहा जा सके कि व्यक्तित्व का पूर्ण विकास या पूर्ण निर्माण हो गया है। इसीलिए, **गैरिसन व अन्य** ने लिखा है- ''व्यक्तित्व निरन्तर निर्माण की क्रिया में रहता है।''

अभ्यासप्रश्न

1. व्यक्तित्वशब्दकीउत्पत्तिलैटिनभाषाकेकौनसेशब्दसेहुईहै?
2. आल्पोर्टद्वारादीगईव्यक्तित्वकीपरिभाषालिखिए।
3. ____________ के अनुसार ''व्यक्तित्व निरन्तर निर्माण की क्रिया में रहता है।''

17.7व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के किसी प्रकार से तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे वर्ग से है जो व्यक्तित्व गुणों की दृष्टि से एक दूसरे के काफी समान है एवं दूसरे प्रकार से पर्याप्त भिन्नता रखते हैं। व्यक्तित्व को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के द्वारा भिन्न-भिन्न ढंगों से वर्गीकृत किया गया है। व्यक्तित्व के वर्गीकरण में इस वैभिन्य का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिकों के द्वारा अलग-अलग दृष्टिकोणों से व्यक्तित्व के प्रकारों को देखना है। व्यक्तित्व के कुछ प्रमुख वर्गीकरण निम्नवत हैं-

शरीर-रचना दृष्टिकोण

शरीर रचना की दृष्टि से **क्रेचमर** ने व्यक्तित्व को तीन प्रकार का मानते हुए व्यक्तियों को निम्न तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया है-

1. **लम्बकाय**- ऐसे व्यक्ति लम्बे तथा दुबले-पतले शरीर वाले होते हैं। ये दूसरों से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने से बचते हैं तथा अपने क्रोध को सीधे-सीधे अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं।
2. **सुडौलकाय**- ऐसे व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ शरीर वाले होते हैं। ये सामान्य व्यक्तित्व गुणों को रखने वाले व्यक्ति होते हैं।
3. **गोलकाय**- ऐसे व्यक्ति नाटे तथा मोटे होते हैं। ये सुख व दुःख, क्रियाशील व निष्क्रिय, उत्साह व निरूत्साह आदि के बीच झूलते रहते हैं। कभी खुश कभी दुखी, कभी क्रियाशील कभी निष्क्रिय, कभी उत्साही कभी उत्साह विहीन रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। इनमें **जुंग** का वर्गीकरण सबसे अधिक मान्य है। जुंग के अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तियों को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है-

1. **अन्तर्मुखी**- ऐसे व्यक्ति संकोची, लज्जाशील, एकान्तप्रिय, मितभाषी, जल्दी घबराने वाले, आत्मकेंद्रित, अध्ययनशील, आत्मचिन्तक तथा असामाजिक प्रकृति के होते हैं।
2. **बहिर्मुखी**- ऐसे व्यक्ति व्यवहार कुशल, चिन्तामुक्त, सामाजिक, आशावादी, साहसिक, आक्रामक तथा लोकप्रिय प्रकृति के होते हैं।
3. **उभयमुखी**- इस प्रकार के व्यक्तियों में कुछ गुण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के तथा कुछ गुण बर्हिमुखी व्यक्ति के होते हैं।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

स्प्रेंगर ने व्यक्ति के सामाजिक कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व को निम्नलिखित छः भागों में वर्गीकृत किया है-

1. **सैद्धान्तिक**- ऐसे व्यक्तियों में ज्ञान की पिपासा होती है। ये अपने सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करते हैं तथा बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों व विद्वानों को पसंद करते हैं।
2. **आर्थिक**- ऐसे व्यक्ति धन व भौतिक सुख के इच्छुक होते हैं तथा सदैव धन प्राप्ति की दिशा में क्रियाशील रहते हैं।
3. **धार्मिक**- ऐसे व्यक्ति ईश्वर में विश्वास रखने वाले, दैवीय विपदाओं से डरने वाले तथा धार्मिक नियमों के अनुरूप कार्य करने वाले होते हैं।
4. **राजनीतिक**- ऐसे व्यक्ति राजनीतिक विचारों के होते हैं। ये सदैव राजनैतिक दाँव पेंचों में लिप्त रहते हैं तथा राजनीतिक पद प्राप्ति के इच्छुक रहते हैं।

5. **सामाजिक**- ऐसे व्यक्ति दयालु, सहानुभूतिपूर्ण, त्यागी, परोपकारी प्रवृत्ति के होते हैं। ये जनहित में अपने व्यक्तिगत हित का ध्यान नहीं रखते हैं एवं अन्यों की सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं।
6. **कलात्मक**- ऐसे व्यक्ति सौंदर्य के पुजारी होते हैं। इनमें ललित कलाओं, संगीत, काव्य, नृत्य, चित्रकला, प्राकृतिक सौंदर्य, बागवानी, सजावट आदि के प्रति विशेष लगाव होता है।

भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय दर्शन की सर्वोच्च श्रीमद्भगवत गीता में व्यक्तित्व के तीन गुणों यथा- सत गुण, रजोगुण तथा तमोगुण की चर्चा की गयी है। अध्याय 14 के श्लोक 9 में कहा गया है कि सत्वगुण व्यक्ति को सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण प्रमाद में लगाता है। इन तीनों गुणों के आधार पर व्यक्तियों को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है-

1. **सात्विकी**- ऐसे व्यक्तियों में सत्वगुण की प्रधानता होती है। ऐसे व्यक्ति ज्ञानी, शान्त, निर्मल, धार्मिक व सौम्य स्वभाव के होते हैं।
2. **राजसी**- ऐसे व्यक्तियों में रजोगुण की अधिकता होती है। ये साहसी, वीर, दबंग तथा कामना व आसक्ति की प्रवत्ति से युक्त होते हैं।
3. **तामसी**- ऐसे व्यक्तियों में तमोगुण की बहुलता होती है। ये प्रमादी, आलसी, क्रोधी तथा अनावश्यक लड़ाई-झगड़ा करने वाले होते हैं।

अभ्यासप्रश्न

4. शरीररचनाकेआधारपरव्यक्तित्वकितनेप्रकारकेहोतेहैं?
5. जुंगकेअनुसारव्यक्तित्वकेवर्गीकरणकोलिखिए।

17.8व्यक्तित्व विकास का अर्थ

मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व शब्द सामान्य व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। व्यक्तित्व के तत्वों से आशय है, व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने तथा उसे स्थायी रूप देने में जो तत्व काम आते हैं, उन सभी का योग तथा परिणाम, व्यक्ति की समग्र छवि के विषय में एक धारणा प्रस्तुत करता है। यही धारणा व्यक्तित्व कहलाती है। व्यक्ति अच्छा है या बुरा, उत्तम व्यवहार वाला है या सामान्य, प्रभावशाली है या निष्प्रभावी, ये सारे तत्त्व व्यक्ति के अमूर्त रूप को प्रस्तुत करते हैं। एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के विषय में धारणा बनाता है। खास बात यह है कि व्यक्ति, स्वयं के व्यक्तित्व के विषय में कभी धारणा नहीं बनाता। जब भी बनाने का प्रयास करता है, वह बँट जाता है, खण्डित हो जाता है।

ड्रेवर के शब्दों में, ''व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान-प्रदान में व्यक्त करता है।''

17.9व्यक्तित्व विकास की अवस्थाऐं

व्यक्तित्व के विकास की अवस्थाएँ इस प्रकार है-

1. **अधिगम एवं अभिवृद्धि**- व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का उसकी उन क्रियाओं से पता चलता है जिनको वह अपने अस्तित्व के लिये सीखता है, गतिशील, क्रियाशील, उद्यमी, भूखा तथा अन्य इसी प्रकार की विशेषताएँ व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार ग्रहण करता है। शिशु आरम्भ से ही परिपक्वता की ओर विकसित होता है, आयु के विकास के साथ-साथ उसके शरीर के अनेक अंग विकसित होते हैं। इनका विकास तथा अभिवृद्धि उनमें पुष्टता प्रदान करता है। इसी कारण वे किसी कार्य को सीखते हैं तथा सीखने की गति भी इसी पर निर्भर करती है।

   अभिवृद्धि तथा अधिगम बालक के विकास की अन्योन्याश्रित अवस्था है, अभिवृद्धि न होने से अधिगम प्रभावित होता है। अधिगम में शिथिलता बालक की अभिवृद्धि को प्रभावित करती है, अधिगम से व्यवहार में परिवर्तन होता है। अनुभव, उपयोग तथा अभ्यास से अधिगम को सफलता मिलती है।

   आयु-स्तर के अनुसार अभिवृद्धि न होने से बालक का व्यक्तित्व विकृत तथा दूषित होने लगता है। वह धीमी गति से सीखने वाला हो जाता है और उसके व्यक्तित्व में चेतना का अभाव पाया जाता है।
2. **अधिगम एवं परिपक्वता-** बालक के व्यक्तित्व की यह अवस्था परिपक्वता पर निर्भर करती है। आयु-वृद्धि के साथ-साथ शारीरिक परिपक्वता आती है और यह परिपवक्ता उसकी अधिगम की प्रकृति को प्रभावित करती है।
3. **विकास की प्रक्रिया**- विकास की अवस्थाओं के दौरान व्यक्तित्व का विकास उसकी प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राणी में विकास प्रक्रिया का निश्चित समय होता है।

उपरोक्त सभी आधारों पर विकास के इन तत्वों की विवेचना इस प्रकार कर सकते हैं-

1. **शारीरिक विकास की अवस्था**- शरीर का संगठित एवं संतुलित अनुपात रचना तथा आकार को व्यक्तित्व की आरम्भिक अवस्था माना जाता है। नाटे व्यक्ति का मजाक बनाया जाता है, यही स्थिति लम्बे व्यक्ति की भी होती है। इस अवस्था में बालक-बालिकाओं के शरीर की विभिन्न विशेषताएँ प्रकट होने लगती हैं, इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति

का व्यक्तित्व उसके शारीरिक विकास के अनुसार विकसित होने लगता है। खब्बूपन भी शारीरिक विकास का एक अंग है। इससे भी व्यक्तित्व प्रभावित होता है।

2. **संवेगात्मक विकास की अवस्था**- शरीर के विकास के साथ-साथ व्यक्ति में निहित अनेक संवेगों की अभिव्यक्ति की प्रकृति भी व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करती है। व्यक्ति का क्रोध, भय, प्रेम, घृणा आदि उसके व्यवहार द्वारा व्यक्त होते हैं और यह अभिव्यक्ति ही उसके व्यवहार की संवेदात्मक अवस्था है। व्यक्तित्व के विकास में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है। भय, क्रोध, चिन्ता, दुश्मनी आदि वे अवस्थाएँ हैं जिनसे संवेग उत्पन्न होते हैं। रूचि तथा भय से भी संवेगों की उत्पत्ति होती है। रोना, हंसना, लड़ना, भड़कना, प्रचण्डता आदि संवेगों की वे अवस्थाएँ हैं जो व्यक्तित्व को स्वरूप प्रदान करती है।
3. **सामाजिक विकास की अवस्था**- व्यक्तित्व के विकास की सामाजिक अवस्था का आरम्भ शिशु द्वारा माता का चेहरा देखकर मुस्कराने से होता है, पाँच माह की आयु से वह दूसरों को देखकर मुस्कुराता है, 18 माह की अवस्था में वह सामाजिक सम्बन्धों के जटिल रूप अर्थात् नातेदार की पहचान करने लगता है। बाल्यावस्था में यह मैत्री रूप धारण करता है, किशोरावस्था में वह एक पूर्ण सामाजिक व्यक्तित्व बन जाता है, सहयोग मैत्री बढ़ने लगती है कि अवसाद के क्षणों में वह अकेलापन भी महसूस करने लगता है। लड़ाई-झकड़ों के साथ-साथ मित्रभाव से साथ निभाने की भावना भी विकसित होने लगती है।

4. **सांस्कृतिक विकास की अवस्था**- बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड के अनुसार- ''जिस संस्कृति में व्यक्ति का लालन-पालन होता है, उसका उसके व्यक्तित्व के लक्षणों पर सबसे अधिक व्यापक प्रकार का प्रभाव पड़ता है। अतः संस्कृति, व्यक्तित्व को विकास के प्रत्येक स्तर पर प्रभावित करती है। मान्यताएँ, आदर्श, रीति-रिवाज, रहन-सहन की विधियाँ, धर्म-कर्म आदि की शैलियाँ, व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना करने में सहयोग देती हैं। एक वंश के दो बालकों का पालन यदि दो भिन्न संस्कृतियों में होता है तो उनका व्यक्तित्व संस्कृति के अनुसार भिन्न होगा।

5. **मानसिक विकास की अवस्था-** व्यक्ति का मानसिक विकास उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। मानसिक विकास का आरम्भ ज्ञान से होता है, ज्ञान का आरम्भ पहचान तथा अभिव्यक्ति से होता है। भूख-प्यास के माध्यम से सांसारिक वस्तुओं का दृष्टिकोण विस्तृत होता है, काल-अनुभूति, आकर्षण, भविष्य निर्माण, ध्यान केन्द्रित करना, चिन्तन, तर्क, कल्पना का विकास होने से व्यक्तित्व का मानसिक स्वरूप उभरता है।

17.10व्यक्तित्व विकास के निर्धारक तत्व

व्यक्तित्व विकास के अर्थ एवं विभिन्न अवस्थाओं को स्पष्ट करने के उपरान्त यह आवश्यक एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है कि व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट किया जाये। यद्यपि जन्म के समय व्यक्ति में कुछ जन्मजात विशेषताएं होती हैं तथापि उसके व्यक्तित्व का विकास धीरे-धीरे एक क्रमबद्ध ढंग से होता है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व दो प्रकार के कारकों से प्रभावित होता है, ये हैं- जैवकीय कारक तथा वातावरणीय कारक। इन दोनों प्रकार के कारकों को परस्पर अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप व्यक्तित्व का विकास होता है इसलिए व्यक्तित्व के निर्धारक भी कहा जाता है। अब आप व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों का क्रमबद्ध अध्ययन निम्नवत करेंगे-

1. **वंशानुक्रम**- अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। उदाहरणार्थ, फ्रांसिस गाल्टन ने प्रमाणित किया है कि वंशानुक्रम के कारण ही व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता दिखाई देती है। इसी प्रकार कैंडोल और कार्ल पियरसन ने सिद्ध किया है कि कुलीन एवं व्यवसायी कुलों में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति की साहित्य, विज्ञान और राजनीति के क्षेत्रों में यश प्राप्त करते हैं। सारांश में, हम स्किनर तथा हैरीमैन के शब्दों में कह सकते हैं- ''मनुष्य का व्यक्तित्व स्वाभाविक विकास का परिणाम नहीं है। उसे अपने माता-पिता से कुछ निश्चित शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।''
2. **जैविक कारक**- व्यक्तित्व विकास के मुख्य जैविक कारक नलिकाविहीन ग्रन्थियों, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और शारीरिक रसायन हैं। इन कारकों का व्यक्तित्व के विकास पर जो प्रभाव पड़ता है, उनके विषय में गैरेट का मत है- ''जैविक कारकों का प्रभाव सामाजिक कारकों के प्रभाव से अधिक सामान्य और कम विशिष्ट है, पर किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। जैविक कारक ही व्यक्तित्व के विकास की सीमा को निर्धारित करते है।''
3. **शारीरिक रचना**- शारीरिक रचना के अन्तर्गत शरीर के अंगों का पारस्परिक अनुपात शरीर की लम्बाई और भार, नेत्रों और बालों का रंग, मुखाकृति आदि आते हैं। ये सभी किसी-न-किसी रूप में व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, बहुत छोटे पैरों वाला मनुष्य अच्छे दौड़ने वाले के रूप में कभी भी यश प्राप्ति नहीं कर सकता है। इसीलिए मैक्डूगल ने बलपूर्वक कहा है- ''हमें उन विशिष्टताओं के अप्रत्यक्ष प्रभावों को निश्चित रूप में स्वीकार करना पड़ेगा, जो मुख्य रूप से शारीरिक हैं।''
4. **दैहिक प्रवृत्तियां** - जलोटा का मत है कि दैहिक प्रवृत्तियों के कारण शरीर के अन्दर रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जिनके फलस्वरूप व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी या आकांक्षाहीन, सक्रिय या निष्क्रिय बनता है। इन बातों का उसके व्यक्तित्व के विकास पर वांछनीय या

अवांछनीय प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वुडवर्थ का कथन है- ''शरीर की दैहिक दशा, मस्तिष्क के कार्य पर प्रभाव डालने के कारण व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है।''

5. **मानसिक योग्यता**- व्यक्ति में जितनी अधिक मानसिक योग्यता होती है, उतना ही अधिक वह अपने व्यवहार को समाज के आदर्शों और प्रतिमानों के अनुकूल बनाने में सफल होता है। परिणामतः उसके व्यक्तित्व का उतना ही अधिक विकास होता है। उसकी तुलना में अल्प मानसिक योग्यता वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कहीं कम होता है।
6. **विशिष्ट रूचि**- मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उस सफलता के अनुपात में होता है, जो उसे किसी कार्य को करने से प्राप्त होती है। इस सफलता का मुख्य आधार है- उस कार्य में उसकी विशिष्ट रूचि। कला या संगीत में विशिष्ट रूचि लेने वाला व्यक्ति ही कलाकार या संगीतज्ञ के रूप में उच्चतम स्थान पर पहुँच सकता है। अतः स्किनर तथा हैरीमैन का मत है- ''विशिष्ट रूचि की उपस्थिति को व्यक्तित्व के विकास के आधारभूत कारकों की किसी भी सूची में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।''
7. **भौतिक वातावरण-** भौतिक या प्राकृतिक वातावरण अलग-अलग देशों और प्रदेशों के निवासियों के व्यक्तित्व पर अलग-अलग तरह की छाप लगाता है। यही कारण है कि मरूस्थल में निवास करने वाले, अरब और हिमाच्छादित टुण्ड्रा प्रदेश में रहने वाले ऐस्किमो लोगों की आदतों, शारीरिक बनावटों, जीवन की विधियों, रंग और स्वास्थ्य आदि में स्पष्ट अन्तर मिलता है। थोर्प एवं शमलर ने लिखा है- यद्यपि भौतिक संसारों के अन्तरों का, व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अभी तक बहुत कम अध्ययन किया गया है, पर भावी अनुसन्धान यह सिद्ध करता है कि ये प्रभाव आधारहीन नहीं है।''
8. **सामाजिक वातावरण**- बालक जन्म के समय मानव-पशु होता है। उसे न बोलना आता है और न कपड़े पहनना। उसका न कोई आदर्श होता है और न वह किसी प्रकार का व्यवहार करना ही जानता है। पर सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में रहकर उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगता है। उसे अपनी भाषा, रहन-सहन के ढंग, खाने-पीने की विधि, दूसरों के साथ व्यवहार करने के प्रतिमान, धार्मिक एवं नैतिक विचार आदि अनेक बातें समाज से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार, समाज उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। गैरेट के अनुसार- ''जन्म के समय से ही बालक का व्यक्तित्व उस समाज द्वारा, जिसमें वह रहता है, निर्मित और परिवर्तित किया जाता है।''
9. **सांस्कृतिक वातावरण**- समाज व्यक्तित्व का निर्माण करता है। संस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित करती है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यतायें, रीति-रिवाज, रहन-सहन की विधियाँ, धर्म-कर्म आदि होते हैं। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है, जिसमें उसका लालन-पालन होता है, उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का स्वरूप निश्चित होता है। इस प्रकार, उसके व्यक्तित्व पर उसकी संस्कृति की अमिट छाप लग जाती है। बोरिंग, लैंगफील्ड

एवं वील्ड के अनुसार- ''जिस संस्कृति में व्यक्तित्व का लालन-पालन होता है, उसका उसके व्यक्तित्व के लक्षणों पर सबसे अधिक व्यापक प्रकार का प्रभाव पड़ता है।''

10. **परिवार-** व्यक्तित्व के निर्माण का कार्य परिवार में आरम्भ होता है। यदि बालक को परिवार में प्रेम, सुरक्षा और स्वतन्त्रता का वातावरण मिलता है, तो उसमें साहस, स्वतन्त्रता और आत्म-निर्भरता आदि गुणों का विकास होता है। इसके विपरीत यदि उसके प्रति कठोरता का व्यवहार किया जाता है और उसे छोटी-छोटी बातों के लिए डाँटा और फटकारा जाता है तो वह कायर और असत्यभाषी बन जाता है। परिवार की उत्तम या निम्न आर्थिक और सामाजिक स्थिति का भी उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, जैसा कि थोर्प एवं शमलर ने लिखा है- ''परिवार, बालक को ऐसे अनुभव प्रदान करता है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास की दिशा को बहुत अधिक सीमा तक निश्चित करते हैं।''
11. **विद्यालय-** व्यक्तित्व के विकास पर विद्यालय की सब बातों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जैसे- पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षक-छात्र सम्बन्ध छात्र-छात्र सम्बन्ध, खेलकूद आदि। अनेक मनोवैज्ञानिकों की यह अटल धारणा है कि औपचारिक पाठ्यक्रम, कठोर अनुशासन, प्रेम और सहानुभूति, शिक्षक एवं छात्रों के पारस्परिक वैमनस्यपूर्ण सम्बन्ध व्यक्तित्व को निश्चित रूप से कुण्ठित और विकृत कर देते हैं। क्रो एवं क्रो के शब्दों में- ''बालक के विकसित होने वाले व्यक्तित्व पर विद्यालय के अनुभवों का प्रभाव उससे कहीं अधिक पड़ता है, जितना कि कुछ शिक्षकों का विचार है।''
12. **अन्य कारक**- व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य कारक हैं- (1) बालक का पड़ोस, समूह और परिवार की इकलौती सन्तान होना; (2) बालक के शारीरिक एवं मानसिक दोष, संवेगात्मक असन्तुलन और माता की मृत्यु के कारण प्रेम का अभाव (3) मेला, सिनेमा, धार्मिक स्थान, आराधना-स्थल, जीवन की विशिष्ट परिस्थितियाँ और सामाजिक स्थिति एवं कार्य।

निष्कर्ष के रूप में, हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के विकास पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के समग्र रूप का अध्ययन करके ही व्यक्तित्व के विकास की वास्तविक परिधियों का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा करते समय इस तथ्य पर विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले सबसे अधिक शक्तिशाली कारक पर्यावरण-सम्बन्धी है। इस सम्बन्ध में थार्प व शमलर के ये विचार उल्लेखनीय है- ''भौतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण-ये सब व्यक्तित्व के निर्माण में इतना प्रभावशाली कार्य करते हैं कि व्यक्तित्व को उसे आवृत्त रखने वाली बातों से पृथक नहीं किया जा सकता है।''

अभ्यासप्रश्न

6. व्यक्तित्वविकासकीकौन-कौनसीअवस्थाऐंहोतीहैं?

7. व्यक्तित्वविकासकेमुख्यनिर्धारककौन-कौनसेहैं?

17.11सारांश

यद्यपि व्यक्तित्व शब्द का परम्परागत अर्थ बाह्य पहनावे व वेशभूषा से है परन्तु आधुनिक समय में व्यक्तित्व को विस्तृत रूप में परिभाषित किया गया है। विस्तृत अर्थों में व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यक्ति के समस्त शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक गुणों के उस गत्यात्मक संगठन से है जो उसका वातावरण से सामंजस्य बनाता है। व्यक्तित्व की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्तित्व का कई सिद्धान्तों का प्रतिपा ादन किया गया है जो अपने-अपने ढंग से व्यक्तित्व के प्रत्यय एवं मानव व्यवहार को स्पष्ट करते हैं। फ्रायड ने इदं, अहं तथा परा-अहं, अचेतन तथा अर्द्ध चेतन अवस्थाओं की सहायता से व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। क्रेचमर ने शरीर आकृति के आधार पर व्यक्तित्व को स्थूलकाय, सुडौलकाय तथा कृशकाय में वर्गीकृत किया जबकि जुंग ने मनोवैज्ञानिक आधार पर व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी में वर्गीकृत किया। स्प्रेन्गार ने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्तित्व को छः प्रकार में वर्गीकृत किया है। व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारक मुख्य रूप से परिवार, पास-पडौस, आर्थिक स्थिति, वंशानुक्रम, विद्यालय, शारीरिक रचना, सामाजिक वातावरण, सांस्कृतिक वातावरण, मानसिक योग्यता, दैहिक प्रवृत्तियां, विशिष्ट रूचि एवं भौतिक वातावरण हैं।

17.12 शब्दावली

1. पर्सनेलिटी - शब्द लेटिन के शब्द परसोना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ होता है मुखोटा
2. वात-प्रकृति- वात-प्रकृति के व्यक्ति रुक्ष, कृश तथा पतले शरीर वाले होते हैं।
3. पित्त प्रकृति- पित्त प्रकृति के व्यक्तित्व के अंगों में सुकुमारता होती है।

17.13अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पर्सोना
2. ऑलपोर्ट के अनुसार- ‘‘व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनो-शारीरिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन निर्धारित करता है।’’
3. गैरिसन व अन्य
4. शरीर रचना की दृष्टि से क्रेचमर ने व्यक्तित्व को तीन प्रकार का मानते हुए व्यक्तियों को निम्न तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया है-

लम्बकाय, सुडौलकाय, गोलकाय

5. जुंग के अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तियों को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है- अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी, उभयमुखी
6. व्यक्तित्व विकास की निम्नलिखित अवस्थाऐं होती हैं-
   i. शारीरिक विकास की अवस्था
   ii. संवेगात्मक विकास की अवस्था
   iii. सामाजिक विकास की अवस्था
   iv. सांस्कृतिक विकास की अवस्था
   v. मानसिक विकास की अवस्था
7. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-
   वंशानुक्रम, कारक,शारीरिक रचना,दैहिक प्रवृत्तियां,मानसिक योग्यता,विशिष्ट रूचि,भौतिक वातावरण,सामाजिक वातावरण,सांस्कृतिक वातावरण,परिवार, विद्यालय

17.14सन्दर्भग्रंथ

1. सारस्वत, मालती (2005), ''शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा'', आलोक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 533-563।
2. पाठक, पी0डी0 (2010), ''शिक्षा मनोविज्ञान'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 452-473।
3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2004), ''उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ 218-243।
4. भटनागर, ए0बी0, भटनागर, मीनाक्षी एवं भटनागर, अनुराग (2010), ''अधिगमकर्त्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया'', आर0लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 238-301।

17.15निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व सम्बन्धी अवधारणा से क्या अभिप्राय है?
2. व्यक्तित्व की विशेषताओं की सूची बनाओं।
3. व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को विस्तृत रूप से लिखिये।
4. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं को लिखिए।

इकाई 18- व्यक्तित्व के सिद्धान्त
Theories of Personality

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 ऑलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त
18.4 कैटल का शीलगुण सिद्धान्त
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.8 संदर्भ ग्रन्थ
18.9 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

शिक्षाजगतमेंव्यक्तित्वशब्दअपनाएकविशेषस्थानरखताहै।शिक्षाअपनेसम्पूर्णरूप्मेबालककेव्यक्तित्वके सर्वांगीणविकासमेअपनाप्रयोजनरखतीहै।व्यक्तित्वकेस्वरूपकीव्याख्याकरनेकेलियेविभिन्नतरहकेउपागमोकेतहतकईसिद्धान्तोकाप्रतिपादनकियागयाहैं।इससेपहलेकिइकाईमेंआपनेव्यक्तित्वकाअर्थएवंउसकोप्रभावितकरनेवालेकारकोकाअध्ययनकियाहै।व्यक्तित्व एक इस तरह का सम्प्रत्यय है, जिसकी व्याख्या भिन्न तरह से की जाती है। अलग-अलग दार्शनिकोंतथामनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय को अपने दृष्टिकोण से देखा है। यहां पर हम व्यक्तित्व के सिद्धान्तों का अध्ययन कर रहे हैं। इसइकाईमेआपव्यक्तित्वकेशीलगुणउपागमकाअध्ययनकरेगें।जैसाकिनामसेहीस्पष्टहैइसउपागममेंव्यक्तित्वकीव्याख्याव्यक्तित्वशीलगुणों केरूपमेकीजातीहैं।

18.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप-

- व्यक्तित्व की विभिन्न सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ऑलपोर्ट द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त का वर्णन कर पायेंगे।
- कैटल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त की व्यख्या कर पायेंगे

इस इकाई में आप व्यक्तित्व के निम्नलिखित सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे –

i. ऑलपोर्ट काशीलगुणयाविशेषकउपागम Allport's Trait Approach
ii. कैटल का शीलगुणयाविशेषकउपागम Cattell's Trait Approach

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुछ शीलगुण निर्धारित एवं नियंत्रित करते हैं शीलगुण सिद्धान्त का अध्ययन करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि शीलगुण क्या है? शीलगुण की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

क्रेच तथा क्रचफील्ड(Krech & Crutchfield) शीलगुण, व्यक्ति की स्थायी विशेषता है। जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में लगभग एक-सा रहता है।

डी0एन0 श्रीवास्तव- शीलगुण किसी परिस्थिति विशेष में सामान्यीकृत व्यवहार करने का ढंग है, जो अपेक्षाकृत स्थायी होते है। इनके द्वारा विभिन्न परिस्थतियों में लगभग एक जैसा व्यवहार होता है। शीलगुण अपूर्व (Unique) और सार्वभौमिक होते हैं, ये व्यक्तित्व के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार हैं।

18.3 ऑलपोर्ट काशीलगुणयाविशेषकउपागम

ऑलपोर्ट नेव्यक्तित्वकोव्यक्तियों केगणों के आधारपरवर्गीकृतकियाहै।इसकेअनुसारगुणोंकावास्वतिकतथासशक्तअस्तित्वहै।ऑलपोर्ट केअनुसार''गुणों कार्यात्मकरूपकेसमानअनेकउद्दीपकों कोअधीनकरनेकीक्षमतायुक्तएकसामान्यीकृतमनोस्नायुविकप्रणालीहैजोअनुकूलितएवंअभिव्यक्तव्यवहारकेस्थाईरूपोकाअनुकरणतथानिर्देशनभीकरतीहै'' समस्तमानवीयगुणों कोवेतीनश्रेणीयाँदेतेहै।

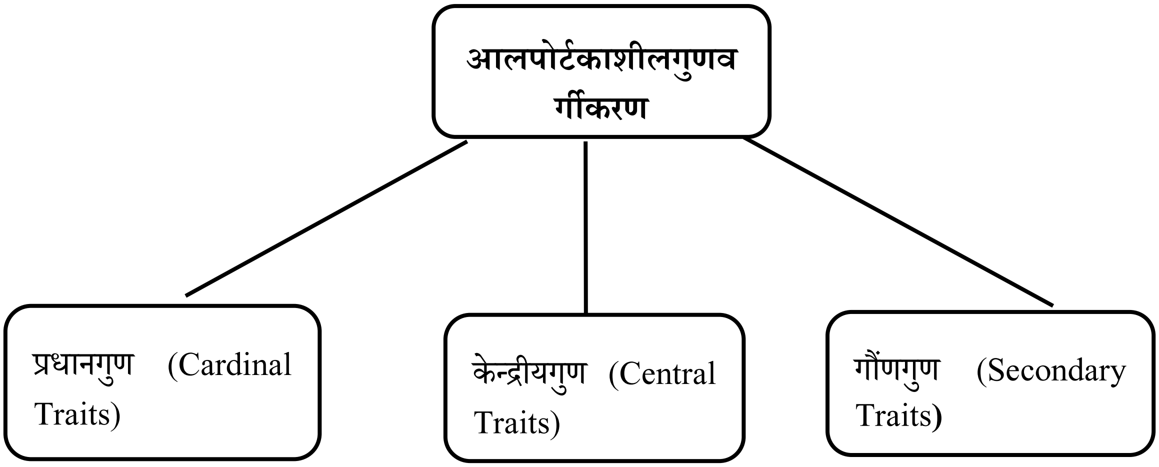

1. **प्रधानगुण(Cardinal Traits)** - येगुणव्यक्तिकेव्यक्तित्वमेंसबसेप्रमुखरूपसेक्रियाशीलपायेंजातेहै।ऐंसेगुणजोव्यक्तिकेव्यवहारमें अधिकाधिकपायेजातेहैवेप्रधानगुणकहलातेहै।इसतरहकेगुणइतनेप्रमुखएवंप्रबलहोतेहैकिउन्हे छिपायानहीजासकताहैऔरव्यक्तिकेप्रत्येकव्यवहारकीव्याख्याइसतरहसेप्रधानगुणकेरूप्मेआ सानीसेकीजातीहै।सभीव्यक्तियोमेंप्रधानगुणनहीहोतेहैपरन्तुजिसमेहोतेहैवहव्यक्तिपूर्णरूपेणउस गुणसेचर्चितहोताहै।जैसेमहात्मागाँधीकेव्यक्तित्वकाप्रधानगुणसत्यएवंअहिंसामेंअटूटविश्वास थाऔरइसगुणसेवेपूरेसंसारमेचर्चितथे।ऐसेगुणसंख्यामेंएकयादोहीहोतेहै।
2. **केन्द्रीयगुण (Central Traits)** - क्रेन्द्रीयगुणव्यक्तिसम्बन्धीउनकुछविशेषव्यक्तित्वगुणों याविशेषकोंकोकहाजाताहैजोप्रायःएकव्यक्तिमेंव्यक्तित्वकावर्णनकरनेतथाउसकीपहचानबना नेकीकाममेंलायेजातेहै।केन्द्रीयगुणप्रधानगुणकीतुलनामेंकमप्रधानहोतेहै।जैसेइमानदारी, दयालुता, सज्जनता, कायरताआदि।
3. **गौंणगुण (Secondary Traits)** - गौंणगुणवेगुणहैजोव्यक्तित्वकेलियेकममहत्वपूर्ण,कमअर्थपूर्णतथाकमस्पष्टहोतेहै।इनकीअधार परव्यक्तित्वकोसमझनेमेंकोईखासमददनहीमिलती।गौंणनामकेअनुरूप्हीइनकाएकतरहसेव्य क्तित्ववर्णनकीदृष्टिसेमहत्वभीगौणहीहोताहै।इन्हेकिसीकेव्यक्तित्वकाअभिन्नअंगनहीमानाजा सकता।

ऑलपोर्ट केअनुसार, व्यक्तिकेव्यक्तित्वकोजानने, समझनेतथाउसकावर्णनकरएकपहचानबनानेमेंमुख्यभूमिकाप्रधानगुणोंतथाकुछचुनेहुयेकेन्द्रीयगुणों कीहीहोतीहै।

व्यक्तित्वकेवर्णनहेतुकितनेव्यक्तित्वगुणोंकीआवश्यकताहैयहनिश्चितकरनेकेलियेऑलपोर्ट नेअपनेएकसहयोगीऑडबर्ट (Odbert)केसाथमिलकरशब्दकोषोमेसेव्यक्तित्वगुणों कोप्रकटकरनेवाले17,953शब्दोंकाविशलेषणकियातथाउनमेंसे4,541शब्दोकाचयनकियाजिनकेद्वारा व्यक्तित्वतथाव्यवहारकाठीकप्रकारसेवर्णनकियाजासके।

इसतरहऑलपोर्ट नेव्यक्तित्वगुणों केमाध्यमसेव्यक्तित्वकोजाननेतथासमझनेकाएकनवीनउपागमविकसितकरनेकीशुरूआतकीजिसेआगे चलकरकैटलजैसेमनोविज्ञानियों नेपूर्णवैज्ञानिकआधारप्रदानकिया।

18.4कैटल का शीलगुण सिद्धान्त

शीलगुणसिद्धान्तमेंऑलपोर्टकेबादकैटेलकानामअधिकमहत्वपूर्णमानागयाहै।इन्होंनेशीलगुणसिद्धान्तमे अपनाविशेषयोगदानकरकेइससिद्धान्तकोव्यक्तित्वकीव्याख्याकरनेमेकाफीप्रबलबनायाहै।आर.वी. कैटेल ने शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

कैटेलनेप्रमुखशीलगुणों कीऑलपोर्टद्वाराबतायेगये18,000शलगुणों मेंसे4,500शीलगुणोकोचुनकरकीबादमें, इनमेंसेसमानार्थशब्दों कोएकसाथमिलाकरइसकीसंख्याउन्होने200करदीऔरफिरबादमेंविशेषसांख्यिकीयविधियानीकारक विश्लेषणकेसहारेअन्तरसहसंबंधद्वाराउसकीसंख्या35करदी।

कैटेलनेशीलगुणोंकोकईढंगसेविभाजितकरअध्ययनकियाहै।उन्होंनेव्यक्तित्वकेशीलगुणोंकोस तहीशीलगुणतथामूलयास्रोतशीलगुणकेरूप्मेविभाजनकियाहै।इनदोनोकावर्णननिम्नाकितहै।

सतहीशीलगुण

जैसाकिनामसेभीस्पष्टहैइसतरहकाशीलगुणव्यक्तित्वकऊपरीसतहयापरिधिपरहोताहैयानीइसतरहकेशी लगणऐसेहोतेहैजोव्यक्तिकेदिन-प्रतिदिनकीअन्त-क्रियामें आसानीसेअभिव्यक्तहोजातेहै।इसकीअभिव्यक्तिइतनीस्पष्टहोतीहैकिसम्बन्धितशीलगुण केबारेमेंव्यक्तिमेंकोईदोमतहोहीनहीं सकतेहैजैसे-प्रसन्नता,परोपकारिता, सत्यनिष्ठाकुछऐसेशीलगुणहैजोसतहीशीलगुणकेउराहरणहैजिनकीअभिव्यक्तिव्यक्तिकेदिन-प्रतिदिनकीअन्तःक्रियामेंस्पष्टरूप्सेहोतीहै।

स्रोतयामूलशीलगुण

कैटैलकेअनुसारमूलशीलगुणव्यक्तित्वकीअधिकमहत्वपूर्णसंरचनाहैतथाइसकीसंख्यासतहीशीलगुण कीअपेक्षाकमहोतीहै।मूलशीलगुणसतहीशीलगुणकेसमानव्यक्तिकेदिन-प्रतिदिनकीअन्तःक्रियामेंस्पष्टरूप्सेव्यक्तनहींहोपातेहैअतःइसकाअवलोकन सीधेनहीं कियाजासकताहै।कैटेलकेअनुसारमूलशीलगुणव्यक्तित्वकीभीतरीसंरचनाहोतीहैजिसकेबारेमेंहमेज्ञानत बहोताहैजबहमउससेसम्बन्धितसतहीशीलगुणकोएकसाथमिलानेकीकोशिशकरतेहै।जैसे-सामुदायिकता, निस्वार्थतातथाहास्यतीनऐसेसतहीशीलगुणहैजिनकेएकसाथमिलानेसेएकनयामूलशीलगुणबनताहैजि सेमित्रताकीसंज्ञादीजातीहै।इसउदाहरणसेयहभीस्पष्टहैकिमूलशीलगुणकीअभिव्यक्तिसतहीशीलगुणों केरूपमेंहीहोतीहै।इसलियेकैटेलनेसतहीशीलगुणको“शीलगुणसूचक”भीकहाहै।कैटेलकेअनुसार23मू लशीलगुणऐसेहैजोसामान्यव्यक्तियोमेंपायेजातेहैतथा12ऐसेमूलशीलगुणहैजोअसामान्यव्यक्तियोमेंपाये जातेहे।इस23मेंसे16कोकैटेलनेअत्यधिकमहत्वपूर्णबतलायाहैऔरइसेमापनेकेलियेउन्होनेएकविशेषप्र श्नावलीभीतैयारकीजिसेसोलहव्यक्तित्वकारकप्रश्नावली (16 Personality Factor Questionnaire)कीसंज्ञादीहै।

सारणी 15.5

कैटल का शीलगुण वर्गीकरण

क्रम	कारक	शीलगुणों के नाम	
		निम्न	उच्च
1	A	आत्मकेन्द्रित	उदार
2	B	कम बुद्धि	अधिक बुद्धि
3	C	संवेगी	स्थिर
4	E	विनम्र	प्रभुत्ववादी
5	F	गम्भीर	प्रसन्नचित्त
6	G	स्वार्थ साधक	सद्विवेकी
7	H	लज्जालु	साहसी
8	I	कठोर	संवेदनशील
9	L	विश्वास करने वाला	शंकालु
10	M	व्यावहारिक	काल्पनिक
11	N	स्पष्ट वादी	चालाक
12	O	आत्मविश्वस्त	आशंकित
13	Q 1	रूढ़िवादी	प्रगतिशील
14	Q2	समूहाश्रित	आत्माश्रित
15	Q3	अनियंत्रित	नियंत्रित
16	Q4	विश्रांत	तनावयुक्त

अभ्यास प्रश्न

1. _____________ के अनुसारशीलगुण, व्यक्ति की स्थायी विशेषता है। जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में लगभग एक-सा रहता है।
2. शीलगुण किसी परिस्थिति विशेष में_____________ व्यवहार करने का ढंग है ।
3. आलपोर्टनेसमस्तमानवीयगुणों कोकिन तीनश्रेणीयोंमें बाँटा है?
4. _____________गुणव्यक्तिकेव्यक्तित्वमेंसबसेप्रमुखरूपसेक्रियाशीलपायेंजातेहै।
5. _____________वेगुणहैजोव्यक्तित्वकेलियेकममहत्वपूर्ण,कमअर्थपूर्णतथाकमस्पष्टहोतेहै ।
6. _____________केअनुसार, व्यक्तिकेव्यक्तित्वकोजानने, समझनेतथाउसकावर्णनकरएकपहचानबनानेमेंमुख्यभूमिकाप्रधानगुणोंतथाकुछचुनेहुयेकेन्द्रीय गुणों कीहीहोतीहै।
7. कैटेलनेव्यक्तित्वकेशीलगुणोंकोकिन श्रेणीयों में विभाजित किया?

8. सतहीशीलगुणव्यक्तिकेदिन-प्रतिदिनकीअन्त-क्रियामें आसानीसेअभिव्यक्तहोजातेहै। (सत्य/असत्य)
9. कैटेलनेसतहीशीलगुणको______________भीकहाहै।
10. सोलहव्यक्तित्वकारकप्रश्नावली किसकी देन है?

18.5 सारांश

इस खण्ड के आमुख में हमने सीखा कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि व्यक्ति अपने अवगुणों को छिपाता है, गुणों का प्रकट करता है। कोई भी व्यक्ति आप को आपकी स्वीकृति के बिना हीन महसूस नहीं करा सकता। हमें गुणवान व्यक्तियों की संगत में रहना चाहिए। हमें अपने व्यवहार को सुसंगत, यथायोग्य बनाना हमारे हित में है। इस इकाई में हमने भारतीय साहित्य तथा पश्चिमी साहित्य में व्यक्तित्व के समझने का प्रयास किया है तथा इस की परिभाषाओं का अध्ययन किया है। व्यक्तित्व के प्रकार को समझने के लिए नये तथा पुराने वर्गीकरण को जाना है तथा शीलगुण सिद्धान्तों का समालोचनात्मक अध्ययन किया है।

18.6 शब्दावली

1. **शीलगुण**-व्यक्ति की स्थायी विशेषता।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क्रेच तथा क्रचफील्ड
2. सामान्यीकृत
3. आलपोर्टनेसमस्तमानवीयगुणों कोनिम्नतीनश्रेणीयाँमें बाँटा है-
   i. प्रधानगुण
   ii. केन्द्रीयगुण
   iii. गौंणगुण
4. प्रधानगुण
5. गौंणगुण
6. ऑलपोर्ट
7. कैटेलनेव्यक्तित्वकेशीलगुणोंको निम्न श्रेणीयों में विभाजित किया-

i. सतहीशीलगुण

ii. मूलयास्रोतशीलगुण

8. सत्य
9. शीलगुणसूचक
10. सोलहव्यक्तित्वकारकप्रश्नावली कैटल की देन है

18.8 संदर्भ ग्रंथ

1. सिहं,अरूण कुमार,उच्चार सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल,बनारसीदास।
2. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
3. Gupta, S.P. (2002):उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
4. Sukla, O.P. (2002):शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ, भारत प्रकाशन।

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आलर्पोट केशीलगुण सिद्धांत की व्याख्या किजिए।

2. कैटल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

ईकाई 19 - व्यक्तित्व मापन की प्रविधियाँ
Techniquesof PersonalityAssessment

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 व्यक्तित्व प्रविधियों का विकास
19.4 व्यक्तित्व प्रविधियों के प्रकार तथा कार्यनीतियाँ
19.5 वस्तुनिष्ठ प्रविधियाँ
19.6 आत्मनिष्ठ प्रविधियाँ
19.7 प्रक्षेपण प्रविधियाँ
19.8 सारांश
19.9 शब्दावली
19.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.11 संदर्भ ग्रन्थ
19.12 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक जटिल प्रक्रिया है तथा अपनी इसी जटिलता और गूढ़ता के कारण काफी समय तक मनोवैज्ञानिकों द्वारा यह अपेक्षित विषय रहा है। प्राणी और मानव विज्ञान के विकास ने व्यक्तित्व की पुरानी धारणाओं को बदल दिया है। अतः व्यक्तित्व का आधार क्या होना चाहिए? यह प्रश्न मनोवैज्ञानिकों के लिए जटिल बन गया था। उन्होंने विभिन्न रुपों एवं दृष्टिकोणों से व्यक्ति का अध्ययन किया और व्यक्तित्व की प्राचीन अवधारणाओं को समाप्त कर नवीन अवधारणा को स्थापित किया।

आधुनिक युग में मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वरुप को नए सिरे से समझाने का प्रयास पाश्चात्य मानवशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने शुरु किया। इनमें मनोवैज्ञानिकों ने तो व्यक्तित्व मापन की विधियाँ भी विकसित की हैं।

व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों और आवश्यकताओं की जानकारी के लिए व्यक्तित्व को मापने से सम्बन्धित तकनीकों की जानकारी होनी चाहिए।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पश्चात आप-

- व्यक्तित्व मापन कीविभिन्न विधियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- व्यक्तित्व अध्ययन के लिए प्रयुक्त विधियों के गुण तथा कमियों को लिख सकेंगे।
- व्यक्तित्व में प्रयुक्त प्रविधियों के प्रकारों तथा विभिन्न कार्यनीतियों का वर्णन कर सकेंगे।

19.3 व्यक्तित्व प्रविधियों का विकास

मानव विकास के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करना एक समस्या रही है। प्रत्येक देश की संस्कृति ने विभिन्न साधनों के द्वारा व्यक्तित्व मापन में रुचि दिखलाई है। आज कपाल विद्या, मुख के लक्षण, आकार के आधार पर और हस्तरेखा आदि साधनों के द्वारा मानव व्यक्तित्व को मापा जा सकता है।

निर्देशन सेवाओं के प्रचार और प्रसार के साथ-साथ व्यक्तिगत मापन की आवश्यकता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। समस्या चाहे शिक्षा, व्यवसाय, मानसिक स्वास्थ्य और अपराध किसी भी क्षेत्र की हो उसके निदान और उपचार के लिए सर्वप्रथम व्यक्तित्व के विषय में पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। व्यक्तित्व की जानकारी से ही समस्या का उद्भव और विकास जाना जा सकता है और फिर उसके निराकरण का उपाय किया जा सकता है। व्यक्तित्व मापन के लिए विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, जो दो दृष्टिकोणों पर आधारित है - अणुवादी दृष्टिकोण तथा सम्पूर्णवादी दृष्टिकोण। इन दोनोंदृष्टिकोणों में व्यक्ति के विभिन्न शीलगुणों का विशिष्ट संगठन है जो व्यवहार या इन गुणों द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है। अणुवादी दृष्टिकोण के अनुयायी इन गुणों का अलग-अलग मापन कर व्यक्तित्व की व्याख्या करते हैं, जबकि सम्पूर्णवादी दृष्टिकोण वाले उन प्रविधियों का प्रयोग करते हैं जिससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झलक मिलती है क्योंकि उनके अनुसार व्यक्तित्व मात्र शीलगुणों का योग न होकर उनका एक विशिष्ट संकलन है। किन्तु शीलगुणों में परिवेश के अनुसार परिवर्तन होता रहता है, जिससे व्यक्ति सदैव एक सा रहकर समय और स्थान के अनुरुप बदलता रहता है।

वर्तमान समय में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन आवश्यक नहीं माना जाता है, बल्कि किसी प्रायोजन हेतु व्यक्तित्व का मापन आवश्यक होता है, उदाहरण के तौर पर कर्मचारी वर्ग के मनोविज्ञानी ऐसे व्यक्तित्व के अच्छे विक्रेता बनने में सहायता करते हैं। फलतः व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियाँ अलग-अलग प्रायोजनों में प्रयोग की जाती है।

19.4व्यक्तित्व प्रविधियों के प्रकार एवं कार्यनीतियां

व्यक्तित्व के निर्धारण को तीन प्रकार की निम्नलिखित प्रविधियों में बांटा जा सकता है, जिसे हम नीचे चार्ट द्वारा एक दृष्टि में देख सकते हैं।

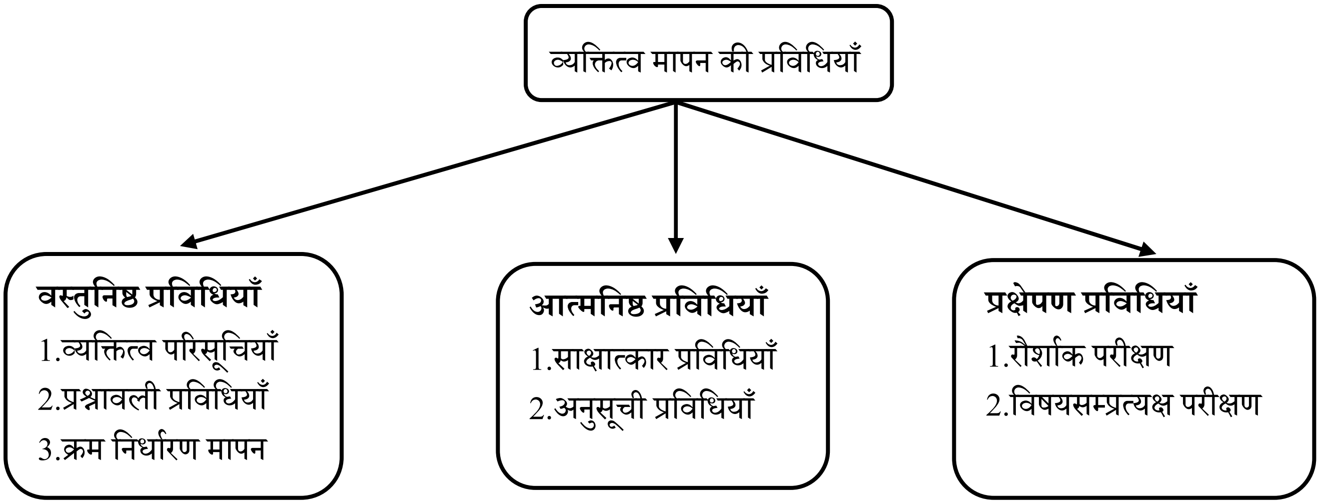

19.5 वस्तुनिष्ठ प्रविधियाँ

ये प्रविधियाँ व्यक्तिगत प्रविधियों के एकदम विपरीत हैं। ये प्रविधियाँ इस बात पर निर्भर नहीं हैं कि विषयी अपने बारे में क्या बतलाता है, बल्कि वे इस बात पर आश्रित है कि उसका प्रत्यक्ष व्यवहार अवलोकनकर्ता को कैसा लगता है। ये प्रविधियाँ भी बुद्धि, रुचि एवं अभिरुचि को आधार मानकर क्रियाशील होती हैं। वस्तुनिष्ठ प्रविधियों के प्रतिपादकों का विचार है कि व्यक्तित्व को समझने के लिये यह आवश्यक है कि विषयी को जीवन के पर्यावरण में रखकर देखा जाये, ताकि उसकी आदतें, लक्षण और अन्य चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट हो सकें। वस्तुनिष्ठ प्रविधियों के प्रयोग के विभिन्न तरीके हैं। जिनमें से हम यहाँ पर निम्नलिखित प्रविधियों को प्रस्तुत कर रहे हैं-

व्यक्तित्व परिसूचियाँ

परिसूची से तात्पर्य उन परीक्षणों से है जो प्रश्नावली के रुप में विभिन्न पदों अथवा कथनों द्वारा व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन एवं मूल्यांकन करते हैं। व्यक्तित्व के अन्तर्गत सभी मनोदैहिक गुण आते हैं। अतः जो विशेषतायें निरीक्षण के द्वारा ज्ञात नहीं की जा सकती, उन विशेषताओं का अध्ययन, मापन और तदानुसार व्यक्तियों का वर्गीकरण करना व्यक्तित्व परिसूचियों का उद्देश्य

होताहै। सर्वप्रथम परिसूची का निर्माण वुडवर्थ ने 1919 में किया परन्तु इसे उन्होंने Inventory नहीं बल्कि 'Personal Date Sheet'का नाम दिया था। वह परिसूची बाद में अन्य परीक्षणों के लिये एक मॉडल बन गई तथा सभी परीक्षण इसी को आधार बनाकर निर्मित किये जाने लगे। वैसे समस्त परिसूचियाँ इस विचार पर आधारित हैं कि व्यक्तित्व और व्यवहार अलग-अलग कोई अस्तित्व नहीं रखते। ये कुछ शीलगुणों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र हैं। इन शीलगुणों का मापन और मूल्यांकन सम्भव है, क्योंकि थार्नडाइक के शब्दों में - ''संसार में यदि कोई वस्तु है तो वह किसी मात्रा में है और इसलिये उसका मापन सम्भव है। 8 व्यक्तित्व परिसूचियों का वर्गीकरण करने का यह अर्थ नहीं है कि वे एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। उनका वर्गीकरण शीलगुणों की संख्या, उद्देश्य, प्रशासन, विषयवस्तु एवं मूल्यांकन प्रविधियों के आधार पर किया जाता है। साधारणतया, परिसूचियों को दो वर्गों में रखा जाता है- एक विमा सम्बन्धी परिसूची तथा दूसरी बहु-आयामी व्यक्तित्व परिसूची। व्यक्तित्व अनेक शीलगुणों का संकलन है, इस दृष्टि से, बहु-आयामी व्यक्तित्व परिसूचियों का प्रयोग अधिक होता है। यहाँ हम केवल प्रश्नावली का ही संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रश्नावली प्रविधियाँ

व्यक्तित्व सम्बन्धी आन्तरिक गुणों के ज्ञान के लिये उस गुण विशेष से सम्बन्धित प्रश्न चुनकर प्रश्नावली का निर्माण किया जाता है जो उनका मापन अधिक अच्छी तरह से कर सकें। इस विधि में व्यक्तियों को प्रश्नावली दे दी जाती है जिन पर निर्देश भी दिये होते हैं। व्यक्ति को निर्देशों के अनुसार प्रतिक्रिया व्यक्त करनी होती है। अतः बहुत कम समय में अनेक व्यक्तियों का मापन करने के लिए यह एक उत्तम विधि है। ये प्रश्नावलियाँ या तो व्यक्ति को सांवेगिक अस्थिरता का पता लगाने के लिये प्रयुक्त होती है या किसी विशिष्ट शीलगुण का पता लगाने या रोग का निदान करने के लिए। प्रश्नावली एक प्रकार की स्व-निर्धारण मापनी ही है। व्यक्ति विभिन्न पदों के माध्यम से यह निर्धारित करता है कि जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में वह किस प्रकार का व्यवहार करेगा। यद्यपि बाहर से यह विधि सरल प्रतीत होती है, लेकिन इसके निर्माण के लिये और वैज्ञानिक रुप से इसके द्वारा आँकडे एकत्रित करने में एक अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रश्नावली में सही उत्तर एक ही होने से इसमें वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है। प्रश्नावली कई प्रकार की होती हैं, जो निम्नलिखित हैं-

i. **प्रतिबद्धित प्रश्नावली** - इसमें प्रयुक्त प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में से किसी एक पर सही का निशान लगाकर देना होता है। प्रश्नावली में प्रश्नों का स्वरुप इस प्रकार होता है -

    क) क्या आप लोगों से मिलना-जुलना पसन्द करते हैं? हाँ/नहीं

    ख) क्या आपको बुरे स्वप्न दिखते हैं? हाँ/नहीं

ii. **खुली प्रश्नावली** - इन प्रश्नावलियों में कुछ प्रश्न या कथन दिये होते हैं जिनके विषय में व्यक्ति को अपने विचार विस्तार से प्रकट करने होते हैं। प्रश्नों का स्वरुप इस प्रकार होता है-

क)‘आपरेशन ब्लेक बोर्ड’ से आपका क्या तात्पर्य है?

ख) नई शिक्षा नीति की सफलता के बारे में आपके क्या विचार हैं?

iii. **चित्रित प्रश्नावली** - इस प्रकार की प्रश्नावली में चित्रों के माध्यम से कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर व्यक्ति चित्रों पर सही का निशान लगाकर या उन्हें रेखांकित करके देता है।

iv. **मिश्रित प्रश्नावली** - जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रकार की प्रश्नावली में सभी प्रकार के प्रश्न मिले-जुले रुप में दिये जाते हैं।

सीमायें

यद्यपि प्रश्नावली विधि अत्यन्त सरल, कम खर्चीली तथा कम समय में बहुत लोगों का परीक्षण करने वाली प्रविधि है और इसीलिये यह बहुत प्रचलित भी है, फिर भी इसकी कुछ सीमायें हैं जिन्हं‍े ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. कभी-कभी विषयी किसी प्रश्न का उत्तर ईमानदारी से नहीं देना चाहते। इसलिये वे अपने मनोवेगों को दबाकर गलत सूचनाऐं दे सकते हैं।
2. इस बात की भी पर्याप्त सम्भावना रहती है कि अभ्यर्थी प्रश्न को ठीक से न समझ सकने के कारण सही तथ्यों की जानकारी न दे पाये।
3. कभी-कभी अभ्यर्थी लापरवाही से प्रश्नावली भरता है और बिना सोचे समझे ‘हाँ’ अथवा ‘नही’ में से किसी एक पर निशान लगाता चला जाता है जिसका प्रभाव परिणामों पर पड़ता है।
4. कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि जिन घटनाओं का उल्लेख प्रश्नां‍े के रुप में किया गया है वे अभ्यर्थी के जीवन में घटी ही न हों अथवा वैसी परिस्थितियों को वह भूल चुका हो। ऐसी स्थिति में उत्तर यथार्थ न होकर काल्पनिक हो जाते हैं।
5. छोटे बालक आत्म-विश्लेषण के योग्य नहीं होते। अतः वे अपने विषय में पूछी गई बात का उत्तर सही नहीं दे पाते।

सावधानियाँ

विशेषज्ञों के अनुसार प्रश्नावली को प्रयोग में लाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ ध्यान में रखनी चाहियें -

- प्रश्नावली का उपयोग तभी किया जाये जबकि ऐसा करना उपयुक्त हो।
- प्रश्नावली का निश्चित उद्देश्य होना चाहिये।
- प्रश्नावली प्रयोग में लाने से पूर्व विद्यार्थियों को विश्वास में लिया जाना चाहिये ताकि वे विश्वसनीय व यथार्थ उत्तर दे सकें।

- ऐसे कथनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये जो व्यक्ति के अतीत या वर्तमान जिन्दगी से सम्बन्धित हों।

निर्धारण मापनी

सभी मनोवैज्ञानिक मापन विधियों में 'निर्धारण मापनी' सबसे अधिक प्रचलित है। इसका प्रयोग उद्योग, व्यापार, अनुसन्धान आदि के क्षेत्रों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके प्रारम्भ में श्रेय मनोभौतिकी के क्षेत्र में 'फेक्नर' को जाता है। लेकिन सर्वप्रथम निर्धारण मापनी 1883 में 'गाल्टन' ने प्रकाशित की जो 'बिम्ब-सृष्टि' से सम्बन्धित थी। इसके बाद 1906-1907 में 'पियर्सन' ने बुद्धि-मापन के लिए एक निर्धारण मापनी का निर्माण किया जिसमें सात श्रेणियाँ थी। इस प्रविधि में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन किसी ऐसे व्यक्ति के विचारों के आधार पर किया जाता है जो पहले व्यक्ति को भलीं-भाँति जानता हो। डेलेन के अनुसार - ''निर्धारण मापनी किसी चर की मात्रा, तीव्रता व बारम्बारता को निर्धारित करती है।''

रुथ स्ट्रेंग के अनुसार - ''निर्देशित निरीक्षण ही निर्धारण है।''

निर्धारण मापनी के प्रकार

मुख्य रुप से निर्धारण मापनी निम्न प्रकार की होती है-

i. संख्यात्मक मापदण्ड
ii. रेखांकित मापदण्ड
iii. संचयी अंक मापदण्ड
iv. मानक मापदण्ड

1. **संख्यात्मक मापदण्ड** - इस प्रकार की मापनियों में निर्धारक कुछ सीमित संख्या में वर्गों का चयन करता है तथा उन्हें उनके मापनी मूल्य के अनुसार क्रमबद्ध कर लेता है। अर्थात् इस विधि में अंकों को निश्चित उद्दीपकों के साथ सम्बन्धित कर देते हैं और व्यक्ति को अपने गुणों के अनुसार अंक मिल जाते हैं। लेविन ने बालकों के खेल की सृजनात्मकता पर कुण्ठा के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सात बिन्दु मापनी का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ, यदि हम नारी सौन्दर्य के आधार पर संख्यात्मक मापदण्ड तैयार करना चाहेंतो मापदण्ड का रुप निम्न हो सकता है-

    i. सर्वाधिक सुन्दर
    ii. अत्यन्त सुन्दर
    iii. सुन्दर
    iv. सामान्य
    v. कुरुप

vi. अत्यन्त कुरुप

vii. सर्वाधिक कुरुप

उपयोग -

- इस प्रकार की मापनियों का निर्माण एवं प्रयोग दोनों सरल हैं।
- यदि निर्धारक अपने अंकों को गम्भीरता से लेता है तो निर्धारण स्वयं में उच्च कोटि के मापन का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

परिसीमाएँ

- इन मापनियों में पक्षपात की अधिक सम्भावनाएँ रहती हैं।
- अनेक व्यक्तियों द्वारा किये गये निर्णय एक समान नहीं होते। कभी-कभी एक व्यक्ति द्वारा निर्णय यदि 'सुन्दरतम' है तो वही वस्तु दूसरे निर्णायक के लिए केवल सामान्य हो सकती है।

2. **रेखांकित मापदण्ड** - यह मापदण्ड अत्यन्त लोकप्रिय है और व्यापक रुप में प्रयुक्त होता है। इसमें एक रेखा बनी होती है जिसे कई भागोंमेंविभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक भाग में नीचे कुछ विशेषण लिखे होते हैं तथा निर्धारक को इनमें से किसी एक पर निशान लगाना होता है। इस मापदण्ड की रचना सर्वप्रथम बॉयस ने की।

उदाहरण 1. सामाजिक वार्त्ता से आप क्या समझते हैं?

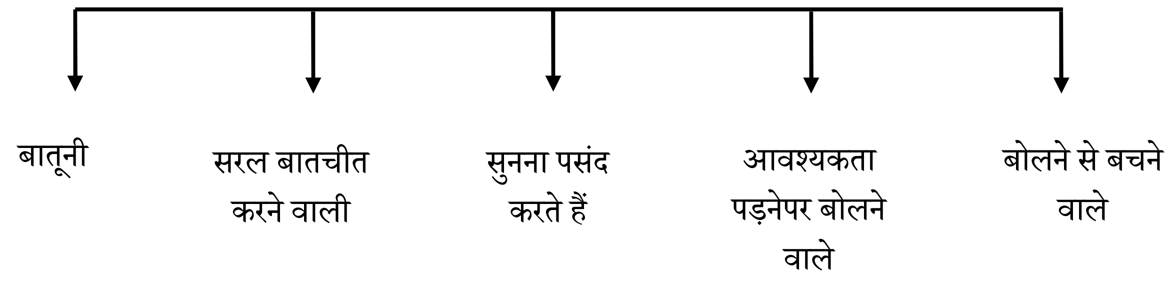

उदाहरण 2. वह कैसे सोचता है?

उपयोग

- इनकी संरचना एवं प्रशासन दोनों ही अत्यन्त सरल हैं।
- इनको शीघ्रता से भरा जा सकता है।
- इसमें निर्णायक को अत्यन्त सूक्ष्म विभेद करने का अवसर मिलता है।
- तुलनात्मक निर्णय देने की सुविधा रहती है।

परिसीमाएँ

- यद्यपि इस मापनी में फलांकन विधि में परिवर्तन की सम्भावना रहती है, फिर भी, फलांकों की गणना कठिन होती है, साथ ही, काफी परिश्रम भी करना पड़ता है।
- इस मापनी में यह निर्णय करना सरल कार्य नहीं है व्यक्ति में अमुक गुण है या नहीं अथवा यह किस संकेत के अनुरुप है।

3. **संचयी अंक मापदण्ड** - इस मापनी में व्यक्ति का मूल्यांकन अनेक विशेषताओं पर अंक प्रदान करके किया जाता है। अंकों के कुल योग या संचय के आधार पर व्यक्ति के बारे में धारणा निश्चित की जाती है।

उपयोग

- यह विधि नयी है और धीरे-धीरे लोकप्रिय होती जा रही है।
- इसकी संरचना एवं प्रशासन अत्यन्त सरल है।
- इस मापनी के प्रयोग के लिए निर्धारक को किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- इनका फलांकन भी बहुत सरल होता है, विशेषकर उस स्थिति में जहाँ पदों को $ -, 1 या 0 अंक देना हो।

परिसीमाएँ

- प्रत्येक पद की केवल दो सम्भावित प्रतिक्रियाएँ होने से फलांकन प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक नहीं बन पाती।
- चैक लिस्ट विधि में निर्धारक से केवल उन्हीं पदों या कथनों की जाँच करने को कहा जाता है जो उस पर लागू होती हों। फलतः उसके मूल्यांकन में अनावश्यक झुकाव या पक्षपात आ जाता है।

4. **मानक मापदण्ड** - इस प्रकार की मापनी में निर्धारक को कुछ मानक संघ दिये रहते हैं, जैसे - हस्तलेख, मनुष्य-मनुष्य में साम्य आदि। निर्धारक, निर्णय के योग्य सामग्री की तुलना इन मानकों से करता है। आयर्स, थार्नडाइक आदि ने इस दिशा में बहुत कार्य किया है। व्यक्ति से व्यक्ति मिलान मापनी का विकास फौजी लोगों के लिए किया गया था। इसको तैयार करने के लिए पाँच विशेषताओं का चयन कर लिया जाता है, जैसे-शारीरिक गुण, बुद्धि, नेतृत्व, व्यक्तिगत गुण एवं सेना मेंइसका सामान्य महत्व आदि।

उदाहरण

- चौधरी - हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में सर्वश्रेष्ठ।
- अरोड़ा - हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में श्रेष्ठ।
- देशपाण्डे - हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में सामान्य।
- चटर्जी - हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में कायर।
- दाताराम - हिम्मत की दृष्टि में बटालियन में अत्यन्त कायर।

उपयोग

- मौलिक निर्धारण अंकों के स्थान पर व्यक्ति के गुणों के आधार पर किया जाता है।
- इसमें तुलना करने के लिए एक स्थायी कसौटी उपलब्ध होती है।
- स्थायी कसौटी मिलने से निर्धारक को अपने मानक नित्यप्रति बदलने नहीं पड़ते।

परिसीमाएँ

- मौलिक रुप में इस मापनी को तैयार करना कठिन कार्य है।
- व्यवहार में दो निर्धारकों के मत में शायद ही कभी समानता बन पाती हो।
- मापनी में एक व्यक्ति और किसी दूसरे व्यक्ति में दूरी प्रायः समान नहीं होती है।
- किसी व्यक्ति के बारे में निर्णय करते समय अध्यागणन तथा अवागणन सम्भव है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व मापन की प्रविधियाँ कितने प्रकार की होती हैं, और वे कौन-कौन सी हैं?
2. व्यक्तित्व का मापन नहीं ....होता है।

3. प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त उस साधन का बोध होता है जिसमें एक ....का उपयोग किया जाता है। और इसे जिससे उत्तर प्राप्त किये जाते हैं वही भरता है।
4. क्रम निर्धारण मापनी व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ट विधि है (सत्य/असत्य)

19.6 आत्मनिष्ठ प्रविधियाँ

इन प्रविधियों के माध्यम से हम व्यक्ति सम्बन्धी सूचना उसी व्यक्ति से या उसके मित्रों अथवा सम्बन्धियों से प्राप्त कर लेते हैं। इन प्रविधियों का आधार उसके लक्षण, अनुभव, उद्देश्य, आवश्यकता, रुचियाँ और अभिवृत्तियाँ आदि होती हैं। वह इनके माध्यम से सभी सूचनाएँ देता है। इस विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रविधियाँ सम्मिलित हैं।

साक्षात्कार

साक्षात्कार एक जटिल प्रक्रिया है। साधारणतया इस प्रविधि का प्रयोग सेवा नियोजनों से पूर्ण होता है। इसके द्वारा मोटे तौर पर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है। साक्षात्कार एक प्रकार से प्रश्नावली का ही रुप है। अन्तर केवल इतना है कि प्रश्नावली लिखित होती है और छात्रों की लिखित प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती हैं तथा इनका प्रशासन करने में व्यक्ति का सामने होना अनिवार्य नहीं है, किन्तु साक्षात्कार में सारा कार्य मौखिक होता है और साक्षात्कार लेने वाला तथा साक्षात्कार देने वाला दोनों का ही आमने-सामने उपस्थित होना आवश्यक होता है। एक प्रकार से साक्षात्कार में निम्न मुख्य तत्व उपस्थित होते हैं-

i. व्यक्ति तथा व्यक्ति में अन्तः क्रिया।
ii. एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का साधन।
iii. दोनों में से किसी एक को साक्षात्कार के उद्देश्य का ज्ञान।

साक्षात्कार के प्रकार

साक्षात्कार मुख्य रुप से तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. निदेशित साक्षात्कार
2. अनिदेशित साक्षात्कार
3. 3समाहारक साक्षात्कार

1. **निदेशित साक्षात्कार** -निदेशित साक्षात्कार एक प्रकार का अमुक्त प्रश्न समूह ही है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार की प्रविधि, समय तथा प्रश्नों की भाषा आदि सभी का पहले से ही निश्चय कर लिया जाता है। सभी प्रत्याशियों से प्रश्न एक ही क्रम में पूछे जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि साक्षात्कार एक सुनिश्चित योजना के अनुसार होता हैं। इस योजना के अनुसार ही साक्षात्कार देने वाला अपनी भावनाओं, विचारों एवं अनुभवों पर प्रकाश डालता है।

2. **अनिदेशित साक्षात्कार -** यह एक प्रकार का मुक्तोत्तर प्रश्न समूह है। इसको गहन साक्षात्कार, निदानात्मक साक्षात्कार अथवा केन्द्रित साक्षात्कार के नाम से पुकारा जा सकता हैं। व्यक्ति के जीवन की बहुत सी समस्याएँ कुछ ऐसी हैं जिनका अध्ययन केवल अनिदेशत साक्षात्कार द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार से साक्षात्कार का प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, प्रेरणा, अभिवृत्ति आदि के अध्ययन के लिए किया जाता है।
3. **समाहारक साक्षात्कार**- समाहारक साक्षात्कार, निदेशित एवं अनिदेशित साक्षात्कार का मिश्रित स्वरुप है। इस प्रविधि में उपरोक्त दोनों प्रविधियों की अच्छी बातों का समावेश किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्याशी भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्तर्दृष्टियाँ विकसित करता है। साक्षात्कार के अन्त में साक्षात्कार कर्ता प्रत्याशी से संक्षेप में अपना निष्कर्ष एवं सारांश कथन देने को कहता है। यदि प्रत्याशी ऐसा करने में असफल रहता है तो साक्षात्कार कर्ता स्वयं सारांश प्रस्तुत कर देता है।

साक्षात्कार के लाभ

साक्षात्कार प्रविधि के निम्नलिखित लाभ हैं-

- साक्षात्कार प्रविधि को प्रयोग में लाना अत्यन्त सुविधाजनक एवं सरल है।
- साक्षात्कार का प्रारुप विभिन्न समस्याओं एवं उद्देश्यों के अनुरुप तैयार किया जा सकता है।
- समाज के किसी भी वर्ग पर साक्षात्कार का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।
- साक्षात्कार लेने में कोई विशेष समस्या नहीं आती। चूँकि इसमें प्रत्याशी को लिखित में कुछ नहीं देना होता अतः वह सहर्ष सहयोग देता है।

साक्षात्कार की सीमाएँ

साक्षात्कार प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं, जो निम्न हैं-

- यह एक दोहरी आत्मनिष्ठ प्रविधि है। प्रत्याशी साक्षात्कार कर्ता को प्रसन्न करने वाले उत्तर देता है।
- साक्षात्कार व्यक्तिगत भावनाओं से पूर्णरुपेण प्रभावित रहता है।
- साक्षात्कार को अधिक विश्वसनीय एवं वैध नहीं माना जा सकता।

- साक्षात्कार अधिक लचीला होता है, फलतः साक्षात्कार कर्ता वार्तालाप को मनपसन्द मोड़ दे देता है।
- कुछ सीमाओं में बँधे होने के कारण प्रत्याशी प्रायः स्पष्टवादिता से परे हट जाता है। सामाजिक मान्यताएँ उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करती हैं।

अनुसूची

अनुसूची अनुसंधान का एक अति प्रचलित उपकरण है। अनुसूची एक अनुसन्धान समस्या से सम्बन्धित तर्क संगत प्रश्नों की एक ऐसी सूची है, जिसके आधार पर अनुसन्धानकर्ता उत्तरदाता से प्रायः पूर्व निर्धारित सम्पर्क के अनुसार सम्बन्धित प्रश्नों के प्रत्यक्ष रुप से उत्तर प्राप्त करता है तथा सूची को स्वयं अपने आप भरता है।

गुडे और हैट के शब्दों में ''अनुसूची प्रायः प्रश्नों की ऐसी प्रयुक्त तालिका होती है, जिसके प्रश्नों के उत्तर साक्षात्कारकर्ता आमने-सामने की स्थिति में दूसरे व्यक्ति से पूछता है, तथा उन्हें तालिका में स्वयं भरता है।

अनुसूची के प्रकार

अनुसूची के अनुप्रयुक्ति आंकडों के संकलन की अन्य विभिन्न प्रविधियों के साथ सरलतापूर्वक की जा सकती है। इस आधार पर अनुसूची के प्रायः पाँच प्रकार हैं।

1. **प्रेक्षण अनुसूची** - इस प्रकार की अनुसूची का उपयोग आंकड़ो के संकलन के प्रेक्षण पद्धति के साथ किया जाता है। इसमें प्रेक्षण के क्रम को एक निश्चित, सीमाबद्ध तथा क्रमबद्ध स्वरुप प्राप्त होता है। इससे व्यवस्थित आंकड़ों के संकलन में महत्वपूर्ण सहायता और सुविधा सुलभ होती है।
2. **साक्षात्कार अनुसूची** - साक्षात्कार की प्रक्रिया में अनुसूची का उपयोग साक्षात्कार का वस्तुनिष्ठ, नियंत्रित व संरक्षित रुप प्रदान करता है। आंकडों के संकलन में ऐसे अनुसंधान उपकरण से अधिक विस्तृत तथा उपयोगी आंकडे उपलब्ध होते हैं तथा सम्बन्धित अनुसन्धान समस्या के गहन अध्ययन का भी समुचित अवसर प्रदान होता है।
3. **निर्धारण सूची** - इस प्रकार के अनुसंधान उपकरण का उपयोग किसी एक विशेष सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षिक समस्या के प्रति सम्बन्धित व्यक्तियों की अभिवृतियों, विचारधाराओं के मूल्यों आदि का मूल्यांकन व मापन करना होता है।
4. **प्रलेख अनुसूची**- इसके अन्तर्गत व्यापक अभिलेखों जैसे विभिन्न व्यक्ति- इतिहासों, जीवन कथाओं, पुस्तकों, पत्रों व सरकारी तथा गैर सरकारी प्रलेखों का क्रमबद्ध अध्ययन इस आशय से किया जाता है, ताकि ऐसे अध्ययन ने इन विशाल व व्यापक आंकड़ों में

व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रवृतियों के विकास के प्रति अन्तनिर्हित मूलकारक उभरकर ऊपर आ सके और वस्तुपरक रुप में स्पष्ट हो सके।

5. **संस्था सर्वेक्षण अनुसूची**- इसमें संस्था से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध तथा विशिष्ट रुप से अध्ययन किया जाता है। जैसे - एक शिक्षा संस्था की सर्वेक्षण अनुसूची में ऐसे प्रश्न सम्मिलित रहते हैं जैसे सम्बन्धित संस्था की भौगोलिक स्थिति कैसी है, और उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या कितनी है और इसका स्तर क्या है, तथा किन संकायों की शिक्षा इनमें दी जाती है, और पुस्तकालय, क्रीडा और मनोरंजन की सुविधायें हैं?

अनुसूची की सीमायें

- अनुसूची का उपयोग अधिकतर सीमित क्षेत्र के अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त रहता है।
- अनुसूची द्वारा अध्ययन का प्रक्रम और विस्तृत क्षेत्र के अध्ययन का प्रक्रम अति व्यापक तथा जटिल होता है।
- व्यक्तिगत पक्षपात की आर्थिक सम्भावना होती है।

गुण

- अनुसूची साक्षात्कार तथा प्रेक्षण द्वारा संकलित आंकड़ों की अपेक्षा अधिक वस्तुपरक होती है।
- वस्तुपरक विश्लेषण तथा विवेचन की सुविधा।
- यथार्थ व गहन जानकारी।

अभ्यासप्रश्न

5. उत्तम अनुसूची की विशेषताएं संक्षेप में लिखे।
6. अनिदेशित साक्षात्कार को निदानात्मक साक्षात्कार के रूप में जाना जाता है। (सत्य/असत्य)

19.7 प्रक्षेपण विधियाँ

प्रक्षेपण विधि में परीक्षण विषयी के प्रत्यक्ष - व्यवहार , विशिष्ट व्यवहार या अनुभवों के बारे में नहीं जानना चाहता हैं। वह विषयी के कलात्मक ढंग से व्यवहार का अनुरोध करता है। उदाहरण के तौर पर- वह उसे किसी चित्र को दिखाकर उस पर कहानी लिखने को कहता है। इसमें विषयी अपने दबी हुई इच्छाओं, प्रेरणाओं , संवेगों आदि का प्रकटीकरण आसानी से कर देता है। अतः 'थार्पे तथा

स्मूलर‘ ने लिखा है- “प्रक्षेपण विधि उद्दीपनों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व के स्वरूप का वर्णन करने का साधन है।“

इन विधियों के माध्यम से विषयी अपने प्रतिचारों को आन्तरिक लक्षणों, भाव दशाओं, अभिवृत्तियों, हवाई कल्पनाओं में पिरोकर कहानी के रूप में प्रकट करता है। इनके आधार पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन आसानी से कर लिया जाता है।

रौर्शाक परीक्षण

इस परीक्षण का निर्माण मनोचिकित्सक ‘हरमन रौर्शाक’ ने किया था। आप स्विटजरलैण्ड के रहने वाले थे। इस परीक्षण को ‘स्याही धब्बा परीक्षण’ के नाम से पुकारते हैं। इसमें दस स्याही के धब्बों का प्रयोग किया जाता है। यह सभी धब्बे कार्डो पर बने होते हैं। पाँच धब्बे काले रंग तथा धूसर रंगकेदो धब्बे- काले तथा लाल रंग के तथा तीन धब्बे- पूर्ण रूपेण रंगदार होते हैं। ये सभी धब्बे ‘रचना रहित’ होते हैं। ‘रचना रहित’ से तात्पर्य यह है कि उनसे स्पष्ट तथा समाज द्वारा निर्धारित सार्थक वस्तुओं का निरूपण नहीं होता है। वे इतने स्पष्ट होते हैं कि उनका वर्णन अनेकों प्रकार से किया जाता है।

परीक्षण विधि

इस परीक्षण को शान्त पर्यावरण में करना चाहिये। परीक्षार्थी के सामने एक-एक चित्र को प्रस्तुत किया जाता है। उससे यह पूछा जाता है, ‘‘यह क्या हो रहा है?’’ अथवा ‘‘यह आपको किस-किस की स्मृति दिलाता है।,’’ जब विषयी सम्पूर्ण कार्डों के प्रति अपने विचार प्रस्तुत कर देता है तो उससे पुनः देखकर अपने विचारों को विस्तार के साथ वर्णन करने को कहा जाता है। परीक्षण का कोई समय निश्चित नहीं होता। परीक्षार्थी की सभी अनुक्रियायों को ज्यों का त्यों एकत्रित कर लिया जाता है।

परीक्षण का मूल्यांकन

परीक्षण का मूल्यांकन निम्नलिखित तीन आधारों पर किया जाता है-

1. **स्थान निर्धारण**- स्थान निर्धारण से तात्पर्य धब्बे में देखी हुई वस्तु के स्थान के निर्धारण से होता है। इसमें अनुक्रिया निर्धारण निम्नलिखित आधार पर करते है। सम्पूर्ण धब्बे पर अनुक्रिया आधारित =W,विस्तृत सामान्य सूचनाओं पर आधारित त्र क्य सामान्य सूचनाओं के प्रति आधारित=D
2. **निर्धारक**- इसमें उद्दीपक विशेषता के प्रकारो पर बल दिया जाता है। इसमें धब्बे का रूप, छाया, गति आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें स्पष्ट किया जाता है कि अनुक्रिया का आधार, रूप, छाया, गति आदि में से किया है?

3. **विषय वस्तु**- इसमें अभिप्राय यह है कि अनुक्रिया मनुष्य, पौधे, पशु आदि में से किस पर निर्भर है? मानवीय को =Hया मानव का कोई भाग=Hd या पशु इत्यादि।

निष्कर्ष

मौर्गन के अनुसार उपर्युक्त प्रकार से अनुक्रिया करने पर परीक्षक व्यक्तित्व संबंधी कुछ लक्षणो का पता निम्नलिखित संकेतो के द्वारा करता है-

1. पूर्ण अनुक्रियायें- सूक्ष्म तथा सैद्धांतिक लक्षणों की सूचना देती है।
2. छोटी अनुक्रियायें- अंतर्मुखी झुकाव को स्पष्ट करती है।
3. रंग अनुक्रियायें- स्वतंत्र संवेगात्मक प्रवृति को स्पष्ट करती है।

विषय सम्प्रत्यक्ष परीक्षण

इस परीक्षण को संक्षेप में T.A.T. के नाम से जाना जाता है। इसका निर्माण 1935 में ''मरे तथा मॉर्गन' ने किया था। इस परीक्षण का प्रयोग उतना ही प्रसिद्ध है, जितना कि रौर्शाक परीक्षण। इसमें विभिन्न चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इसमें कुल 30 चित्र कार्डों का प्रयोग किया जाता है। ये चित्र एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इनमें सिर्फ एक कार्ड ऐसा होता है। जिस पर कोई भी चित्र बना होता है। इन कार्डो का प्रयोग परीक्षार्थी की आयु और लिंग के आधार पर किया जाता है। पूरे परीक्षण में सिर्फ 20 चित्रों का प्रयोग किया जाता है। पूरा परीक्षण दो भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक कार्ड के पीछे संकेत लिखे होते हैं ताकि उनका प्रयोग सही रुप में किया जा सके। जैसे

परीक्षण की विधि

परीक्षण देते समय परीक्षार्थी से कह दिया जाता है कि यह चित्र काल्पनिक है। उसको एक-एक चित्र दिखाया जाता है। प्रत्येक चित्र पर एक कहानी लिखने को कहा जाता है। इस कहानी का आधार-घटना, पात्र, विचार, भाव-भंगिमाएँ और परिणाम आदि को रखकर रचना करनी होती है। कभी-कभी वह स्वयं बोलता जाता है और परीक्षक लिखता रहता है और कभी परीक्षार्थी स्वयं लिखता है। समय का कोई भी बन्धन नहीं होता है।

परीक्षण का मूल्यांकन

जब परीक्षार्थी अपने सभी चित्रों पर कहानी लिख देता है तो उसका विश्लेषण किया जाता है। इसमें अभिप्रेरणात्मक संरचना की जानकारी आवश्यक होती है। उस कहानी में प्रयुक्त समस्त विषयों का विश्लेषण किया जाता है। ये विषय परीक्षार्थी की आन्तरिक कल्पनाओं के प्रक्षेपण के रुप में प्रकट होते हैं। इनमें परीक्षार्थी को मृत्यु, माता का प्यार, स्नेह की आवश्यकता आदि विषय प्रतीत होते रहते हैं। अतः परीक्षक इस परीक्षण के द्वारा आन्तरिक भावों के प्रक्षेपण पर बल देता है। ताकि वह असामान्य प्रभावों का पता लगा सके।

निष्कर्ष

विषय सम्प्रत्यक्ष परीक्षण के द्वारा हम विषयी की अचेतन स्थिति का सही मूल्यांकन करने में समर्थ होते हैं। इस स्थिति को समझने के पश्चात् परीक्षक विषयी के व्यक्तित्व को सामान्य बनाने में समर्थ होता है। इस परीक्षण में दोष भी हैं, लेकिन इसकी उपयोगिता इतनी सफल हो रही है कि हम दोषों को व्यावहारिक रुप प्रदान करने में असफल रहते हैं। अतः व्यक्ति की चालनाएँ, आवश्यकताएँ, संघर्ष, ग्रन्थियों तथा कल्पना आदि के प्रभाव को विषय के सम्प्रत्यक्ष परीक्षण के माध्यम से ही जाना जा सकता है। अन्य किसी से नहीं।

अभ्यास प्रश्न

7. व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपण विधि है।

1. रौर्शाक परीक्षण
2. परिस्थिति परीक्षण
3. व्यक्तित्व परिसूची
4. व्यक्ति इतिहास

8. विषय सम्प्रत्यक्ष परीक्षण का निर्माण किसने किया?

9. 'रौर्शाक इंक ब्लॉट' टैस्ट का प्रयोग.................को जानने के लिए किया जाता है।

19.8सारांश

इस इकाई में व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन की प्रविधियों के विकास के बारे में चर्चा हुई। व्यक्तित्व के मापन के लिए व्यक्तित्व प्रविधियों का अपना ही महत्व है। व्यक्तित्व प्रविधियों को सामान्यतः तीन रूपों में पढ़ा जाता है। ये तीन संचरण हैं, वस्तुनिष्ठ प्रविधियाँ, आत्मनिष्ठ प्रविधियाँ और प्रक्षेपी प्रविधियाँ।

लेकिन यह वर्गीकरण काफी दोषपूर्ण है किसे आत्मानिष्ठ कहा जाए और किसे वस्तुनिष्ठ कहा जाए, यह बहुत ही जटिल और उलझपूर्ण समस्या है। इसीलिए हमने इस इकाई में व्यक्ति जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में किस प्रकार का व्यवहार करता है। उसी के आधार को ध्यान में रखकर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में हमने वस्तुनिष्ठ प्रविधियाँ (व्यक्तित्व परिसूचियां, प्रश्नावली प्रविधि, क्रम निर्धारण मापनं), आत्मनिष्ठ प्रविधियाँ (साक्षात्कार प्रविधि एवं अनुसूची प्रविधि) और प्रक्षेपी प्रविधियों (रौर्शाक परीक्षण एवं विषय समप्रत्यक्ष परीक्षण) के द्वारा व्यक्तित्व मापने की विभिन्न प्रविधियों को अवगत करवाया है और किस प्रकार ये प्रविधियाँ व्यक्तित्व मापन के लिए गुणकारी है। इस कारण केवल ये प्रविधियाँ ही ऐसी है, जिनके द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन सम्भव हो सकता है।

19.9 शब्दावली

1. **संकलन-** (संग्रह, संचय) व्यक्तित्व उन सभी तत्वों का संकलन है जिनके द्वारा व्यक्ति को समाज में कोई स्थान प्राप्त होता है।
2. **अनुक्रिया**-(प्रतिक्रिया) पुनर्बलन अनुक्रिया का परिणाम है जिससे भविष्य में उस अनुक्रिया के होने कि सम्भावना बढ़ती है।
3. **मूलप्रवृतियां**-(जन्मजात क्रियायें) मूल प्रवृतियों के कारण भी अवधान केंद्रित होता है जैसे भूख के समय ध्यान भोजन की ओर केंद्रित हो जाता है।
4. **उद्दीपक**-(उत्तेजक) छात्रों को पढ़ाते समय उचित प्रेरणा एवं उद्दीपक जैसे- प्रोत्साहन, पुरस्कार, प्रशंसा, दण्ड आदि देने चाहियें।

19.10अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्तित्व मापन प्रविधियाँ तीन प्रकार की होती हैं
    i. आत्मनिष्ठ
    ii. वस्तुनिष्ठ
    iii. प्रक्षेपी
2. मूल्यांकन
3. फार्म (प्रपत्र)
4. सत्य
5. उत्तम अनुसूची की विशेषताएं हैं –अनुसूची का स्वरुप संरचित होना चाहिए,प्रश्नों का स्वरुप क्रमबद्ध, वस्तुपरक तथा तर्क संगत होना चाहिए,प्रश्नों की भाषा सरल, स्पष्ट तथा बोधमय होनी चाहिए,प्रश्नों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए,अनुसूची की प्रशासन प्रक्रिया मानकीकृत होनी चाहिए।
6. सत्य
7. रौर्शाक परीक्षण
8. मर्रे और मार्गन
9. व्यक्तित्व

19.11संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 एस0के0 कपिल (1996) अनुसंधान विधियां, भार्गव बुक हाउस, आगरा-2
2. डॉ0 एस0के0 मंगल (2008) शैक्षिक मनोविज्ञान एवं मापन, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

3. प्रो0 रमन विहारी लाल एवं डॉ0 सुरेश चन्द्र जोशी (2007-2008) शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. डॉ0 ए0बी0 भटनागर, डॉ0 (श्रीमती) मीनाक्षी भटनागर एवं अनुराग भटनागर (2008) अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
5. श्रीमति आर0के0 शर्मा, श्री कृष्ण दुबे एवं श्रीमती डॉ0 ए0 बरौलिया (2007) शिक्षा के मनोवैज्ञानिकीय आधार, रामा प्रकाशन मन्दिर, आगरा
6. डॉ0 ए0बी0 भटनागर, डॉ0 (श्रीमती) मीनाक्षी भटनागर एवं अनुराग भटनागर (2008) अधिगम कर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ
7. डॉ0 एस0के0 मंगल (2008) शैक्षिक मनोविज्ञान एवं मापन, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
8. श्रीमति आर0के0 शर्मा, श्री कृष्ण दुबे एवं श्रीमति डॉ0 ए0 बरौलिया (2007) शिक्षा के मनोवैज्ञानिकीय आधार, रामा प्रकाशन मन्दिर, आगरा

19.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व के विभिन्न अर्थ एवं परिभाषाओं के संदर्भ में व्यक्तित्व का विवेचन कीजिए।
2. व्यक्तित्व मापन की विधियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है? प्रत्येक वर्ग की मुख्य विधियों का सामान्य परिचय दीजिए।

इकाई-20वर्णनात्मक सांख्यिकी केन्द्रीयप्रवृत्तिकेमापक
Descriptive Statistics: Measures of Central Tendency

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 सांख्यिकी का अर्थ
20.4 वर्णनात्मक सांख्यिकी
20.5 केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा
20.6 केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य व कार्य
20.7 आदर्श माध्य के लक्षण
20.8 सांख्यिकीय माध्य के विविध प्रकार
20.9 समान्तर माध्य
20.10 समान्तर माध्य के प्रकार
20.11 सरल समान्तर माध्य ज्ञात करने की विधि
20.12 मध्यका
20.13 मध्यका की गणना
20.14 मध्यका के सिद्धान्त पर आधारित अन्य माप
20.15 बहुलक
20.16 बहुलक की गणना
20.17 समान्तर माध्य, मध्यका तथा बहुलक के बीच संबंध
20.18 सारांश
20.19 शब्दावली
20.20 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
20.21 संदर्भ ग्रन्थ
20.22 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

हमारे जीवन में संख्याओं की भूमिका तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। ज्ञान, विज्ञान, समाज और राजनीति का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो संख्यात्मक सूचना के प्रवेश से अछूता रह गया हो। ऑकड़ों का संकलन, सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण, सम्भावनाओं का पता लगाना तथा इनके आधार पर निष्कर्ष निकालना आधुनिक समाज में एक आम बात हो गई है। शैक्षिक विश्लेषण, शैक्षिक संम्प्राप्ति (उपलब्धि परीक्षण), बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व मूल्यांकन आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन पर 'सांख्यिकीय' विधियों के प्रयोग के अभाव में विचार करना भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार शोध एवं विकास की शायद ही कोई ऐसी शाखा हो, जिसे सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग के बिना संचालित किया जा सके। प्रस्तुत इकाई में आप सांख्यिकीका अर्थ तथा केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों (Measures of Central Tendency) का अध्ययन करेंगे|

20.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- सांख्यिकी का अर्थ बता पायेंगे।
- केन्द्रीय प्रवृत्तिके विभिन्न मापकों यथा मध्यमान, मध्यका व बहुलक का परिकलन कर सकेंगे|
- केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों विभिन्न मापकों यथा मध्यमान, मध्यका व बहुलककी तुलना कर सकेंगे|

20.3 सांख्यिकीकाअर्थ(Meaning of Statistics)

अंग्रेजी भाषा का शब्द 'स्टैटिस्टिक्स' (Statistics) जर्मन भाषा के शब्द 'स्टैटिस्टिक' (Statistick), लेटिन भाषा के शब्द 'Status' या इटेलियन शब्द 'स्टैटिस्टा' (Statista) से बना है। वैसे 'स्टैटिस्टकस' (Statistics) शब्द का प्रयोग सन् 1749 में जर्मनी के प्रसिद्ध गणितज्ञ 'गॉट फ्रायड आकेनवाल' द्वारा किया गया था जिन्हें सांख्यिकी का जन्मदाता भी कहा जाता है।

डा0 ए0एल0 बाउले (Dr. A.L. Bowley) के अनुसार :- समंक किसी अनुसंधान से संबंधित विभाग में तथ्यों का संख्यात्मक विवरण हैं जिन्हें एक दूसरे से संबंधित रूप से प्रस्तुत किया जाता है (Statistics are numerical statement of facts in any department of enquiry placed in relation to each other)।

यूल व कैण्डाल के अनुसार:- "समंकों से अभिप्राय उन संख्यात्मक तथ्यों से जो पर्याप्त सीमा तक अनेक कारणों से प्रभावित होत हैं।"

बॉडिंगटन के अनुसार:- "सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है। (Statistics is the Science of estimates and probabilities)

सांख्यिकी के इन परिभाषाओं से निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं:-

(i) "सांख्यिकी गणना का विज्ञान है। (Statistics is the science of counting)"

(ii) "सांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है। (Statistics may rightly be called the science of Averages)"

(iii) "सांख्यिकी समाजिक व्यवस्था को सम्पूर्ण मानकर उनके सभी प्रकटीकरणों में माप करने का एक विज्ञान है। (Statistics is the science of measurement of social organism regarded as a whole in all its manifestations) "

20.4केन्द्रीयप्रवृत्तिकाअर्थएवंपरिभाषा (Meaning and Definition of Central Tendency)

एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आस-पास केन्द्रित होने की प्रवृत्ति से है, जिसे मापा जा सके और इस प्रवृत्ति के माप को ही माध्य कहते हैं। माध्य को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप इसलिए कहा जाता है क्योंकि व्यक्तिगत चर मूल्यों का जमाव अधिकतर उसी के आस-पास होता है। इस प्रकार माध्य सम्पूर्ण समंक श्रेणी का एक प्रतिनिधि मूल्य होता है और इसलिए इसका स्थान सामान्यत: श्रेणी के मध्य में ही होता है। दूसरे शब्दों में,सांख्यिकीय माध्य को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह समग्र के उस मूल्य को दर्शाता है, जिसके आस-पास समग्र की शेष इकाईयों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पायी जाती है|

यूल व केण्डाल (Yule and Kendal) के शब्दों में:- "किसी आवृत्ति वितरण की अवस्थिति या स्थिति के माप माध्य कहलाते हैं।"

(Measures of location or position of a frequency distribution are called averages)

क्रॉक्सटन एवं काउडेन (Croxton and Cowden) के अनुसार:- "माध्य समंकों के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग श्रेणी के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिये

किया जाता है। समंक श्रेणी के विस्तार के मध्य में स्थित होने के कारण ही माध्य को केन्द्रीय मूल्य का माप भी कहा जाता है।"

(An average is single value within the range at the data which is used to represent all the values in the series. Since an average is somewhere within the range of the data, it is some times called a measure of central value)

डा0 बाउले के अनुसार:- "सांख्यिकी को वास्तव में माध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है।"

(Statistics may rightly be called the science of average)

20.5केन्द्रीयप्रवृत्तिकेमापकेउद्देश्यवकार्य(Objectives and functions of Measures ofCentral Tendency)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य एवं कार्य निम्न प्रकार हैं-

1. **सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना:-** माध्य द्वारा हम संग्रहीत सामग्री को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं, जिसे एक समान व्यक्ति शीघ्रता व सरलता से समझ कर स्मरण रख सकता है।
2. **तुलनात्मक अध्ययन:-** माध्यों का प्रयोग दो या दो से अधिक समूहों के संबंध में निश्चित सूचना देने के लिए किया जाता है। इस सूचना के आधार पर हम उन समूहों का पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन सरलता से कर सकते हैं। उदाहरणार्थ: हम दो कक्षाओं के छात्रों की अंकों की तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनकी उपलब्धि की तुलना का सकते हैं|
3. **समूह का प्रतिनिधित्व:-** माध्य द्वारा सम्पूर्ण समूह का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। एक संख्या (माध्य) द्वारा पूर्ण समूह की संरचना के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सकती है। प्राय: व्यक्तिगत इकाइयॉ अस्थिर व परिवर्तनशील होती है जबकि औसत इकाईयॉ अपेक्षाकृत स्थिर होती है।
4. **अंक गणितीय क्रियाऍ:-** दो विभिन्न श्रेणियों के संबंध को अंकगणित के रूप में प्रकट करने हेतु माध्यों की सहायता अनिवार्य हो जाती है और इन्हीं के आधार पर अन्य समस्त क्रियाऍ सम्पन्न की जाती है।
5. **भावी योजनाओं का आधार:-** हमें माध्यों के रूप में समूह का एक ऐसा मूल्य प्राप्त होता है जो हमारी भावी योजनाओं के लिए आधार का कार्य करता है।
6. **पारस्परिक संबंध:-** कभी-कभी दो समंक समूहों के पारस्परिक संबंध की आवश्यकता होती है, जैसे- दो समूहों में परिवर्तन एक ही दिशा में है या विपरीत दिशा में। यह जानने के लिए माध्य ही सबसे सरल मार्ग है।

20.6आदर्शमाध्यकेलक्षण (Essential Characteristics of an Ideal Average)

किसी भी आदर्श माध्य में निम्नलिखित गुण होनी चाहिए:-

1. **प्रतिनिधि:-** माध्य द्वारा समग्र का प्रतिनिधित्व किया जाना चाहिए, जिससे समग्र की अधिकाधिक विशेषताएँ माध्य में पायी जा सके। माध्य ऐसा हो कि समग्र के प्रत्येक मद से उसकी अधिक निकटता प्राप्त हो सके।
2. **स्पष्ट एवं स्थिर:-** माध्य सदैव स्पष्ट एवं स्थिर होना चाहिए ताकि अनुसंधान कार्य ठीक ढंग से सम्पन्न किया जा सके। स्थिरता से आशय है कि समग्र की इकाईयों में कुछ और इकाईयाँ जोड़ देने या घटा देने से माध्य कम से कम प्रभावित हो।
3. **निश्चित निर्धारण:-** आदर्श माध्य वही होता है जो निश्चित रूप में निर्धारित किया जा सकता हो। अनिश्चित संख्या निष्कर्ष निकालने में भ्रम उत्पन्न कर देती है। यदि माध्य एक संख्या न होकर एक वर्ग आये तो इसे अच्छा माध्य नहीं कहेंगें।
4. **सरलता व शीघ्रता:-** आदर्श माध्य में सरलता व शीघ्रता का गुण भी होना चाहिए जिससे किसी भी व्यक्ति द्वारा इसकी गणना सरलता व शीघ्रता से की जा सके तथा वह समझने में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव न करे।
5. **परिवर्तन का न्यूनतम प्रभाव:-** आदर्श माध्य की यह विशेषता होनी चाहिए कि न्यादर्श में होने वाले परिवर्तनों का माध्य पर कम से कम प्रभाव पड़े। यदि न्यादर्श में परिवर्तन से माध्य भी परिवर्तित हो जाता है तो उसे माध्य नहीं कहा जा सकता।
6. **निरपेक्ष संख्या:-** माध्य सदैव निरपेक्ष संख्या के रूप में ही व्यक्त किया जाना चाहिए। उसे प्रतिशत में या अन्य किसी सापेक्ष रीति से व्यक्त किया हुआ नहीं होना चाहिए।
7. **बीजगणित एवं अंकगणित विधियों का प्रभाव:-** एक आदर्श माध्य में यह गुण भी आवश्यक है कि उसे सदैव अंकगणित एवं बीजगणित विवेचन में प्रयोग होने की व्यवस्था होनी चाहिए।
8. **माध्य का आकार:-** आदर्श माध्य वह होता है जो श्रृंखला या श्रेणी के समस्त मूल्यों के आधार पर ज्ञात किया गया हो।
9. **श्रेणी के मूल्यों पर आधारित:-** माध्य संख्या यदि श्रेणी में वास्तव में स्थित हो तो उचित है अन्यथा माध्य अनुमानित ही सिद्ध होगा।

20.7सांख्यिकीयमाध्यकेविविधप्रकार(Different kinds of Statistical Averages):

सांख्यिकीय में मुख्यत: निम्न माध्यों का प्रयोग होता है:-

i. स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of position)
   a. बहुलक (Mode)
   b. मध्यका (Median)

ii. गणित सम्बन्धी माध्य (Mathematical Average)
   a. समान्तर माध्य (Arithmetic Average or mean)
   b. गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)
   c. हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के रूप में आप यहाँ समान्तर माध्य (Arithmetic Mean), मध्यका (Median) व बहुलक (Mode) का ही अध्ययन करेंगे।

20.8समान्तरमाध्य (Arithmetic Mean)

समान्तर माध्य गणितीय माध्यों में सबसे उत्तम माना जाता है और यह केन्द्रीय प्रवृत्ति का सम्भवत: सबसे अधिक लोकप्रिय माप है। क्रॉक्सटन तथा काउडेन के अनुसार- " किसी समंक श्रेणी का समान्तर माध्य उस श्रेणी के मूल्यों को जोड़कर उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।" होरेस सेक्रिस्ट के मतानुसार- "समान्तर माध्य वह मूल्य है जो कि एक श्रेणी के योग में उनकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होती है।"

20.9समान्तरमाध्य (Arithmetic Mean):

सरल समान्तर माध्य:- जब समंक श्रेणी के समस्त मदों को समान महत्व दिया जाता है तो मदों के मूल्यों के योग में मदों की संख्या का भाग दिया जाता है। इसे ही सरल समान्तर माध्य कहते हैं।

20.10सरलसमान्तरमाध्यज्ञातकरनेकीविधि (Method of Computing Arithmetic Mean)

समान्तर माध्य की गणना करने के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है:-

i. प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)
ii. लघु रीति (Short-cut Method)

अवर्गीकृत तथ्यों या व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना:-

1. **प्रत्यक्ष रीति (Direct Method):-** प्रत्यक्ष रीति में (i) समस्त मदों के मूल्यों का योग किया जाता है। (ii) प्राप्त मूल्यों के योग में मदों की संख्या का भाग देकर समान्तर माध्य

ज्ञात किया जाता है। यह विधि उस समय उपयुक्त होती है जब चर मूल्यों की संख्या कम हो तथा वे दशमलव में हों।

सूत्रानुसार – $\overline{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + ... + X_n}{N}$

$$\frac{\text{पदों का योग (TotaValue of Items)}}{\text{पदों की संख्या}}$$ अथवा $\overline{X} = \frac{\sum X}{N}$

यहाँ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य (Mean)

N = मदों की कुल संख्या (No. of Items)

$\sum$ = योग (Sum or Total)

X = मूल्य या आकार (Value or Size)

उदाहरण:- निम्नलिखित सारणी में कक्षा IX के छात्रों के गणित का अंक प्रस्तुत किया गया है| समान्तर माध्य का परिकलन प्रत्यक्ष रीति द्वारा करें।

S.N.	**Marks**
1.	57
2.	45
3.	49
4.	36
5.	48
6.	64
7.	58
8.	75
9.	68
योग (Total)	**500**

सूत्रानुसार $\overline{X} = \frac{\sum x}{N}$

$\sum X = 500$

N = 9

$\overline{X} = \frac{500}{9} = 55.55$

माध्य(Mean)= 55.55

2. लघु रीति (Short Cut Method):- इस रीति का प्रयोग उस समय किया जाता है, जबकि समंक श्रेणी में मदों की संख्या बहुत अधिक हो। इस रीति का प्रयोग करते समय निम्नलिखित क्रियायें की जाती है:-

i. **कल्पित माध्य (A):-** श्रेणी में किसी भी संख्या को कल्पित माध्य मान लेते हैं। यह संख्या चाहे उस श्रेणी में हो अथवा नहीं, परन्तु श्रेणी के मध्य की किसी संख्या को कल्पित माध्य मान लेने से गणना क्रिया सरल हो जाती है।

ii. **विचलन (*dx*) की गणना:-** उपयुक्त कल्पित माध्य से समूह के विभिन्न वास्तविक मूल्यों का विचलन धन (+) तथा ऋण (-) के चिन्हों को ध्यान में रखते हुए ज्ञात करते हैं। (*dx*=X-A)

iii. **विचलनों का योग($\sum dx$):-** व्यक्तिगत श्रेणी में सभी विचलनों को जोड़ लेते हैं। ऐसा करते समय धनात्मक और ऋणात्मक चिन्हों को ध्यान में रखा जाता है।

iv. **मदों की संख्या (N) से भाग देना:-** उपयुक्त प्रकार से प्राप्त योग में मदों की संख्या का भाग दे दिया जाता है।

v. **माध्य ($\overline{X}$)ज्ञात करना:-** विचलन के योग में मदों की संख्या का भाग देने पर जो भागफल प्राप्त हो, उसे कल्पित माध्य में जोड़कर अथवा घटाकर माध्य ज्ञात करते हैं। भागफल यदि धनात्मक हो तो उसे कल्पित माध्य में जोड़ देते हैं और यदि यह ऋणात्मक हो तो उसे कल्पित माध्य में से घटा देते हैं। इस प्रकार प्राप्त होने वाली संख्या समान्तर माध्य कहलायेगी। यह रीति इस तथ्य पर आधारित है कि वास्तविक समान्तर माध्य से विभिन्न मदों के विचलन का योग शून्य होता है।

सूत्रानुसार:- $\overline{X} = A + \frac{\sum dx}{N}$

यहाँ $\overline{X} =$ समान्तर माध्य (Arithmetic mean)

A= कल्पित माध्य (Assumed mean) $\sum dx =$ कल्पित माध्य से लिये गये मूल्यों के विचलनों का योग

(Sum of deviations from Assumed mean)

$N =$ मदों की संख्या (Total No. Items)

उदाहरण:- निम्नलिखित सारणी में कक्षा IX के 10 छात्रों को विज्ञान विषय के अधिकतम प्राप्तांक 20 में से निम्न अंक प्राप्त हुए हैं, इन छात्रों का विज्ञान विषय में समान्तर माध्य की गणना लघु रीति से करें।

अंक – 15, 13, 09, 18, 17, 08, 12, 14, 11, 10

समान्तर माध्य की गणना (Calculation):

S. N.	**Marks**	**Deviation**
1.	15	- 2
2.	13	- 4
3.	09	- 8
4.	18	+ 1
5.	17	0
6.	08	- 9
7.	12	- 5
8.	14	- 3
9.	11	- 6
10.	10	- 7
N= 10		योग =- 44+1
		$\sum dx$ = - 43

$$\overline{X} = A + \frac{\sum dx}{N}$$

$$= 17 + \frac{-43}{10}$$

$$= 17+(-4.3)$$

$$= 12.7$$

खण्डित श्रेणी (Discrete Series):- खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना दो प्रकार से की जा सकती है।

i. **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method):-** खण्डित श्रेणी में कुल पदों के मूल्यों का योग ज्ञात करने हेतु प्रत्येक पद मूल्य (x) को उसकी आवृत्ति (f) से गुणा किया जाता है, इन गुणनफलों का योग ही कुल पद मूल्यों का योग होता है ($\sum fx$), इन योग में पदों की संख्या (N) का भाग देने से समान्तर माध्य ज्ञात हो जाता है, यथा

1. प्रत्येक मूल्य से उसकी आवृत्ति को गुणा करते हैं (fx)
2. गुणनफल का योग ज्ञात करते है।($\sum xf$)
3. कुल आवृत्ति का योग ज्ञात करत हैं। ($\sum for\ N)$)
4. गुणनफल के योग में कुल आवृत्तियों के योग से भाग देकर समान्तर माध्य प्रस्तुत सूत्र द्वारा ज्ञात करते है: $\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$

यहॉ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

$\sum fx$ = मूल्यों से संबंधित आवृत्तियों के गुणनफलों का योग।

N = आवृत्तियों का योग।

ii. लघु रीति (Short-Cut Method):- गणना विधि-

1. किसी मूल्य को कल्पित माध्य (A) मान लेते हैं।
2. कल्पित माध्य से वास्तविक मूल्यों के विचलन ज्ञात करते हैं। (dx=X-A)
3. इन विचलनों (dx) को संबंधित आवृत्ति (f) से गुणा करते हैं। (fd$x$)
4. गुणनफल से योग ज्ञात करते हैं ($\sum f$ dx)
5. गुणनफल के योग में कुल आवृत्ति के योग का भाग देने पर जो संख्या प्राप्त हो उसे कल्पित माध्य में जोड़कर अथवा घटाकर समान्तर माध्य ज्ञात करते हैं।
6. इसको ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं:-

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

यहॉ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

$\sum fx$ = विचलनों व आवृत्तियों के गुणनफल का योग।

N = आवृत्तियों का योग।

उदाहरण:- निम्नलिखित समंकों से प्रत्यक्ष रीति व लघु रीति द्वारा समान्तर माध्य का परिकलन कीजिए। 20, 25, 75, 50, 10, 15, 60, 65

हल:

क्रम सं0	**प्रत्यक्ष विधि(Direct Method)**	**लघु रीति (Short Cut)**		**विचलन A= 50 से dx**
1.	20	1	20	-30
2.	25	2	25	-25
3.	75	3	75	+25
4.	50	4	50	+0
5.	10	5	10	-40
6.	15	6	15	-35
7.	60	7	60	+10
8.	65	8	65	+15
N= 8	$\sum x$ =320			$\sum$ dx = -80

प्रत्यक्ष विधि(Direct Method)

$$X=\frac{\sum X}{N}=\frac{320}{8}$$

= 40

माध्य = 40

लघु रीति (Short Cut)

$$\overline{X} = A+ \frac{\sum dx}{N}$$

$$= 50 + \frac{-80}{8}$$

= 50 + (-10) = 40

माध्य = 40

सतत श्रेणी (Continuous Series):- अखण्डित या सतत श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना के लिए सर्वप्रथम वर्गान्तरों के मध्य मूल्य ज्ञात करके उसे खण्डित श्रेणी में परिवर्तित कर लेते हैं। मध्य मूल्य ज्ञात करने के लिए वर्गान्तरों की अपर और अधर सीमाओं को जोड़कर दो से भाग दिया जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मध्यमूल्य उस वर्ग में सम्मिलित सभी मदों का प्रतिनिधि

मूल्य होता है। इसके पश्चात् प्रत्यक्ष या लघु रीति द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कर लेते हैं। इसकी विधि खण्डित श्रेणी के समान ही है।

उदाहरण:- निम्न आवृत्ति वितरण से समानृतर माध्य ज्ञात कीजिए:-

Marks (out of 50)	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
No. of Student	10	12	20	18	10

हल (Solution):-

समान्तर माध्यका प्रत्यक्ष व लघु रीति विधि से परिकलन (Calculation of Arithmetic Mean by direct & Short -Cut Method)

Marks	**M.V.= X**	**f**	**fx**	**dx A= 25**	**f dx**
0-10	5	10	50	-20	-200
10-20	15	12	180	-10	-120
20-30	25	20	500	0	0
30-40	35	18	630	+10	+180
40-50	45	10	450	+20	+200
Total		N=70	$\sum fx = 1810$		$\sum fdx =$ -320 + 380 = + 60

Direct Method

$$\overline{X} = \frac{\sum fx}{N}$$

$$= \frac{1810}{70}$$

Short- Cut Method

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 25 + \frac{60}{70}$$

= 25+ 0.86= 25.86 Marks

= 25.86 Marks

समान्तर माध्य (Mean)= 25.86 Marks

समावेशी श्रेणी Inclusive Series)

उदाहरण:- निम्नलिखित समंकों से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए-

Marks	1-10	11-20	21-30	31-40	41-50
No. of Student	5	7	10	6	2

हल (Solution):- समान्तर माध्य का परिकलन (Calculation of Arithmetic Mean)

Marks	**F**	**Mid Value=*x***	**f *x***	**d*x***	**f d*x***
1-10	5	5.5	275	-20	-100
11-20	7	15.5	108.5	-10	-70
21-30	10	25.5	255.0	0	0
31-40	6	35.5	213.0	+10	+60
41-50	2	45.5	91.0	+20	+40
Total	N= 30	$\sum fx$ =695.0			$\sum fdx$ =-70

Direct Method

$$\overline{X} = \frac{\sum fx}{N} = \frac{695}{30}$$

= 23.17 Marks

Short- Cut Method

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 25.5 + \frac{-70}{30}$$

समान्तर माध्य (Mean)=23.7 marks	= 25.5-2.33= 23.17 mean

पद विचलन रीति (Step deviation method):- इस रीति का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि विचलनों को किसी समान संख्या में विभाजित किया जा सके तथा वर्गान्तरों की संख्या अधिक हो। इस विधि में लघु रीति के आधार पर विचलन ज्ञात करते हैं और विचलनों में समापवर्तक (Common factor) 'i' से भाग दिया जाता है। प्राय: इस विधि का प्रयोग समान वर्गान्तर वाली श्रेणी में किया जाता है। इस रीति से प्रश्न हल करने के लिए निम्नलिखित विधि अपनायी जाती है:-

1. सभी वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु (x) ज्ञात करते हैं|
2. श्रेणी के लगभग बीच के सभी वर्गान्तर के मध्य बिन्दु को कल्पित माध्य मान कर प्रत्येक वर्गान्तर के मध्य बिन्दु से विचलन (dx) ज्ञात करते हैं ऐसा करते समय धनात्मक और ऋणात्मक चिन्हों का ध्यान रखना चाहिए।
3. इन विचलनों को ऐसी संख्या से विभाजित कर देते हैं जिसका सभी में भाग चला जाए। व्यवहार में कल्पित मूल्य के सामने के पद विचलन के खाने में 0 लिखकर ऊपर की ओर -1, -2, -3 आदि व नीचे की ओर +1, +2, +3 आदि लिख देते हैं। ये ही पद विचलन होते हैं (dx')
4. इसके पश्चात् पद विचलनों को उनकी आवृत्ति से गुणा करके गुणनफल का योग ज्ञात कर लेते है। ($\sum fdx'$)
5. इस प्रकार ज्ञात गुणनफल के योग में आवृत्तियों की कुल संख्या का भाग दे देते हैं।
6. पद विचलन रीति अपनाने पर निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं:-

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx'}{N} Xi$$

जहाँ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

i = वर्गान्तर

dx' = पद विचलन (Step deviation)

$\sum fdx'$ = पद विचलनों और आवृत्तियों के गुणनफल का योग।

उदाहरण:- निम्न सारणी से समान्तर माध्य पद विचलन रीति से ज्ञात कीजिए।

Marks (out of 50)	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
No. of Student	2	3	8	4	3

हल (Solution):-

Marks	**M.V.=x**	**No. of students (f)**	**dx' A= 25**	**fd$x$'**
0-10	5	2	-2	-4
10- 20	15	3	-1	-3
20-30	25	8	0	0
30-40	35	4	+1	+4
40-50	45	3	+2	+6
Total		N= 20		$\sum fdx'$

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fdx'}{N} xi$$

$$= 25 + \frac{3}{20} x10$$

$$= 25 + \frac{30}{20}$$

$= 25 + 1.5$

समान्तर माध्य = 26.5

समान्तर माध्य की बीजगणितीय विशेषताएँ (Algebraic Properties of Arithmetic Mean):- समान्तर माध्य की बीजगणितीय विशेषताएँनिम्नलिखित हैं :-

1. विभिन्न मदों के मूल्यों का समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों का योग हमेशा शून्य होता है। अर्थात् $\sum d = \sum(X - \overline{X}) = 0$

2. समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों के वर्गों का योग, अन्य किसी मूल्य से लिये गये विचलनों के वर्गों के योग से कम होता है अर्थात् $\sum X^2 \langle \sum dx^2$, अत: प्रमाप विचलन की न्यूनतम वर्ग विधि व सह संबंध में समान्तर माध्य की इस विशेषता का प्रयोग किया जाता है।
3. यदि $\overline{X}$, N व $\sum X$ में से कोई दो माप ज्ञात हों तो तीसरा माप ज्ञात किया जा सकता है, अर्थात् $X = \frac{\sum X}{N} or \sum X = (\overline{X}N) or N = \frac{\sum \overline{X}}{X}$
4. समान्तर माध्य के अर्न्तगत प्रमाप विभ्रम अन्य माध्य की अपेक्षा कम होता है।
5. यदि एक समूह के दो या अधिक भागों के समान्तर माध्य व उसकी संख्या दी गई हो तो सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।
6. यदि किसी श्रेणी की मदों की समान मूल्य से गुणा करें, भाग दें, जोड़ दें अथवा घटा दें तो समान्तर माध्य पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। जैसे किसी समंक का समान्तर माध्य 20 है यदि इस समंक के पदों के प्रत्येक मूल्य में 2 जोड़ दिया जाय तो नवीन समान्तर माध्य 20+2 अर्थात् 22 हो जायेंगे।

समान्तर माध्य के गुण (Merits of Mean):-

1. **सरल गणना:-** समान्तर माध्य की परिकलन सरल है और इसे एक सामान्य व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है।
2. **सभी मूल्यों पर आधारित:-** समान्तर माध्य में श्रेणी के समस्त मूल्यों का उपयोग किया जाता है।
3. **निश्चित संख्या:-** समान्तर माध्य एक निश्चित संख्या होती जिस पर समय, स्थान व व्यक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। श्रेणी को चाहे जिस क्रम में लिखा जाए, समान्तर माध्य में कोई अन्तर नहीं होगा।
4. **स्थिरता:-** समान्तर माध्य में प्रतिदर्श (Sample) के उच्चावचन का अन्य माध्य की अपेक्षा प्रभाव पड़ता है अर्थात् एक समग्र में से यदि दैव प्रतिदर्श के आधार पर कई प्रतिदर्श लिये जायें तो उनके समान्तर माध्य समान होंगे।
5. **बीजगणितीय प्रयोग सम्भव:-** समान्तर माध्य की परिगणना में किसी भी सांख्यिकी विश्लेषण में इसका प्रयोग किया जाता है।
6. **शुद्धता की जॉच:-** समान्तर माध्य में चार्लीयर जॉच के आधार पर शुद्धता की जॉच सम्भव है।
7. **क्रमबद्धता और समूहीकरण की आवश्यकता नहीं:-** इसमें मध्यका के तरह श्रेणी को क्रमबद्ध व व्यवस्थित करने अथवा बहुलक की भॉति विश्लेषण तालिका और समूहीकरण करने की आवश्यकता नहीं।

समान्तर माध्य के दोष (Demerits of Mean):-

1. **श्रेणी के चरम मूल्यों का प्रभाव:-** समान्तर माध्य की गणना में श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है, अत: इसकी गणना में बहुत बड़े व बहुत छोटे मूल्यों का बहुत प्रभाव पड़ता है।
2. **श्रेणी की आकृति से समान्तर माध्य ज्ञात करना संभव नहीं:-** जिस प्रकार श्रेणी की आकृति को देखकर बहुलक अथवा मध्यका का अनुमान लगाया जा सकता है, समान्तर माध्य का अनुमान लगाना संभव नहीं।
3. **श्रेणी की सभी मदों का वास्तविक मूल्य ज्ञान होना:-** समान्तर माध्य की गणना के लिए श्रेणी के सभी मूल्यों का ज्ञात होना आवश्यक है। यदि श्रेणी के एक मद का भी मूल्य ज्ञात नहीं है तो समान्तर माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता है।
4. **काल्पनिक संख्या:-** समान्तर माध्य एक ऐसा मूल्य हो सकता है जो श्रेणी की सम्पूर्ण संख्या में मौजूद नहीं हो। जैसे 4, 9 व 20 का समान्तर माध्य 11 है जो श्रेणी के बाहर का मूल्य होने के कारण उसके किसी मूल्य का प्रतिनिधत्व नहीं करता।
5. **हास्यास्पद परिणाम:-** समान्तर माध्य में कभी-कभी हास्यास्पद परिणाम भी निकलते हैं। जैसे किसी गॉव के 5 परिवारों में बच्चों की संख्या 8 हो तो माध्य 1.6 प्राप्त होगा जो हास्यास्पद है, क्योंकि 1.6 बच्चे का कोई अर्थ नहीं होता है।

समान्तर माध्य के उपयोग:- समान्तर माध्य का उपयोग उस दशा में उपयोगी सिद्ध होता है जब श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व देना हो व पूर्ण गणितीय शुद्धता की आवश्यकता हो। व्यवहार में इसका प्रयोग सबसे अधिक होता है, क्योंकि इसकी गणना सरलता से की जा सकती है। औसत प्राप्तांक, औसत बुद्धि, औसत आय, औसत मूल्य, औसत उत्पादन, आदि में समान्तर माध्य का ही प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग गुणात्मक अध्ययन के लिए नहीं किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. …………की गणना में श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व दिया जाता है|
2. विभिन्न मदों के मूल्यों का समान्तर माध्य से लिये गये विचलनों का योग हमेशा …………….. होता है।
3. किसी समंक का समान्तर माध्य 42 है यदि इस समंक के पदों के प्रत्येक मूल्य में 4 जोड़ दिया जाय तो नवीन समान्तर माध्य …………हो जायेंगे।
4. केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप……………… सांख्यिकी के उदाहरण हैं|
5. सांख्यिकी को वास्तव में…………………… का विज्ञान कहा जाता है।

20.11मध्यका (Median)

मध्यका एक स्थिति संबंधी माध्य है। यह किसी समंक माला का वह मूल्य है जो कि समंक माला को दो समान भागों में विभाजित करता है। दूसरे शब्दों में मध्यका अवरोही या आरोही क्रम में लिखे हुए विभिन्न मदों के मध्य का मूल्य होता है। जिसके ऊपर व नीचे समान संख्या में मद मूल्य स्थित होते हैं। डॉ ए0एल0 बाउले के अनुसार "यदि एक समूह के पदों को उनके मूल्यों के आधार पर क्रमबद्ध किया जाय तो लगभग बीच का मूल्य ही मध्यका होता है।" कॉनर के अनुसार- "मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है, जिसमें एक भाग में मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग में सभी मूल्य उससे कम होते हैं।

20.12मध्यकाकीगणना(Computation of Median):

मध्यका की गणना के लिए सर्वप्रथम श्रेणी को व्यवस्थित करना चाहिए। मदों को किसी मापनीय गुण के आधार पर आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करते समय मूल्यों से संबंधित सूचना समय, दिन, वर्ष, नाम, स्थान, रोल नम्बर आदि को मूल्यों के आधार पर बदल लिया जाना चाहिए। आरोही क्रम में सबसे पहले छोटे मद को और उसके बाद उससे बड़े को और इसी क्रम में अंत में सबसे बड़े मद को लिखते हैं और अवरोही क्रम से सबसे बड़े मद को, फिर उससे छोटे को और अंत में सबसे छोटे मद को लिखा जाता है।

मध्यका की गणना विधि:व्यक्तिगत श्रेणी (Individual Series):- इसमें मध्यका की गणना की विधि इस प्रकार है:-

a. श्रेणी के पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में रखते हैं।
b. इसके पश्चात् निम्न सूत्र का प्रयोग कर मध्यका ज्ञात करते हैं:-

$$M = \text{Size of } \frac{(N+1)}{2} \text{ th item}$$

विषम संख्या होने पर (Odd Numbers):-

उदाहरण:- निम्न समंकों की सहायता से मध्यका की गणना कीजिए:-

9 10 6 8 11

हल: श्रेणी के पदों को आरोही क्रम में रखने पर

6 8 9 10 11

मध्यका = $\frac{(5+1)}{2}$ वां पद का आकार

अर्थात तीसरा पद हीमध्यका का मान होगा = 9

सम संख्या होने पर (Even Numbers):- उपयुक्त उदाहरण में संख्या विषम थी। अत: मध्य बिन्दु सरलता से ज्ञात कर लिया गया परन्तु यदि संख्या सम हो तो उसमें एक संख्या जोड़ने पर ऐसी संख्या बन जायेगी जिसमें दो का भाग देने पर हमें सम्पूर्ण संख्या प्राप्त होगी। ऐसी स्थिति में सूत्र का प्रयोग करके वास्तविक स्थिति ज्ञात कर लेनी चाहिए। ततपश्चात् जिन दो संख्याओं के बीच मध्यका हो, उन संख्याओं के मूल्यों को जोड़कर दो से भाग देना चाहिए। इससे प्राप्त संख्या मध्यका का वास्तविक मूल्य होगा।

उदाहरण:- निम्न समंकों की सहायता से मध्यका की गणना कीजिए:-

10 11 6 8 9

हल:श्रेणी के पदों को आरोही क्रम में रखने पर

6 8 9 10 11 15

मध्यका = $\frac{(9+10)}{2}$ = 9.5

खण्डित श्रेणी (Discrete Series):- खण्डित श्रेणी में मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्न कार्य करना होता है:-

1. पद मूल्यों (Size) को अवरोही अथवा आरोही क्रम में व्यवस्थित करना।
2. श्रेणी में दी गई आवृत्तियों की संचयी आवृत्ति ज्ञात करना।
3. मध्यका अंक ज्ञात करने के लिए $\frac{N+1}{2}$ सूत्र का प्रयोग करना, यहॉ 'N' का अर्थ आवृत्तियों की कुल संख्या से है।
4. मध्यका पद को संचयी आवृत्ति से देखना है। मध्यका पद जिस संचयी आवृत्ति में आता है, उसके सामने वाला पद-मूल्य ही मध्यका कहलाता है।

उदाहरण:- निम्न समंकों की सहायता से मध्यका की गणना कीजिए:-

छात्रों की संख्या - 6 8 9 10 11 15 16 20 25

अंक	28	20	27	21	22	26	23	24	25

हल : मध्यका ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम श्रेणी को व्यवस्थित करेंगे। फिर सूत्र का प्रयोग किया जायेगा।

Marks	No. of Student	Cumulative Frequency
20	8	8
21	10	18
22	11	29
23	16	45
24	20	65
25	25	90
26	15	105
27	9	114
28	6	120

मध्यका(Median) $= \frac{N+1}{2}$ वां पद का आकार

$= \frac{120+1}{2}$

$= 60.5$

अत: 60.5 वॉ मद 65 संचयी आवृत्ति के सामने अर्थात् 24 रू0 है मध्यका मजदूरी = 24 रू0 है।

सतत् श्रेणी (Continuous Series) :- सतत् श्रेणी में मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित क्रिया विधि अपनायी जाती है:-

1. सबसे पहले यह देखना चाहिए की श्रेणी अपवर्जी है अथवा समावेशी। यदि श्रेणी समावेशी दी गई है तो उसे अपवर्जी में परिवर्तन करना चाहिए।
2. इसके बाद साधारण आवृत्तियों की सहायता से संचयी आवृत्तियॉ (C.F.) ज्ञात करना चाहिए।
3. इसके पश्चात् N/2 की सहायता से मध्यका मद ज्ञात की जाती है।

4. मध्यका मद जिस संचयी आवृत्ति में होती है उसी से संबंधित वर्गान्तर मध्यका वर्ग (Median group) कहलाता है।
5. मध्यका वर्ग में मध्यका निर्धारण का आन्तर्गणन निम्न सूत्र की सहायता से किया जाता है:-

$$M = L_1 + \frac{i}{f}(m-c) or M = L_1 + \frac{L_z - L_1}{f}(m-c)$$

M = मध्यका (Median)

L_1 = मध्यका वर्ग की निम्न सीमा L_z = मध्यका वर्ग की उच्च सीमा f = मध्यका वर्ग की आवृत्ति m = मध्यका मद $(\frac{N}{2})$

C = मध्यका वर्ग से पहले वाले वर्ग की संचयी आवृत्ति

i = मध्यका वर्ग का वर्ग विस्तार

6. यदि श्रेणी अवरोही क्रम में दी गई है तो निम्न सूत्र का प्रयोग करेंगे:-

$$M = L_2 - \frac{i}{f}(m-c)$$

अपवर्जी श्रेणी (Exclusive Series):

उदाहरण:- निम्न सारणी से मध्यका ज्ञात कीजिए।

अकं	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25
छात्रों की संख्या -	5	8	10	9	8

Marks	**No. of Student F**	**Cumulative Frequency c f**
0-5	5	5
5-10	8	13
10-15	10	23

15-20	9	32
20-25	8	40

$M = \frac{N}{2} th$ item (वीं मद) or 40/2= 20th items (वीं मद). यह मद 23 संचयी आवृत्ति में सम्मिलित है जिसका मूल्य =(10-15) रू0 है। सूत्र द्वारा मध्यका $M = L_1 + \frac{i}{f}(m-c) = 10 + \frac{5}{10}(20-13)$ or 10+3.5=13.5

मध्यका(Median) = 13.50

समावेशी श्रेणी (Inclusive Series) : जब मूल्य अवरोही क्रम (Descending order) में दिये गए हों-

उदाहरण:- निम्न श्रेणी से मध्यका की गणना कीजिए।

अंक	25-30	20-25	15-20	10-15	5-10	0-5
छात्रों की संख्या	8	12	20	10	8	2

हल :

Marks	No. of Student F	Cumulative Frequency c f
25-30	8	8
20-25	12	20
15-20	20	40
10-15	10	50
5-10	8	58
0-5	2	60

$M = \frac{N}{2}$ वीं मद या $\frac{60}{2} =$ 30 वीं मद, जो 40 संचयी आवृत्ति में है, जिसका वर्ग 15-20 है। सूत्र द्वारा : $M = L_2 - \frac{i}{f}(m-c) = 20 - \frac{5}{20}(30-20)$

$$= 20 - \frac{5}{20} X10 = 20 - 2.5 = 17.5 \text{Marks}$$

अतः मध्यका अंक =17.5

वर्ग के मध्य मूल्य (Mid Value) दिये होने पर:

उदाहरण:- निम्न समकों की सहायता से मध्यका का निर्धारण कीजिए।

मध्य बिन्दु (Central Size)	5	15	25	35	45	55	65	75
आवृत्ति (Frequency)	15	20	25	24	12	31	71	52

हल : - ऐसे प्रश्नों को सबसे पहले उपखण्डित श्रेणी में परिवर्तित करेंगें। उपयुक्त उदाहरण में वर्गान्तर 10 है। इसका आधा भाग अर्थात् 5 प्रत्येक मध्य बिन्दु से घटाकर व आधा भाग मध्य बिन्दु में जोड़कर वर्ग की निम्न सीमा व उच्च सीमायें मालूम करके प्रश्न को हल किया जायेगा।

Size	Calculation of Central Value	Median F	Size C F
0-10	5	15	15
10-20	15	20	35
20-30	25	25	60
30-40	35	24	84
40-50	45	12	96
50-60	55	31	127
60-70	65	71	198
70-80	75	52	250

$M = \frac{N}{2}$ वीं मद या $\frac{250}{2}$ =125 वीं मद जिसका मूल्य 50-60 मध्यका वर्ग में है।

सूत्र द्वारा $= M = L_1 + \frac{i}{f}(m - c)$

$$=50+\frac{10}{31}(125-96)$$

$$=50+\frac{290}{31}$$

=50+9.35= 59.35

अतः मध्यका = 59.35

मध्यका की विशेषताएँ (Characteristics of Median):

1. मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माप है।
2. मध्यका के मूल्य पर अति सीमान्त इकाइयों का प्रभाव बहुत कम होता है।
3. मध्यका की गणना उस दशा में भी की जा सकती है जब श्रेणी की मदों को संख्यात्मक रूप नहीं दिया जा सकता हो।
4. अन्य माध्यों की भॉति मध्यका का गणितीय विवेचन सम्भव नहीं है।
5. यदि मदों की संख्या व मध्यका वर्ग मात्र के विषय में सूचना दी हुई है, तो भी मध्यका की गणना संभव है अर्थात् अपूर्ण सूचना से भी मध्यका मूल्य का निर्धारण संभव है।

मध्यका के गुण (Merits of Median)

1. बुद्धिमत्ता, सुन्दरता एवं स्वस्थता आदि गुणात्मक विशेषताओं के अध्ययन के लिए अन्य माध्यों की अपेक्षा मध्यका श्रेष्ठ समझा जाता है।
2. मध्यका पर अति सीमांत और साधारण मदों का प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. मध्यका को ज्ञात करना सरल और सुविधाजनक रहता है। इसकी गणना करना एक साधारण व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है।
4. कभी-कभी तो मध्यका की गणना निरीक्षण मात्र से ही की जा सकती है।
5. मध्यका को बिन्दुरेखीय पद्धति से भी ज्ञात किया जा सकता है।
6. मध्यका की गणना करने के लिए सम्पूर्ण समंकों की आवश्यकता नहीं होती है। केवल मदों की एवं मध्यका वर्ग का ज्ञान पर्याप्त है।
7. यदि आवृत्तियों की प्रवृत्ति श्रेणी के मध्य समान रूप से वितरित होने की हो तो मध्यका को एक विश्वसनीय माध्य माना जाता है।
8. मध्यका सदैव निश्चित एवं स्पष्ट होता है व सदैव ज्ञात किया जा सकता है।
9. मध्यका अधिकतर श्रेणी में दिये गये किसी मूल्य के समान ही होता है।

मध्यका के दोष (Demerits of Median):

1. मध्यका की गणना करने के लिए कई बार श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करना होता है, जो कठिन है।
2. यदि मध्यका तथा मदों की संख्या दी गई हो तो भी इनके गुणा करने पर मूल्यों का कुल योग प्राप्त नहीं किया जा सकता।
3. मदों का अनियमित वितरण होने पर मध्यका प्रतिनिधि अंक प्रस्तुत नहीं करता व भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकालते हैं।
4. जब मदों की संख्या सम है तो मध्यका का सही मूल्य ज्ञात करना संभव नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में मध्यका का मान अनुमानित ही होता है।
5. सतत् श्रेणी में मध्यका की गणना के लिए आन्तर्गणन का सूत्र प्रयुक्त किया जाता है, जिसकी मान्यता है कि वर्ग की समस्त आवृत्तियॉ पूरे वर्ग में समान रूप से फैली हुई है, जबकि वास्तव में ऐसा न होने पर निष्कर्ष अशुद्ध और भ्रामक होते हैं।
6. जब बड़े एवं छोटे मदों को समान भार देना हो तो यह माध्य अनुपयुक्त है, क्योंकि यह छोटे और बड़े मदों को छोड़ देता है।
7. मध्यका का प्रयोग गणितीय क्रियाओं में नहीं किया जा सकता है।
8. मध्यका ज्ञात करते समय, यदि इकाईयों की संख्या में वृद्धि की जाय तो इसका मूल्य बदल जायेगा।

मध्यका की उपयोगिता : जिन तथ्यों की व्यक्तिगत रूप से पृथक-पृथक तुलना नहीं की जा सकती अथवा जिन्हें समूहों में रखा जाना आवश्यक है, उनकी तुलना के लिए मध्यका का प्रयोग बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा ऐसी समस्याओं का अध्ययन भी संभव होता है, जिन्हें परिणाम में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ- सुन्दरता, बुद्धिमानी, स्वास्थ्य आदि को परिमाप में व्यक्त नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में जहाँ अति सीमांत मदों को महत्व नहीं दिया जाता हो, यहाँ माध्य उपयुक्त रहता है।

20.13मध्यकाकेसिद्धान्तपरआधारितअन्यमाप

जिस प्रकार मध्यका द्वारा एक श्रेणी की अनुविन्यासित मदों को दो बराबर भागों में बाँटा जाता है, उसी प्रकार श्रेणी को चार, पाँच , आठ, दस व सौ बराबर भागों में बाँटा जा सकता है। चार भागों में बाँटने वाला मूल्य चतुर्थक (Quartiles), पाँच भागों में बाँटने वाला मूल्य पंचमक (Quintiles), आठ भागों वाले मूल्य अष्ठमक (Octiles), दस वाले दशमक (Deciles) व सौ बराबर भागों में बाँटने वाले मूल्य शतमक (Percentiles) कहलाते है। इन विभिन्न मापों का प्रयोग सांख्यिकीय विश्लेषण में किया जाता है। ये मापें अपनी स्थिति के आधार पर निर्धारित की जाती जिनका विवेचन निम्न खण्डों में किया गया है:-

1. **चतुर्थक Quartiles):-** यह एक अत्यधिक महत्वपूर्ण माप है जो सबसे अधिक प्रयोग में आता है। जब किसी अनुविन्यासित श्रेणी को चार समान भागों में बाँटा जाना हो तो उसमें तीन चतुर्थक होंगे। प्रथम चतुर्थक को निचला चतुर्थक (Lower Quartile), दूसरे चतुर्थक को मध्यका तथा तृतीय चतुर्थक को उच्च चतुर्थक (Upper Quartile) कहते हैं।
2. **पंचमक (Quintiles):-** श्रेणी को पाँच बराबर भागों में बाँटने पर चार पंचमक होंगे, जिन्हें क्रमशः Q_{n1}, Q_{n2}, Q_{n3}, Q_{n4} द्वारा व्यक्त किया जाता है।
3. **अष्टमक (Octiles):-** श्रेणी का आठ बराबर भागों में बाँटने पर सात अष्टमक होंगे जिन्हें - O_1, O_2, O_3 .... O_7
4. **दशमक (Deciles) :-** श्रेणी को दस बराबर भागों में बाँटने पर 9 दशमक होंगे, इन्हें D_1, D_2, ... D_9 द्वारा व्यक्त किया जाता है।
5. **शतमक (Percentiles):-** श्रेणी को सौ बराबर भागों में बाँटने पर 99 शतमक होंगे। इन्हें P_1, P_2, P_3 .... P_{99} द्वारा व्यक्त किया जाता है।

द्वितीय चतुर्थक (Q_2) चौथे अष्टमक (Q_4) पाँच वें दशमक (D_5) तथा पचासवें शतमक (P_{50}) का मूल्य मध्यका मूल्य कहलाता है।

20.14बहुलक (Mode)

किसी श्रेणी का वह मूल्य जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है, बहुलक कहलाता है। अंग्रेजी भाषा का 'Mode' शब्द फ्रेंच भाषा के 'La Mode' से बना है, जिसका अर्थ फैशन या रिवाज में होने से है। जिस वस्तु का फैशन होता है, अधिकांश व्यक्ति प्राय: उसी वस्तु का प्रयोग करते हैं, अत: सांख्यिकी में बहुलक श्रेणी वह चर मूल्य है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है और जिसके चारों मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति सबसे अधिक होती है। बॉडिंगटन के अनुसार- "बहुलक को महत्वपूर्ण प्रकार, रूप या पद के आकार या सबसे अधिक घनत्व वाले मूल्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" बहुलक के जन्मदाता जिजेक के अनुसार- "बहुलक पद मूल्यों की किसी श्रेणी में सबसे अधिक बार आने वाला एक ऐसा मूल्य है, जिसके चारों ओर अन्य पद सबसे घने रूप में वितरित होते हैं।"

क्रॉक्सटन एवं काउडेन के शब्दों में- "बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि होता है|"

20.15बहुलककीगणना (Calculation of Mode):

व्यक्तिगत श्रेणी (Individual Series) :- अवर्गीकृत तथ्यों के संबंध में बहुलक ज्ञात करने की तीन विधियॉ हैं:-

i. निरीक्षण विधि।
ii. व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित या सतत श्रेणी में परिवर्तित करके।
iii. माध्यों के अंर्तसंबंध द्वारा।

निरीक्षण द्वारा (By Inspection) :- अवर्गीकृत तथ्यों का निरीक्षण करके यह निश्चित किया जाता है कि कौन सा मूल्य सबसे अधिक बार आता है अर्थात् कौन सा मूल्य सबसे अधिक प्रचलित है। जो मूल्य सबसे अधिक प्रचलित होता है, वही इन तथ्यों का बहुलक मूल्य होता है।

उदाहरण:- निम्नलिखित संख्याओं के समूहों के लिए बहुलक ज्ञात कीजिए।

i. 3, 5, 2, 6, 5, 9, 5, 2, 8, 6, 2, 3, 5, 4, 7
ii. 51.6, 48.7, 53.3, 49.5, 48.9, 51.6, 52, 54.6, 54, 53.3,
iii. 80, 110, 40, 30, 20, 50, 100, 60, 40, 10, 100, 80, 120, 60, 50, 70

हल :- उपरोक्त संख्याओं को निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि –

i. 5 संख्या सबसे अधिक बार (चार बार) आया है, अत: बहुलक = 5 है।
ii. 53.3 व 51.6 दोनों ही संख्याऍ दो-दो बार आवृत्त हुआ है, अत: यहॉ पर दो बहुलक (53.3 व 51.6) हैं। इस श्रेणी को द्वि-बहुलक (Bi-Modal) श्रेणी कहते हैं।
iii. 40, 50, 60, 80, 100 संख्याऍ दो-दो बार आवृत्त होती है। हम यह कह सकते हैं कि यहॉ पर पॉंच बहुलक हैं। इसे बहु-बहुलक (Multi Modal) श्रेणी कहते हैं। इस स्थिति में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बहुलक विद्यमान नहीं है।

अवर्गीकृत तथ्यों का वर्गीकरण करके:- यदि प्रस्तुत मूल्यों की संख्या बहुत अधिक होती है तो बहुलक का निरीक्षण द्वारा निर्धारण करना सरल नहीं होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत मूल्यों को आवृत्ति वितरण के रूप में खण्डित या सतत् श्रेणी में परिवर्तित कर लेते हैं। तत्पश्चात् खण्डित या सतत् श्रेणी से बहुलक निर्धारित करते हैं। बहुलक ज्ञात करने की यह रीति अधिक विश्वसनीय एवं तर्क संगत है।

माध्यों के अंर्तसंबंध द्वारा- यदि समंक वितरण सममित है अथवा आंशिक रूप से विषम है तो सम्भावित बहुलक मूल्य का निर्धारण इस रीति द्वारा किया जाता है। एक सममित समंक वितरण में

समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक $(\overline{X}, M, Z)$ का मूल्य समान होता है अर्थात् $\overline{X} = M = Z$ यदि वितरण आंशिक रूप से विषम या असममित हो तो इन तीनों माध्यों के मध्य औसत संबंध इस प्रकार होता है-

$$(\overline{X} - Z) = 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$$

बहुलक = 3x मध्यका - 2x समान्तर माध्य

खण्डित श्रेणी में बहुलक:- इस श्रेणी में बहुलक मूल्य निरीक्षण द्वारा एवं समूहीकरण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

निरीक्षण द्वारा (By Inspection) :- यदि आवृत्ति बंटन नियमित हो तथा उनके पद मूल्य सजातीय हों तो निरीक्षण मात्र से ही बहुलक का निर्धारण किया जा सकता है। जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है वही मूल्य बहुलक माना जाता है। नियमित से आशय आवृतियों के ऐसे वितरण से है जहॉ प्रारम्भ में वे बढ़ते क्रम में हों, मध्य में अधिकतम एवं फिर वे घटते क्रम में हो जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से सरलता से समझा जा सकता है-

उदाहरण:- निम्नलिखित समंकों से बहुलक की गणना कीजिए।

अंक (5 में से)	0	1	2	3	4	5
छात्रों की संख्या		5	8	13	5	2	1

हल :- उपर्युक्त आवृत्ति वितरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 2 प्राप्तांक की आवृत्ति 13 है जो सर्वाधिक है, अत: 2 प्राप्तांक बहुलक होगा। यहॉ पर आवृत्तियॉ पहले बढ़ते क्रम में हैं, मध्य में सर्वाधिक तथा फिर घटते क्रम में है। अत: यह नियमित आवृत्ति वितरण का उदाहरण है।

समूहीकरण द्वारा (By Grouping) :- जब श्रेणी में अनियमितता हो अथवा दो या इससे अधिक मूल्यों की आवृत्ति सबसे अधिक हो तो यह निश्चित करना कठिन होता है कि किस मूल्य को बहुलक माना जाय। ऐसी स्थिति में 'समूहीकरण' द्वारा बहुलक ज्ञात करना उपयुक्त रहता है। समूहीकरण रीति द्वारा बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न तीन कार्य करने होते हैं:-

i. समूहीकरण सारणी बनाना।
ii. विश्लेषण सारणी बनाना।
iii. बहुलक ज्ञात करना।

यहाँ पर हम लोग मात्र निरीक्षण विधि द्वारा बहुलक (Mode) ज्ञात करने की प्रक्रिया का अध्ययन करेंगें।

अखण्डित या सतत् श्रेणी (Continuous Series) में बहुलक ज्ञात करना:- सतत् श्रेणी में बहुलक निश्चित करते समय सर्वप्रथम निरीक्षण द्वारा सबसे अधिक आवृत्ति वाले पद को बहुलक वर्ग के लिए चुन लेते हैं। बहुलक वर्ग में बहुलक मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है:-

उपर्युक्त सूत्रों में प्रयुक्त विभिन्न चिन्हों के अर्थ इस प्रकार है:-

Z = बहुलक

L_1 = बहुलक वर्ग की अधर (Lower Limit) सीमा।

i = बहुलक वर्ग का वर्ग विस्तार या वर्गान्तर।

D_1= प्रथम वर्ग अंतर (Delta) = Difference one (f_1-f_o)

D_2 = द्वितीय वर्ग अंतर (Delta) = Difference two (f_1-f_2)

उदाहरण- निम्नलिखित समंकों से बहुलक मूल्य ज्ञात कीजिए:-

वर्ग आकार -	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25
बारम्बारता	2	6	15	8	6

इस श्रेणी के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि श्रेणी का 10-15 वर्ग बहुलक वर्ग है, क्योंकि इस वर्ग की आवृत्ति सर्वाधिक है। इस प्रकार

$$Z = L_1 + \frac{D_1}{D_1 + D_2} xi$$

यहॉ $D_1 = f_1 – fo = 15 - 6 = 9$

$D_2 = f_1 - f_2 = 15 - 8 = 7$

$$= 10 + \frac{9}{9+7} x5$$

$$= 10 + \frac{45}{16}$$

=10+2.81

= 12.81

बहुलक =12.81

बहुलक की प्रमुख विशेषताएँ (Principal Characteristics of Mode) :-

1. बहुलक मूल्य पर असाधारण इकाईयों का प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् इस माध्य पर श्रेणी के उच्चतम व निम्नतम अंकों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
2. वास्तविक बहुलक के निर्धारण के लिए पर्याप्त गणना की आवश्यकता होती है। यदि आवृत्ति वितरण अनियमित है तो बहुलक का निर्धारण करना भी कठिन होता है।
3. बहुलक सर्वाधिक घनत्व वाला बिन्दु होता है, अत: श्रेणी के वितरण का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।
4. बहुलक के लिए बीजगणितय विवेचन करना संभव नहीं होता।
5. सन्निकट बहुलक आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

बहुलक के गुण (Advantages of Mode) :-

i. **सरलता:-** बहुलक को समझना व प्रयोग करना दोनों सरल हैं। कभी-कभी इसका पता निरीक्षण द्वारा ही लगाया जा सकता है।
ii. **श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व:-** बहुलक मूल्य के चारों ओर समंक श्रेणी के अधिकतम मूल्य केन्द्रित होते है। अत: समग्र के लक्षणों तथा रचना पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है।
iii. **थोड़े मदों की जानकारी से भी बहुलक गणना सम्भव:-** बहुलक को गणना के लिए सभी मदों की आवृत्तियॉं जानना आवश्यक नहीं केवल बहुलक वर्ग के पहले और बाद वाले वर्ग की आवृत्तियॉं ही पर्याप्त है।
iv. **बिन्दु रेखीय प्रदर्शन सम्भव:-** बहुलक का प्रदर्शन रेखा चित्र से संभव है।
v. **चरम मूल्यों से कम प्रभावित:-** इसके मूल्य पर चरम मदों का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह सभी मूल्यों पर आधारित नहीं होता है।
vi. **सर्वाधिक उपयोगी मूल्य:-** बहुलक एक व्यावहारिक माध्य है, जिसका सार्वभौमिक उपयोग है।
vii. **विभिन्न न्यादर्शो में समान निष्कर्ष:-** समग्र से सदैव निदर्शन द्वारा चाहे जितना न्यादर्श लिये जाय उनसे प्राप्त बहुलक समान रहता है।

बहुलक के दोष:-

1. **अनिश्चित तथा अस्पष्ट:-** बहुलक ज्ञात करना अनिश्चित तथा अस्पष्ट रहता है। कभी-कभी एक ही समंकमाला से एक से अधिक बहुलक उपलब्ध होते हैं।
2. **चरम मूल्यों का महत्व नहीं:-** बहुलक में चरम मूल्यों को कोई महत्व नहीं दिया जाता।
3. **बीजगणितीय विवेचन कठिन:-** बहुलक का बीजगणितीय विवेचन नहीं किया जा सकता, अत: यह अपूर्ण है।
4. **वर्ग विस्तार का अधिक प्रभाव:-** बहुलक की गणना में वर्ग विस्तार का बहुत प्रभाव पड़ता है। भिन्न-भिन्न वर्ग विस्तार के आधार पर वर्गीकरण करने पर बहुलक भी भिन्न-भिन्न आते हैं।
5. **कुल योग प्राप्त करना कठिन:-** बहुलक को यदि मदों की संख्या से गुणा कर दिया जाय तो मदों के कुल मूल्यों का योग प्राप्त नहीं किया जा सकता।
6. **क्रमानुसार रखना:-** इसमें मदों को क्रमानुसार रखना आवश्यक है, इसके बिना बहुलक ज्ञात करना सम्भव नहीं होता है।

20.16समान्तरमाध्य, मध्यकातथाबहुलककेबीचसंबंध

एक सममित श्रेणी (Symmetrical Series) ऐसी श्रेणी होती है, जिसमें समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक का एक ही मूल्य होता है। एक विषम श्रेणी में तीनों माध्य समान नहीं होते हैं, परन्तु विषम श्रेणी में भी मध्यका, समान्तर माध्य व बहुलक के बीच की दूरी की औसतन एक तिहाई होती है।

इसका सूत्र इस प्रकार है:-

$$Z = \overline{X} - 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$$

$$M = Z + \frac{2}{3}(\overline{X} - Z)$$

$$\overline{X} = \frac{1}{2}(3M - Z)$$

अभ्यास प्रश्न

6. एक ………….श्रेणी (Series) में समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक का एक ही मूल्य होता है।

7. ……………..किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है।

8. सौ बराबर भागों में बाँटने वाले मूल्य ………………कहलाता है |

9. …………..समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है|

10. चार भागों में बाँटने वाला मूल्य ………………कहलाता है |

20.17सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने सांख्यिकीका अर्थ तथा वर्णनात्मक सांख्यिकी के रूप में केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों (Measures of Central Tendency) में समांतर माध्य, मध्यका व बहुलक का अध्ययन किया| इन सभी अवधारणाओं के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है|

सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है तथा यह गणना का विज्ञान है। सांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है।

वर्णनात्मक सांख्यिकी, किसी क्षेत्र के भूतकाल तथा वर्तमान काल में संकलित तथ्यों का अध्ययन करता है और इनका उद्देश्य विवरणात्मक सूचना प्रदान करना होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप,विवरणात्मक या वर्णनात्मक सांख्यिकी के उदाहरण हैं|

एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आस-पास केन्द्रित होने की प्रवृत्ति से है, जिसे मापा जा सके और इस प्रवृत्ति के माप को ही माध्य कहते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के उद्देश्य एवं कार्य हैं- सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना, तुलनात्मक अध्ययन के लिए, समूह का प्रतिनिधित्व, अंक गणितीय क्रियाएँ, भावी योजनाओं का आधार, माध्यों के मध्य पारस्परिक संबंध ज्ञात करने के लिए आदि|

किसी भी आदर्श माध्य में गुण होनी चाहिए:- प्रतिनिधित्व, स्पष्टता एवं स्थिरता, निश्चित निर्धारण, सरलता व शीघ्रता, परिवर्तन का न्यूनतम प्रभाव, निरपेक्ष संख्या आदि|

सांख्यिकीय में मुख्यत: निम्न माध्यों का प्रयोग होता है:-

स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of position)

a. बहुलक (Mode)
b. मध्यका (Median)

गणित सम्बन्धी माध्य (Mathematical Average)

c. समान्तर माध्य (Arithmetic Average or mean)
d. गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)
e. हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)

किसी समंक श्रेणी का समान्तर माध्य उस श्रेणी के मूल्यों को जोड़कर उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।

समान्तर माध्य की गणना करने के लिए दो रीतियों का प्रयोग किया जाता है:-

iii. प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)
iv. लघु रीति (Short-cut Method)

मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है, जिसमें एक भाग में मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग में सभी मूल्य उससे कम होते हैं। जिन तथ्यों की व्यक्तिगत रूप से पृथक-पृथक तुलना नहीं की जा सकती अथवा जिन्हें समूहों में रखा जाना आवश्यक है, उनकी तुलना के लिए मध्यका का प्रयोग बहुत उपयोगी है। इसके द्वारा ऐसी समस्याओं का अध्ययन भी संभव होता है, जिन्हें परिणाम में व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

जिस प्रकार मध्यका द्वारा एक श्रेणी की अनुविन्यासित मदों को दो बराबर भागों में बाँटा जाता है, उसी प्रकार श्रेणी को चार, पाँच, आठ, दस व सौ बराबर भागों में बाँटा जा सकता है। चार भागों में बाँटने वाला मूल्य चतुर्थक (Quartiles), पाँच भागों में बाँटने वाला मूल्य पंचमक (Quintiles), आठ भागों वाले मूल्य अष्ठमक (Octiles), दस वाले दशमक (Deciles) व सौ बराबर भागों में बाँटने वाले मूल्य शतमक (Percentiles) कहलाते है। इन विभिन्न मापों का प्रयोग सांख्यिकीय विश्लेषण में किया जाता है।

बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। यह मूल्य श्रेणी के मूल्यों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि होता है।

अवर्गीकृत तथ्यों के संबंध में बहुलक ज्ञात करने की तीन विधियाँ हैं:-

iv. निरीक्षण विधि।
v. व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित या सतत श्रेणी में परिवर्तित करके।
vi. माध्यों के अंर्तसंबंध द्वारा।

एक सममित श्रेणी (Symmetrical Series) ऐसी श्रेणी होती है, जिसमें समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक का एक ही मूल्य होता है। एक विषम श्रेणी में तीनों माध्य समान नहीं होते हैं, परन्तु विषम श्रेणी में भी मध्यका, समान्तर माध्य व बहुलक के बीच की दूरी की औसतन एक तिहाई होती है। इसका सूत्र है:- $Z = \overline{X} - 3(\overline{X} - M) or Z = 3M - 2\overline{X}$

20.18शब्दावली

1. **सांख्यिकी (Statistics):** सांख्यिकी अनुमानों और संभावनाओं का विज्ञान है तथा यह गणना का विज्ञान है। सांख्यिकी को सही अर्थ में माध्यों का विज्ञान कहा जाता है।
2. **वर्णनात्मक सांख्यिकी (Descriptive Statistics)**:वर्णनात्मक सांख्यिकीसंकलित तथ्योंका विवरणात्मक सूचना प्रदान करना होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप,विवरणात्मक या वर्णनात्मक सांख्यिकी के उदाहरण हैं|
3. **केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप (Measures of Central Tendency):** एक समंक श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का आशय उस समंक श्रेणी के अधिकांश मूल्यों की किसी एक मूल्य के आस-पास केन्द्रित होने की प्रवृत्ति से है, जिसे मापा जा सके और इस प्रवृत्ति के माप को माध्य भी कहते हैं।
4. **मध्यका (Median):**मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में विभाजित करता है|
5. **चतुर्थक (Quartiles)**: चार भागों में बाँटने वाला मूल्य चतुर्थक (Quartiles)|
6. **पंचमक(Quintiles):** पाँच भागों में बाँटने वाला मूल्य पंचमक (Quintiles)|
7. **अष्ठमक (Octiles)**: आठ भागों वाले मूल्य अष्ठमक (Octiles)|
8. **दशमक (Deciles):** दस भागों वाले मूल्य दशमक (Deciles)|
9. **शतमक (Percentiles):**सौ बराबर भागों में बाँटने वाले मूल्य शतमक (Percentiles)|
10. **बहुलक (Mode):**बहुलक किसी आवृत्ति वितरण का वह मूल्य है जिसके चारों ओर मदों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है।

20.19अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर

1. समान्तर माध्य 2. शून्य 3. 46 4. विवरणात्मक या वर्णनात्मक 5. माध्यों 6. सममित 7. बहुलक 8. शतमक (Percentiles) 9. मध्यका 10. चतुर्थक (Quartiles)

20.20संदर्भग्रन्थसूची/पाठ्यसामग्री

1. Best, John W. & Kahn (2008). Research in Education, New Delhi, PHI.
2. Good, Carter, V. (1963). Introduction to Educational Research, New York, Rand Mc Nally and company.

3. Koul, Lokesh (2002). Methodology of Educational Research New Delhi, Vikas Publishing Pvt. Ltd.
4. Garret, H.E. (1972). Statistics in Psychology and Education, New York, Vakils, Feffers and Simans Pvt. Ltd.
5. सिंह, ए०के० (2007) : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉं, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास
6. गुप्ता, एस०पी० (2008) : मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद, शारदा पब्लिकेशन
7. शर्मा, आर०ए० (2001) :शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, मेरठ, आर०लाल० पब्लिकेशन्स

20.21निबंधात्मकप्रश्न

1. सांख्यिकी का अर्थ बताइए तथा वर्णनात्मक सांख्यिकी के महत्व का वर्णन कीजिए |
2. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों विभिन्न मापकों की तुलना कीजिए |
3. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों के महत्व का वर्णन कीजिए |
4. निम्नलिखित समंकों से समान्तर माध्य, मध्यका, व बहुलक का मूल्य ज्ञात कीजिए:- (उत्तर :समान्तर माध्य =25, मध्यका = 25, बहुलक = 25)

वर्ग अंतराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
बारंबारता	5	10	15	10	5

5. निम्नलिखित समंकों से समान्तर माध्य, मध्यका, व बहुलक का मूल्य ज्ञात कीजिए:- (उत्तर :समान्तर माध्य =42.24, मध्यका = 42.42, बहुलक = 43.39)

वर्ग अंतराल	10-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70-79
बारंबारता	5	10	15	10	5	12	4

इकाई – 21विचरणशीलता का मापक: परास, चतुर्थांक विचलन व प्रमाप विचलन

Measures of Variability or Dispersion : Range, Quartile Deviation and Standard Deviation

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ:
21.4 अपकिरण की मापें
21.5 अपकिरण के उद्देश्य एवं महत्व
21.6 अपकिरण के विभिन्न माप
21.7 विस्तारया परास
21.8 चतुर्थक विचलन या अर्द्ध अन्तर-चतुर्थक विस्तार
21.9 प्रमाप विचलन
21.10 सारांश
21.11 शब्दावली
21.12 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
21.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची/पाठ्य सामग्री
21.14 निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

इससे पहले आपने केन्द्रीय प्रवृत्ति के बारे में यह जाना कि माध्य एक श्रेणी का प्रतिनिधि मूल्य होता है। यह मूल्य उस श्रेणी की माध्य स्थिति या सामान्य स्थिति का परिचायक मात्र होता है। माध्य मूल्य के आधार पर समंक श्रेणी की बनावट, संरचना, पद मूल्यों का माध्य मूल्य के संदर्भ में विखराव या फैलाव आदि के संदर्भ में जानकारी करना संभव नहीं है। अत: केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों के आधार पर सांख्यिकीय तथ्यों का विश्लेषण व निष्कर्ष प्राय: अशुद्ध व भ्रामक होता है। सांख्यिकीय विश्लेषण की शुद्धता के लिए विचरणशीलता के मापक को समझना अत्यंत

आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप विचरणशीलता का अर्थ, इसका महत्व तथा विस्तार, चतुर्थांक विचलन, तथा प्रमाप विचलन के परिकलन विधि का अध्ययन करेंगे |

21.2 उद्देश्य:

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

- विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ बता पायेंगें।
- विचरणशीलता के महत्व का वर्णन कर सकेंगे|
- विचरणशीलता की प्रकृति को बता पायेंगें।
- विचरणशीलता के संप्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
- विचरणशीलता के विभिन्न मापकों का यथा विस्तार, चतुर्थांक विचलन, तथा प्रमाप विचलन का परिकलन कर सकेंगे|

21.3 विचरणशीलताअथवाअपकिरणकाअर्थ (Meaning of Variability or Dispersion)

विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलाव, विखराव या प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के पद-मूल्यों के विखराव या विचरण की सीमा बताता है। जिस सीमा तक व्यक्तिगत पद मूल्यों में भिन्नता होती है, उसके माप को अपकिरण कहते हैं। ब्रुक्स तथा डिक के मतानुसार "एक केन्द्रीय मूल्य के दोनों ओर पाये जाने वाले चर मूल्यों के विचलन या प्रसार की सीमा ही अपकिरण है।" अपकिरण (Dispersion) को विखराव (Scatter), प्रसार (Spread) तथा विचरण (Variation) आदि नामों से जाना जाता है।

21.4 अपकिरणकीमापें (Measures of Dispersion):

अपकिरण को निम्न प्रकार से मापा जा सकता है:-

i. **निरपेक्ष माप (Absolute Measures)** :- यह माप अपकिरण को बतलाता है और उसी इकाई में बताया जाता है, जिसमें मूल समंक व्यक्त किए गए हैं, जैसे- रूपये, मीटर, लीटर इत्यादि। निरपेक्ष माप दो श्रेणियों की तुलना करने हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता।

ii. **सापेक्ष माप (Relative Measures):**- सापेक्ष अपकिरण कुल अपकिरण का किसी प्रमाप मूल्य से विभाजन करने से प्राप्त होता है और अनुपात या प्रतिशत

के रूप में व्यक्त किया जाता हे। दो यो दो से अधिक श्रेणियों की तुलना करने हेतु सापेक्ष माप का ही प्रयोग किया जाता है।

21.5 अपकिरणकेउद्देश्यएवंमहत्व (Objectives and importance of Dispersion):

अपकिरण के विभिन्न माप के निम्नलिखित उद्देश्य एवं महत्व हैं -

i. संमक श्रेणी के माध्य से विभिन्न पद-मूल्यों की औसत दूरी ज्ञात करना।
ii. समंक श्रेणी की बनावट के बारे में जानकारी प्रदान करना अर्थात् यह ज्ञात करना कि माध्य के दोंनों ओर पद-मूल्यों का विखराव या फैलाव कैसा है।
iii. समंक- श्रेणी के विभिन्न पद-मूल्यों का सीमा विस्तार ज्ञात करना।
iv. दो या दो से अधिक समंक श्रेणियों में पायी जाने वाली असमानताओं या बनावट में अन्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा यह निश्चित करना कि किस समंक श्रेणी में विचरण की मात्रा अधिक है।
v. यह जाँचना कि माध्य द्वारा समंक श्रेणी का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार अपकिरण की मापें माध्यों की अनुपूरक होती हैं।

21.6 अपकिरणकेविभिन्नमाप (Different Measures of Dispersion)

अपकिरण ज्ञात करने की विभिन्न रीतियॉ निम्न चार्ट में प्रस्तुत है:-

सीमा रीतियॉ (Methods of Limits)	**विचलन माध्य रीतियॉ (Methods of Average Deviation)**
1. विस्तार (Range) 2. अन्तर-चतुर्थक विस्तार (Inter-Quartile Range) 3. शतमक विस्तार (Percentile Range) 4. चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation)	1. माध्य विचलन (Mean Deviation) 2. प्रमाप विचलन (Standard Deviation)

21.7 विस्तार (Range) :

किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य (H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य (L) के अन्तर को विस्तार कहते हैं। यह अन्तर यदि कम है तो श्रेणी नियमित या स्थिर कहलायेगी। इसके विपरीत यदि यह अन्तर अधिक है तो श्रेणी अनियमित कहलाती है। यह अपकिरण ज्ञात करने की सबसे सरल परन्तु अवैज्ञानिक रीति है।

विस्तार की परिगणना:- अधिकतम और न्यूनतम मूल्यों का अन्तर विस्तार कहलाता है। विस्तार ज्ञात करते समय आवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। विस्तार की परिगणना केवल मूल्यों (मापों या आकारों) के अन्तर के आधार पर ही की जाती हैं।

विस्तार = अधिकतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य

Range= Highest Value (H)- Lowest Value (L)

विस्तार गुणांक (Coefficient of Range):- विस्तार का माप निरपेक्ष होता है। इसलिए इसकी तुलना अन्य श्रेणियों से ठीक प्रकार नहीं की जा सकती। इसे तुलनीय बनाने हेतु यह आवश्यक है कि इसे सापेक्ष रूप में व्यक्त किया जाय। इसके लिए विस्तार गुणांक ज्ञात किया जाता है, जिसका सूत्र निम्न है:-

विस्तार गुणांक (Coefficient of Range)= $\frac{H-L}{H+L}$

उदाहरण 01:- निम्नलिखित संख्याओं के समूहों में विस्तार (Range) की गणना कर उनकी तुलना कीजिए।

A= 7, 8, 2, 3, 4, 5

B= 6, 8, 10, 12, 5, 8

C= 9, 10, 12, 13, 15, 20

हल: विस्तार(Range) = अधिकतम मूल्य (H) – न्यूनतम मूल्य (L)

A= 8 – 2 = 6

B= 12 – 5 = 7

C= 20 – 9 = 11

A, B और C संख्याओं के तीन समूहों की तुलना हेतु विस्तार गुणांक (Coefficient of Range) की परिगणना करनी होगी, जो निम्नवत् है:-

विस्तार गुणांक(Coefficient of Range) = $\frac{H-L}{H+L}$

A= $\frac{8-2}{8+2}=\frac{6}{10}=0.6$

B= $\frac{12-5}{12+5}=\frac{7}{17}=0.41$

C= $\frac{20-9}{20+9}=\frac{11}{29}=0.37$

अत: विस्तार गुणांक A का 0.60, B का 0.41 तथा C का 0.37 है। स्पष्ट है A में विचरणशीलता सर्वाधिक है, जबकि C में न्यूनतम है।

विस्तार के गुण (Merits of Range):-

- इसकी गणना सरल है।
- यह उन सीमाओं को स्पष्ट कर देता है, जिनके मध्य पदों के मूल्य में बिखराव है, अत: यह विचलन का एक विस्तृत चित्र दर्शाता है।
- विस्तार की गणना के लिए आवृत्तियों की आवश्यकता नहीं होती, केवल मूल्यों पर ही ध्यान दिया जाता है। अत: आवृत्तियों से प्रभावित नहीं होता है।

विस्तार के दोष (Demerits of Range):-

- विस्तार एक अवैज्ञानिक माप है, क्योंकि इसमें माध्यों की उपेक्षा की जाती है।
- विस्तार अपकिरण का एक अनिश्चित माप है।
- विस्तार में श्रेणी के सभी मूल्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता अत: इसे सभी मूल्यों का प्रतिनिधि मूल्य नहीं कहा जा सकता।

21.8चतुर्थकविचलनयाअर्द्धअन्तर-चतुर्थकविस्तार (Quartile Deviation or Semi Inter-Quartile Range)

चतुर्थक विचलन श्रेणी के चतुर्थक मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है। यह श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का आधा होता है। इसलिए इसे अर्द्ध अन्तर-चतुर्थक विस्तार भी कहते है। यदि कोई श्रेणी नियमित अथवा सममितीय हो तो मध्यक (M) , तृतीय चतुर्थक (Q_3) तथा प्रथम चतुर्थक (Q_1) के ठीक बीच होगा। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation or Q.D.) = $\frac{Q_3-Q_1}{2}$, Q_3 = तृतीय चतुर्थक

Q_1 = प्रथम चतुर्थक

चतुर्थक विचलन का गुणांक (Coefficient of Quartile Deviation)

$$\text{Coefficient of Q.D.} = \frac{Q_3 - Q_1}{2} x \frac{2}{Q_3 + Q_1} = \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$$

उदाहरण 04 :- निम्न समंकों के आधार पर चतुर्थक विचलन एवं उसका गुणांक ज्ञात कीजिए। From the following data find Quartile Deviation and its Coefficient

अंक (X)	4	6	8	10	12	14	16
बारंबारता (f)	2	4	5	3	2	1	4
संचयी बारंबारता (cf)	2	6	11	14	16	17	21

हल:-

$Q1 = \frac{N+1}{4}$ वॉ पद

$= \frac{21+1}{4}$ वॉ पद

= 5.5 वॉ पद

= 6

$Q3 = \frac{D(N+1)}{4}$ वॉ पद

$= \frac{3(21+1)}{4}$ वॉ पद

= 16.5 वॉ पद

= 17

$$Q.D. = \frac{Q_3 - Q_1}{2} = \frac{14-6}{2} = 4$$

Q.D. गुणांक $= \frac{14-6}{14+6} = 0.40$

वर्गीकृत आंकड़ों का Q.D. निकालने के लिए शतमक या दशमक विस्तार की तरह ही प्रक्रिया अपना कर निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$Q_1 = L_1 + \frac{i}{f}(q_1 - C) \quad Q_3 = L_1 + \frac{i}{f}(q_3 - C)$$

$$Q.D. = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

चतुर्थाक विचलन के गुण (Merits of QR):-

1. चतुर्थक विचलन की गणना सरल है तथा इसे शीघ्रता से समझा जा सकता है, क्योंकि इसकी गणना में जटिल गणितीय सूत्रों का प्रयोग नहीं करना पड़ता है।
2. यह श्रेणी के न्यूनतम 25% तथा अधिकतम 25% मूल्यों को छोड़ देता है। अत: यह अपकिरण के अन्य मापों की अपेक्षा चरम मूल्यों द्वारा कम प्रभावित होता है।
3. यद्यपि यह श्रेणी की बनावट पर प्रकाश नहीं डालता फिर भी श्रेणी के उन 50% मूल्यों का विस्तार परिष्कृत रूप से प्रस्तुत करता है, जो चरम मूल्यों से प्रभावित नहीं होते है।

चतुर्थाक विचलन के दोष (Demerits of QR):-

1. यह पदों के बिखराव का प्रदर्शन करने में असमर्थ है।
2. यह चरम मूल्यों को महत्व नहीं देता है।
3. इसके आधार पर बीजगणितीय रीतियों का प्रयोग करके विश्लेषण करना संभव नहीं है।
4. निदर्शन के उच्चावचनों (Fluctuations) से यह बहुत अधिक प्रभावित होता है।

इन दोषों को दूर करने के उद्देश्य से ही माध्य विचलन और प्रमाप विचलन की गणना की जाती है।

21.9प्रमापविचलन (Standard Deviation)

प्रमाप विचलन के विचार का प्रतिपादन कार्ल पियर्सन ने 1893 ई0 में किया था। यह अपकिरण को मापने की सबसे अधिक लोकप्रिय और वैज्ञानिक रीति है। प्रमाप विचलन की गणना केवल समान्तर माध्य के प्रयोग से ही की जाती है। किसी समंक समूह का प्रमाप विचलन निकालने हेतु उस समूह के समान्तर माध्य से विभिन्न पद मूल्यों के विचलन ज्ञात किये जाते हैं। माध्य विचलन की भॉति विचलन लेते समय बीजगणितीय चिन्हों को छोड़ा नहीं जाता है। इन विचलनों के वर्ग ज्ञात कर लिए जाते हैं। प्राप्त वर्गों के योग में कुल मदों की संख्या का भाग देकर वर्गमूल निकाल लेते हैं। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे प्रमाप विचलन कहते हैं। वर्गमूल से पूर्व जो मूल्य आता है, उसे अपकिरण की द्वितीय घात या विचरणांक अथवा प्रसरण (Variance) कहते हैं। अत: प्रमाप विचलन समान्तर माध्य से समंक श्रेणी के विभिन्न पद मूल्यों के विचलनों के वर्गों के माध्य का वर्गमूल होता है । (Standard Deviation is the square root of the Arithmetic Mean of the squares of all deviations being measured from the Arithmetic mean of the observations).

प्रमाप विचलन का संकेताक्षर ग्रीक भाषा का छोटा अक्षर (Small Sigma) σ होता है। प्रमाप विचलन को मध्यक विभ्रम (Mean Error), मध्यक वर्ग विभ्रम (Mean Square Error) या मूल मध्यक वर्ग विचलन (Root Mean Square Deviation) आदि अनेक नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

प्रमाप विचलन का गुणांक (Coefficient of Standard Deviation) दो श्रेणियों की तुलना के लिए प्रमाप विचलन का सापेक्ष माप (Relative Measure of Standard Deviation) ज्ञात किया जाता है जिसे प्रमाप विचलन गुणांक (Coefficient of Standard Deviation) कहते हैं। प्रमाप विचलन में समान्तर माध्य $(\overline{X})$ से भाग देने से प्रमाप विचलन का गुणांक प्राप्त हो जाता है।

प्रमाप विचलन का गुणांक (Coefficient of S.D.) $= \frac{\sigma}{X}$ or $\frac{S.D.}{Mean}$

प्रमाप विचलन की परिगणना (Calculation of Standard Deviation):-

i. खण्डित श्रेणी में प्रमाप विचलन की गणना (Calculation of S.D. in Discrete Series)

a. प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$$

b. लघु रीति (Short-cut Method) = $\sigma \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$

उदाहरण 06:- निम्न समंकों से प्रमाप विचलन की परिगणना कीजिए।

अंक (X)	1	2	3	4	5	6	7	Total
बांरबारता (f)	1	5	11	15	13	4	1	50

हल:- प्रत्यक्ष विधि से प्रमाप विचलन की परिगणना

अंक X	**बांरबारता (f)**	**4 से विचलन D**	**विचलन का वर्ग d^2**	**विचलन का वर्ग व बारंबारता का गुणन**	**अंक व बारंबारता का गुणन**

				fd^2	Fx
1	1	-3	9	9	1
2	5	-2	4	20	10
3	11	-1	1	11	33
4	15	0	0	0	60
5	13	1	1	13	65
6	4	2	4	16	24
7	1	3	9	9	7
Total	50		28	78	200

$$X = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{200}{50} = 4$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} \text{ or } \sqrt{\frac{78}{50}} = \sqrt{1.50} = 1.25$$ अतः SD=1.25

लघु रीति (Short-cut Method) से प्रमाप विचलन की परिगणना :

X	F	dx(A=3)	fdx	fdx X dx (fdx^2)
1	1	-2	-2	4
2	5	-1	-5	5
3	11	0	0	0
4	15	+1	15	15
5	13	+2	26	52
6	4	+3	12	36
7	1	+4	4	16
Total	50		50	120

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$$

$$=\sqrt{\frac{120}{50}-\left(\frac{50}{50}\right)^2}$$

$$=\sqrt{2.56-(1)^2}$$

$$=\sqrt{2.56-1}$$

$$= 1.25$$

सतत श्रेणी में (Continuous Series) में प्रमाप विचलन

(A) प्रत्यक्ष रीति $=\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$

(B) लघु रीति $=\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N}-\left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$

उदाहरण 07:- निम्न समंकों से प्रमाप विचलन तथा उनके गुणांक की परिगणना कीजिए।

कुल अंकों में प्राप्तांक:-	0-2	2-4	4-6	6-8	8-10	Total
छात्रों की संख्या:-	2	5	15	7	1	30

Marks	No. of Students	M.V.	Deviation from $\overline{X}$ =S	Square of Deviations	Product of fxd 2	frequency X Value	Square of M.V.	Product of f and X 2
X	**f**	**X**	**d**	**d^2**	**fd^2**	**fX**	**X^2**	**fx^2**
0-2	2	1	-4	16	32	2	1	2

2-4	5	3	-2	4	20	15	9	45
4-6	15	5	0	0	0	75	25	375
6-8	7	7	2	4	28	49	49	343
8-10	1	9	4	16	16	9	81	81
Total	**30**	**-**	**-**	**40**	**96**	**150**	**165**	**846**

$$X = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{150}{30} = 5 Marks; \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{96}{30}} = 1.79$$

$$\text{Coefficient of } \sigma = \frac{\sigma}{X} = \frac{1.79}{5} = or 0.36$$

लघु रीति से प्रमाप विचलन का परिकलन

X	M.V. (X)	No. of f	Dx A=7	fdx	fdx Xdx	X^2	fX^2
0-2	1	2	-6	-12	72	1	2
2-4	3	5	-4	-20	80	9	45
4-6	5	15	-2	-30	60	25	375
6-8	7	7	0	0	0	49	343
8-10	9	1	2	2	4	81	81
Total	-	30	-10	-60	216	165	846

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma fdx}{N} = 7 + \frac{-60}{30} = 7 - 2 = 5 \text{ Marks}$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2} = \sqrt{\frac{216}{30} - \left(\frac{-60}{30}\right)^2}$$

$$= \sqrt{7.20 - (-2)^2} = \sqrt{3.2} = 1.79 \text{ Marks}$$

विचरण गुणांक (Coefficient of Variation):- दो या दो से अधिक श्रेणियों में अपकिरण की मात्रा की तुलना करने के लिए विचरण-गुणांक का प्रयोग किया जाता है। विचरण-गुणांक ज्ञात करने हेतु प्रमाप विचलन के गुणांक को 100 से गुणा कर देते हैं तो विचरण गुणांक कहलाता है।

विचरण गुणांक(Coefficient of Variation) = $\frac{\sigma}{X} X100$

विचरण गुणांक एक सापेक्ष माप है। इसका प्रतिपादन कार्ल पियर्सन ने 1895 में किया था। अत: इसे कार्ल पियर्सन का विचरण गुणांक भी कहते हैं। कार्ल पियर्सन के अनुसार "विचरण गुणांक माध्य में होने वाला प्रतिशत विचरण है, जबकि प्रमाप विचलन को माध्य में होने वाला सम्पूर्ण विचरण माना जाता है।" इसका प्रयोग दो समूहों की अस्थिरता (Variability), सजातीयता (Homogeneity), स्थिरता (Stability) तथा संगति (Consistency) की तुलना के लिए किया जाता है। जिस श्रेणी में विचरण गुणांक कम होता है वह श्रेणी उस श्रेणी से अधिक स्थिर (संगत) होती है, जिसमें विचरण गुणांक अधिक होता है।

प्रमाप विचलन की गणितीय विशेषताएँ (Mathematical Properties of Standard Deviation):-

1. एक से अधिक श्रेणियों के आधार पर विभिन्न प्रमाप विचलनों से सम्पूर्ण श्रेणियों का सामूहिक प्रमाप विचलन निकाला जा सकता है।
2. यदि दो श्रेणियों के मदों की संख्या व समान्तर माध्य समान हों तो सम्पूर्ण श्रेणी का प्रमाप विचलन निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है:- $\sigma_{12} = \sqrt{\frac{\sigma_1^2 + \sigma_2^2}{2}}$
3. क्रमानुसार प्राकृतिक संख्याओं का प्रमाप विचलन ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है:- $\sigma = \sqrt{1/12 (N^2 - 1)}$
4. प्रमाप विचलन का सामान्य वक्र (Normal Crave) के क्षेत्रफल से एक विशिष्ट संबंध होता है।

$$\overline{X} \pm \sigma = \quad 68.26\%$$

$$\overline{X} \pm 2\sigma = \quad 95.44\%$$

$$\overline{X} \pm 3\sigma = \quad 99.76\%$$

प्रमाप विचलन के गुण (Merits of Standard Deviation):-

1. प्रमाप विचलन श्रेणी के समस्त पदों पर आधारित होता है।
2. प्रमाप विचलन की स्पष्ट एवं निश्चित माप है।

3. प्रमाप विचलन की गणना के लिए विचलनों के वर्ग बनाये जाते है फलस्वरूप सभी पद धनात्मक हो जाते हैं। अत: इसका अग्रिम विवेचन भी किया जा सकता है।
4. प्रमाप विचलन पर आकस्मिक परिवर्तनों का सबसे कम प्रमाप पड़ता है।
5. विभिन्न श्रेणियों के विचरणशीलता की तुलना करने, मापों की अर्थपूर्णता की जॉच करने, वितरण की सीमाएँ निर्धारित करने आदि में प्रमाप विचलन, अपकिरण का सर्वश्रेष्ठ माप माना जाता है।
6. निर्वचन की सुविधा के कारण श्रेणी की आकृति को समझना सरल होता है।

प्रमाप विचलन के दोष (Demerits) :-

1. प्रमाप विचलन की परिगणना क्रिया अपेक्षाकृत कठिन व जटिल है।
   प्रमाप विचलन पर चरम पदों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न

1. ……………………..का अर्थ फैलाव, विखराव या प्रसार है।
2. किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य (H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य (L) के अन्तर को ……………… कहते हैं।
3. प्रमाप विचलन के गुणांक को 100 से गुणा कर देते हैं तो ………..कहलाता है।
4. दो या दो से अधिक श्रेणियों में ……………..की मात्रा की तुलना करने के लिए विचरण-गुणांक का प्रयोग किया जाता है।
5. चतुर्थक विचलन श्रेणी के ………………मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है।
6. चतुर्थक विचलन श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का ……..होता है।
7. …………अपकिरण कुल अपकिरण का किसी प्रमाप मूल्य से विभाजन करने से प्राप्त होता है|
8. किसी भी श्रेणी के तृतीय चतुर्थक (Q_3) तथा प्रथम चतुर्थक (Q_1)के अन्तर को …………विस्तार कहते हैं।
9. प्रमाप विचलन के विचार का प्रतिपादन ……………..ने किया।
10. विचरण गुणांक एक …………………माप है।
11. विचरण गुणांक के विचार का प्रतिपादन ………….नेकिया था।

12. ………………समान्तर माध्य से समंक श्रेणी के विभिन्न पद मूल्यों के विचलनों के वर्गों के माध्य का वर्गमूल होता है।

13. (.................)= $\frac{H-L}{H+L}$

21.10सारांश

सांख्यिकीय विश्लेषण की शुद्धता के लिए विचरणशीलता के मापक को समझना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप विचरणशीलता के मापकों, चतुर्थांक, शतांक तथा प्रमुख सांख्यिकियों के प्रमाप त्रुटियों का अध्ययन किया | इस भाग में इन सभी अवधारणाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है|

विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलाव, विखराव या प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के पद-मूल्यों के विखराव या विचरण की सीमा बताता है। जिस सीमा तक व्यक्तिगत पद मूल्यों में भिन्नता होती है, उसके माप को अपकिरण कहते हैं।

अपकिरण को निम्न प्रकार से मापा जा सकता है:-

(i) **निरपेक्ष माप (Absolute Measures)** :- यह माप अपकिरण को बतलाता है और उसी इकाई में बताया जाता है, जिसमें मूल समंक व्यक्त किए गए हैं| निरपेक्ष माप दो श्रेणियों की तुलना करने हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(ii) **सापेक्ष माप (Relative Measures):**- सापेक्ष अपकिरण कुल अपकिरण का किसी प्रमाप मूल्य से विभाजन करने से प्राप्त होता है और अनुपात या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता हे। दो यो दो से अधिक श्रेणियों की तुलना करने हेतु सापेक्ष माप का ही प्रयोग किया जाता है।

अपकिरण ज्ञात करने की विभिन्न रीतियाँ हैं-

1. विस्तार (Range):किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य (H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य (L) के अन्तर को विस्तार कहते हैं।
2. चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation):चतुर्थक विचलन श्रेणी के चतुर्थक मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है। यह श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का आधा होता है। इसलिए इसे अर्द्ध अन्तर-चतुर्थक विस्तार भी कहते है। यदि कोई श्रेणी

नियमित अथवा सममितीय हो तो मध्यक (M) , तृतीय चतुर्थक (Q_3) तथा प्रथम चतुर्थक (Q_1) के ठीक बीच होगा।

3. प्रमाप विचलन (Standard Deviation):प्रमाप विचलन की गणना केवल समान्तर माध्य के प्रयोग से ही की जाती है। किसी समंक समूह का प्रमाप विचलन निकालने हेतु उस समूह के समान्तर माध्य से विभिन्न पद मूल्यों के विचलन ज्ञात किये जाते हैं। माध्य विचलन की भॉति विचलन लेते समय बीजगणितीय चिन्हों को छोड़ा नहीं जाता है। इन विचलनों के वर्ग ज्ञात कर लिए जाते हैं। प्राप्त वर्गों के योग में कुल मदों की संख्या का भाग देकर वर्गमूल निकाल लेते हैं। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे प्रमाप विचलन कहते हैं।

21.11शब्दावली

विचरणशीलता (Dispersion): विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ फैलाव, विखराव या प्रसार है। अपकिरण किसी श्रेणी के पद-मूल्यों के विखराव या विचरण की सीमा बताता है। जिस सीमा तक व्यक्तिगत पद मूल्यों में भिन्नता होती है, उसके माप को अपकिरण कहते हैं।

निरपेक्ष अपकिरण(Absolute Dispersion) : यह माप अपकिरण को बतलाता है और उसी इकाई में बताया जाता है, जिसमें मूल समंक व्यक्त किए गए हैं| निरपेक्ष माप दो श्रेणियों की तुलना करने हेतु प्रयोग नहीं किया जा सकता।

सापेक्ष माप (Relative Dispersion):- सापेक्ष अपकिरण कुल अपकिरण का किसी प्रमाप मूल्य से विभाजन करने से प्राप्त होता है और अनुपात या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता हे। दो यो दो से अधिक श्रेणियों की तुलना करने हेतु सापेक्ष माप का ही प्रयोग किया जाता है।

विस्तार (Range):किसी समंक श्रेणी में सबसे अधिक मूल्य (H) और सबसे छोटे मूल्य या न्यूनतम मूल्य (L) के अन्तर को विस्तार कहते हैं।

चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation):चतुर्थक विचलन श्रेणी के चतुर्थक मूल्यों पर आधारित अपकिरण का एक माप है। यह श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थक के अन्तर का आधा होता है।

प्रमाप विचलन (Standard Deviation):किसी समंक समूह का प्रमाप विचलनउस समूह के समान्तर माध्य से विभिन्न पद मूल्यों का विचलन होता है| इन विचलनों के वर्ग ज्ञात कर लिए जाते हैं। प्राप्त वर्गों के योग में कुल मदों की संख्या का भाग देकर वर्गमूल निकाल लेते हैं। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे प्रमाप विचलन कहते हैं।

विचरण गुणांक (Coefficient of Variation): विचरण-गुणांक ज्ञात करने हेतु प्रमाप विचलन के गुणांक को 100 से गुणा कर देते हैं तो विचरण गुणांक कहलाता है। दो या दो से अधिक श्रेणियों में अपकिरण की मात्रा की तुलना करने के लिए विचरण-गुणांक का प्रयोग किया जाता है।

21.12 अभ्यास प्रश्नोंकेउत्तर

1. अपकिरण 2. विस्तार 3. विचरण गुणांक 4. अपकिरण 7.निरपेक्ष 8. चतुर्थक 9. आधा 12. सापेक्ष 13. अन्तर चतुर्थक 14. सार्थकता 15. कार्ल पियर्सन 16. सापेक्ष 17. कार्ल पियर्सन 18. प्रमाप विचलन 19. प्रथम विस्तार गुणांक

21.13 संदर्भग्रन्थसूची/पाठ्यसामग्री

1. Garret, H.E. (1972). Statistics in Psychology and Education, New York, Vakils, Feffers and Simans Pvt. Ltd.
2. Best, John W. & Kahn (2008). Research in Education, New Delhi, PHI.
3. Koul, Lokesh (2002). Methodology of Educational Research New Delhi, Vikas Publishing Pvt. Ltd.
4. Karlinger, Fred N. (2002). Foundations of Behavioural Research, New Delhi, Surjeet Publications.
5. गुप्ता, एस०पी० (2008) : मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद, शारदा पब्लिकेशन
6. सिंह, ए०के० (2007) : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉं, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास
7. शर्मा, आर०ए० (2001) :शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, मेरठ, आर०लाल० पब्लिकेशन्स

21.4निबंधात्मकप्रश्न

1. विचरणशीलता अथवा अपकिरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा विचरणशीलता के महत्व का वर्णन कीजिए |

2. विचरणशीलता के विभिन्न मापकों की तुलना कीजिए |

3. निम्न समंकों के आधार पर चतुर्थक विचलन एवं उसका गुणांक ज्ञात कीजिए। From the following data find Quartile Deviation. (उत्तर Q_1=26.07, Q_3= 47.79, Q.D.= 0.29,)

अंक (X)	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70-79
बारंबारता (f)	306	182	144	96	42	34

4. निम्न समंकों से प्रमाप विचलन की परिगणना कीजिए। (उत्तर: प्रमाप विचलन= 10.86)

अंक (X)	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
बारंबारता (f)	50	100	100	30	20

इकाई-22सहसंबंध: अर्थ, प्रकार एवं क्रम अंतर सहसंबंधगुणांक का परिकलन

Correlation : Meaning, Types, and Computation of Rank Difference Coefficient of Correlation:

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 सहसंबंधका अर्थ व परिभाषाएं
22.4 सहसंबंध व कारण-कार्य संबंध
22.5 सहसंबंध का महत्व
22.6 सहसंबंध के प्रकार
22.7 सहसंबंध का परिमाण
22.8 सहसंबंध के रूप में r की विश्वसनीयता
22.9 सरल सहसंबंध ज्ञात करने की विधियाँ
22.10 श्रेणी क्रम विधि द्वारासहसंबंध गुणांक का परिकलन
22.11 सारांश
22.12 शब्दावली
22.13 अभ्यासप्रश्नों के उत्तर
22.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची/पाठ्य सामग्री
22.15 निबंधात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

मानव जीवन से संबंधित सामाजिक शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं वैज्ञानिक आदि सभी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की समंक श्रेणियों में आपस में किसी न किसी प्रकार संबंध पाया जाता है। उदाहरण के लिए- दुश्चिंता के बढ़ने से समायोजन में कमी, अधिगम बढ़ने से उपलब्धि में वृद्धि गरीबी बढ़ने से जीवन स्तर में कमी आदि। इन स्थितियों में सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए सहसंबंध ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सहसंबंध दो अथवा अधिक चरों के मध्य

संबंध का अध्ययन करता है एवं उस संबंध की मात्रा को मापता है। यहॉ पर आप सहसंबंध का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति व इसके मापने केश्रेणी क्रम विधिका अध्ययन करेंगें।

22.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

- सहसंबंध का अर्थ बता पायेंगे।
- सहसंबंध के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सहसंबंध गुणांक का अर्थापन कर सकेंगे|
- श्रेणी क्रम विधि द्वारा सहसंबंध गुणांक का परिकलन कर सकेंगे|

22.3सहसंबंध (Correlation)काअर्थवपरिभाषाएं

जब दो या अधिक तथ्यों के मध्य संबंध को अंकों में व्यक्त किया जाय तो उसे मापने एवं सूक्ष्म रूप में व्यक्त करने के लिए जो रीति प्रयोग में लायी जाती है उसे सांख्यिकी में सहसंबंध कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, दो या दो से अधिक चरों के मध्य अर्न्तसंबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है। सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है, जिसे सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने सहसंबंध की अनेक परिभाषाएँ दी हैं-

प्रो0 किंग "यदि यह सत्य सिद्ध हो जाता है कि अधिकांश उदाहरणों में दो चर-मूल्य (Variables) सदैव एक ही दिशा में या परस्पर विपरीत दिशा में घटने-बढ़ने की प्रवृत्ति रखते हैं तो ऐसी स्थिति में यह समझा जाना चाहिए कि उनमें एक निश्चित संबंध है। इसी संबंध को सहसंबंध कहते हैं। (If it is proved true that in a large number of instances, two variables tend always to fluctuate in the same or in opposite direction, we consider that the fact is established and relationship exists. This relationship is called correlation)."

बाउले- " जब दो संख्याएँ इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक का परिवर्तन दूसरे के परिवर्तन की सहानुभूति में हो, जिसमें एक की कमी या वृद्धि, दूसरे की कमी या वृद्धि से संबंधित हो या विपरीत हो और एक में परिवर्तन की मात्रा दूसरे के परिवर्तन की मात्रा के समान हो, तो दोनों मात्राएँ सहसंबंध कहलाती है।" इस प्रकार सहसंबंध दो या दो से अधिक संबंधित चरों के बीच संबंध की सीमा के माप को कहते हैं।

22.4 सहसंबंधवकारण-कार्यसंबंध (Causation and Correlation)

जब दो समंक श्रेणियाँ एक दूसरे पर निर्भर/आश्रित हों तो इस पर निर्भरता को सहसंबंध के नाम से जाना जाता है। अत: एक समंक श्रेणी में परिवर्तन कारण होता है तथा इसके परिणामस्वरूप दूसरी श्रेणी में होने वाला परिवर्तन प्रभाव या कार्य कहलाता है। कारण एक स्वतंत्र चर होता है तथा प्रभाव इस पर आश्रित है। कारणों में परिवर्तनों से प्रभाव परिवर्तित होता है न कि प्रभाव के परिवर्तन से कारण। सहसंबंध की गणना से पूर्व चरों की प्रकृति को अच्छी तरह समझना चाहिए अन्यथा गणितीय विधि से चरों के मध्य सहसंबंध की निकाली गयी मात्रा बहुत ही भ्रामक हो सकता है। गणितीय विधि से किसी भी दो या दो से अधिक चरों के मध्य सहसंबंध की मात्रा का परिकलन किया जा सकता है और इन चरों के मध्य कुछ न कुछ सहसंबंध की मात्रा भी हो सकती है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि उन चरों के मध्य कारण- कार्य का संबंध विद्यमान है। प्रत्येक कारण-कार्य संबंध का अर्थ सहसंबंध होता है, लेकिन प्रत्येक सहसंबंध से कारण-कार्य संबंध को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि अभिप्रेरणा की मात्रा में परिवर्तन के फलस्वरूप अधिगम पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच सहसंबंध गुणांक का परिकलन किया जाता है तो निश्चित रूप से उस सहसंबंध गुणांक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन दोनों चरों के मध्य कारण-कार्य संबंध है। लेकिन यदि भारत में पुस्तकों के मूल्यों में परिवर्तन का न्यूयार्क में सोने के मूल्यों में परिवर्तन के समंकों से सहसंबंध गुणांक का परिकलन किया जाय तो इस गुणांक से प्राप्त परिणाम तर्कसंगत नहीं हो सकते, क्योंकि पुस्तकों के मूल्य व सोने के मूल्यों के मध्य कोई कारण-कार्य का संबंध सुनिश्चित नहीं किया किया जा सकता।

अत: इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक सहसंबंध गुणांक कारण-कार्य संबंध को सुनिश्चित नहीं करता।

22.5 सहसंबंधकामहत्व (Importance)

सहसंबंध का व्यावहारिक विज्ञान व भौतिक विज्ञान विषयों में बहुत महत्व है। इसे निम्न तरीके से समझा जा सकता है:-

- सहसंबंध के आधार पर दो संबंधित चर-मूल्यों में संबंध की जानकारी प्राप्त होती है।
- सहसंबंध विश्लेषण शोध कार्यों में सहायता प्रदान करता है।
- सहसंबंध के सिद्धान्त पर विचरण अनुपात (Ratio of Variation) तथा प्रतीपगमन (Regression) की धारणाएँ आधारित है, जिसकी सहायता से दूसरी श्रेणी के संभावित चर-मूल्यों का विश्वसनीय अनुमान लगाया जा सकता है।
- सहसंबंध का प्रभाव भविष्यवाणी की अनश्चितता के विस्तार को कम करता है।

- व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दो या अधिक घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने एवं उनमें पारस्परिक संबंध का विवेचन करके पूर्वानुमान लगाने में सहसंबंध बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

22.6 सहसंबंधकेप्रकार (Types of Correlation)

सहसंबंध को हम दिशा, अनुपात, तथा चर-मूल्यों की संख्या के आधार पर कई भागों में विभक्त कर सकते हैं।

i. **धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध (Positive and Negative Correlation) :-** यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। जैसे- अधिगम की मात्रा में वृद्धि से शैक्षिक उपलब्धि का बढ़ना। इसके विपरीत यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाएगा। इसके अन्तर्गत एक चर-मूल्य में वृद्धि तथा दूसरे चर-मूल्य में कमी होती है तथा एक के मूल्य घटने से दूसरे के मूल्य बढ़ने लगते हैं। धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध को निम्न रेखाचित्र की मदद से समझा जा सकता है:-

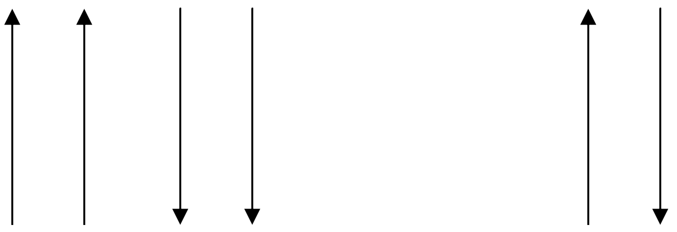

धनात्मक सहसंबंध **ऋणात्मक सहसंबंध**

अग्रांकित रेखाचित्र में पूर्ण धनात्मक तथा पूर्ण ऋणात्मक सह संबंध को प्रदर्शित किया गया है।

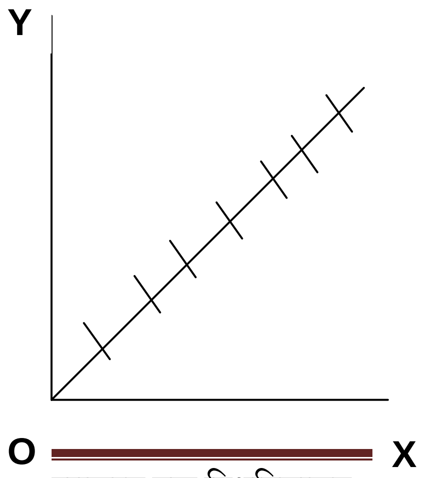

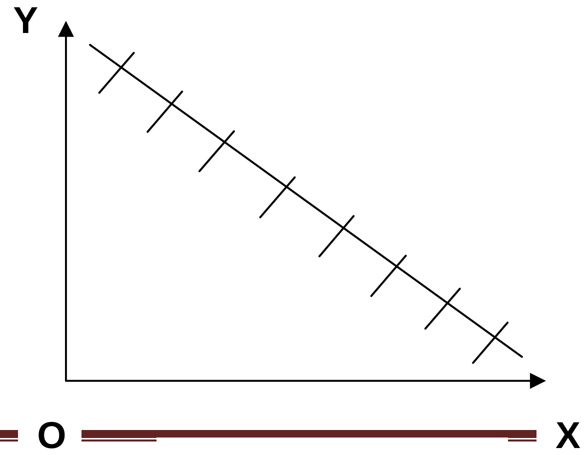

पूर्ण ऋणात्मक सह संबंध

पूर्ण धनात्मक सह संबंध

ii. **रेखीय तथा अ-रेखीय सहसंबंध (Linear or Non-Linear Correlation):-** परिवर्तन अनुपात की सममितता के आधार पर सहसंबंध रेखीय अथवा अ-रेखीय हो सकता है। रेखीय सहसंबंध में परिवर्तन का अनुपात स्थायी रूप से समान होता है अर्थात् यदि इन चर-मूल्यों को बिन्दु-रेखीय पत्र पर अंकित किया जाय तो वह रेखा एक सीधी रेखा के रूप में होगी जैसे- यदि छात्रावास से छात्रों की संख्या को दुगुनी कर दी जाय फलस्वरूप यदि खाद्यान्न की मात्रा भी दुगुनी दर से खपत हो तो इसे रेखीय सहसंबंध (Linear Correlation) कहेंगें। इसके विपरीत जब परिवर्तन का अनुपात स्थिर नहीं होता तो ऐसे सहसंबंध को अरेखीय सहसंबंध कहेंगें। जैसे- छात्रों की संख्या दुगुनी होने पर खाद्यान्नों की मात्रा का दुगुनी दर से खपत नहीं होना उससे अधिक या कम मात्रा में खपत होना, अर्थात् दोनों चरों के परिवर्तन के अनुपात में स्थायित्व का अभाव हो, ऐसी स्थिति को यदि बिन्दु रेखीय पथ पर प्रदर्शित किया जाय तो यह रेखा, वक्र के रूप में बनेगी। रेखीय व अरेखीय सहसंबंधों को निम्न रेखाचित्रों के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है:-

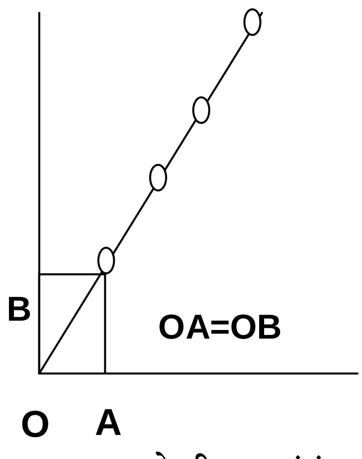

रेखीय सहसंबंध

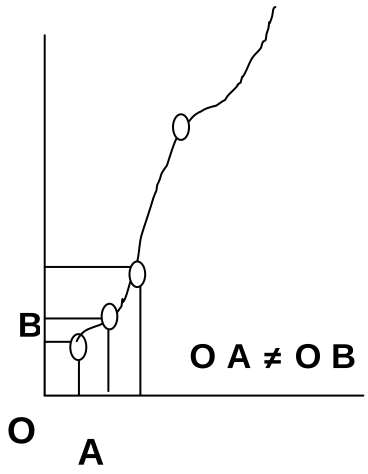

अरेखीय सहसंबंध

iii. **सरल, आंशिक तथा बहुगुणी सहसंबंध (Simple, Partial and Multiple Correlation):-** दो चर मूल्यों (जिनमें एक स्वतंत्र तथा एक आश्रित हो) के आपसी सहसंबंध को सरल सहसंबंध कहते हैं। तीन अथवा अधिक चर-मूल्यों के मध्य पाये जाने वाला सहसंबंध आंशिक अथवा बहुगुणी हो सकता है। तीन चरों में से एक स्वतंत्र चर को

स्थिर मानते हुए दूसरे स्वतंत्र चर मूल्य का आश्रित चर-मूल्य से सहसंबंध ज्ञात किया जाता है तो उसे आंशिक सहसंबंध कहेंगें। उदाहरणार्थ- यदि रूचि को स्थिर मानकर शैक्षिक उपलब्धि पर अभिक्षमता की मात्रा के प्रभाव का अध्ययन किया जाय तो यह आंशिक सहसंबंध कहलायेगा, जबकि बहुगुणी सहसंबंध के अन्तर्गत तीन या अधिक चर मूल्यों के मध्य सहसंबंध स्थापित किया जाता है। इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक स्वतंत्र चर-मूल्य होते हैं एवं एक आश्रित चर होता है। उदाहरणार्थ- यदि बुद्धि, रूचि दोनों का शैक्षिक उपलब्धि पर सामूहिक प्रभाव का अध्ययन किया जाय तो यह बहुगुणी सहसंबंध कहलायेगा।

22.7 सहसंबंधकापरिमाण (Degree of Correlation)

सहसंबंध का परिकलन सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) के रूप में किया जाता है। इसके आधार पर धनात्मक (Positive) एवं ऋणात्मक (Negative) सहसंबंध के निम्न परिमाण हो सकते है:-

i. **पूर्ण धनात्मक अथवा पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध (Perfect Positive or Perfect Negative Correlation):-** जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (+1) होगा। इसके विपरीत जब दो मूल्यों में परिवर्तन समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (-1) होगा। सहसंबंध गुणांक का मूल्य हर दशा में 0 तथा ±1 के मध्य होता है।

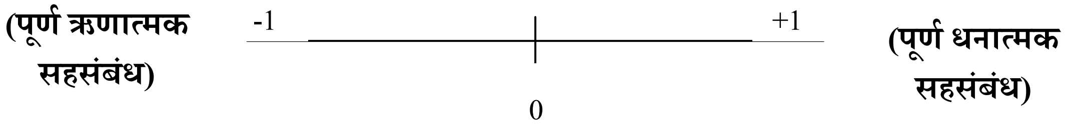

सहसंबंध की मात्रा

सहसंबंध गुणांक का मान व इसका अर्थापन

सहसंबंध परिमाण (Degree of Correlation)	धनात्मक सहसंबंध (Positive Correlation)	ऋणात्मक सहसंबंध (Negative Correlation)
पूर्ण (Perfect)	+1	-1
उच्च स्तरीय (High Degree)	+ .75 से +1 के बीच	-.75 से -1 के मध्य
मध्यम स्तरीय (Moderate Degree)	+ .25 से +.75 के बीच	-.25 से -.75 के मध्य
निम्न स्तरीय (Low Degree)	0 से +.25 के मध्य	0 से -.25
सहसंबंध का पूर्णत: अभाव (No Correlation)	0	0

22.8 सहसंबंधकेरूपमेंrकीविश्वसनीयता

सहसंबंध का सामान्य अर्थ है दो समंक श्रेणियों में कारण और परिणाम के आधार पर परस्पर सहसंबंध पाया जाना। दोंनों श्रेणियों में ज्ञात r का मान कभी-कभी भ्रामक परिणाम दे सकता है। सहसंबंध गुणांक के कम होने पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि संबंध बिल्कुल नहीं है तथा इसके विपरीत सहसंबंध गुणांक का मान अधिक होने पर भी यह नहीं मान लेना चाहिए कि उन चरों के मध्य घनिष्ठ संबंध है। छोटे आकार के प्रतिदर्श में सहसंबंध केवल अवसर त्रुटि के कारण ही हो सकता है। अत: जहॉ तक संभव हो सके दोनों चरों में कारण व प्रभाव संबंध को ज्ञात किया जाय ताकि उसके सबंधों की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त हो जाय।

22.9 सरलसहसंबंधज्ञातकरनेकीविधियाँ (Methods of Determining Simple Correlation)

1. बिन्दु रेखीय विधियाँ (Graphic Methods):-
   1. विक्षेप चित्र (Scatter Diagram)
   2. साधारण बिन्दु रेखीय रीति (Simple graphic Method)
2. गणितीय विधियाँ(Mathematical Methods):-
   i. कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक (Karl Pearson Coefficient of Correlation)

ii. स्पीयरमैन की श्रेणी अंतर विधि (Spearman's Rank Difference Method)

22.10 क्रम अन्तर विधि (Spearman's Rank Order Method or Rank Difference Method)

चार्ल्स स्पीयरमैन द्वारा श्रेणी क्रम विधि अथवा क्रम अन्तर विधि का प्रतिपादन किया गया, अतः इस विधि को स्पीयरमैन की श्रेणी क्रम विधि भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त सहसम्बन्ध गुणांक को रौ (Rho) कहा जाता है, जिसे लैटिन भाषा के अक्षर 'þ' से प्रदर्शित करते हैं।

प्रस्तुत विधि एक सरल विधि है, जिसका प्रयोग केवल छोटे समूह पर किया जाता है। इस विधि द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक की गणना प्राप्तांकों के आधार पर नहीं की जाती है, वरन् उनकी कोटि के आधार पर की जाती है।

उदाहरण-3 निम्नलिखित गणित तथा विज्ञान विषयों के प्राप्तांकों के मध्य श्रेणी क्रम विधि (Rank Order Method) द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक की गणना कीजिये

विद्यार्थी	गणित प्राप्तांक	विज्ञान प्राप्तांक
A	12	18
B	16	20
C	24	22
D	18	15
E	15	14
F	20	17
G	17	12

हल-

गणित प्राप्तांक	विज्ञान प्राप्तांक	$Rank_1$	$Rank_2$	D	D^2

(X)	Y	(R_1)	(R_2)	R_1-R_2	
12	18	7	3	4	16
16	20	5	2	3	9
24	22	1	1	0	0
18	15	3	5	2	4
15	14	6	6	0	0
20	17	2	4	2	4
17	12	4	7	3	9

$\sum D^2=42$

$$\rho = 1 - \frac{6 \times \sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$\rho = 1 - \frac{6 \times 42}{7(7^2-1)}$$

$$\rho = 1 - \frac{6 \times 42}{7(49-1)}$$

$$\rho = 1 - \frac{252}{7 \times 48}$$

$$\rho = 1 - \frac{252}{336}$$

$$\rho = 1 - .75$$

$$\rho = +.25$$

क्रम विधि (Rank Order Method) **द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक की गणना के चरण-**

1. सर्वप्रथम **X** परिवर्ती के सभी प्राप्तांकों को क्रम प्रदान करेंगे। जो संख्या सर्वाधिक होगी उसे प्रथम क्रम प्रदान करेंगे तथा सबसे छोटी प्राप्तांक संख्या को अन्तिम क्रम (Rank)देंगे। **X** परिवर्ती में सबसे बड़ी संख्या **24** है अतः $Rank_1$ के कॉलम में पहला क्रम **24** को दिया। दूसरी

बड़ी संख्या **20** को दूसरा क्रम दिया तथा इसी प्रकार सबसे छोटे प्राप्तांक **12** को अन्तिम क्रम **7** दिया गया।

2. इसी प्रकार **Y** परिवर्ती के सभी प्राप्तांकों को क्रम (R_2) प्रदान किया।
3. $Rank_1$ में से $Rank_2$ को घटाकर (R_1–R_2)D का मान ज्ञात किया। **D** का योग शून्य (धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों का योग समान) होना चाहिए।
4. **D** का वर्ग कर योग के रूप में ΣD^2 ज्ञात किया।
5. सूत्र में **N(7)** तथा ΣD^2**(42)** का मान रखते हुए सरल किया। अन्त में **0.75** के मान को **1** से घटाकर सहसम्बन्ध गुणांक धनात्मक **+0.25** ज्ञात हुआ।

उदाहरण-4 निम्नलिखित **X** तथा **Y** परिवर्ती के मध्य श्रेणी क्रम विधि द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक (Rho) की गणना कीजिये।

हिंदी के प्राप्तांक	अंग्रेज़ी के प्राप्तांक
X	Y
24	19
14	30
24	14
25	15
27	16
28	18
19	29
14	25
26	15
30	17

हल -

हिंदी के प्राप्तांक X	अंग्रेज़ी के प्राप्तांक Y	$Rank_1$ (R_1)	$Rank_2$ (R_2)	D R_1-R_2	D^2
24	19	6.5	4	2.5	6.25
14	30	9.5	1	8.5	72.25
24	14	6.5	10	-3.5	12.25
25	15	5	8.5	-3.5	12.25
27	16	3	7	-4	16.00
28	18	2	5	-3	9.00
19	29	8	2	6	36.00
14	25	9.5	3	6.5	42.25
26	15	4	8.5	-4.5	20.25
30	17	1	6	-5	25.00
					$\Sigma D^2=251.50$

N=10

$\Sigma D^2 = 251.50$

$$\rho = 1 - \frac{6 \times \sum D^2}{N(N^2 - 1)}$$

$$\rho = 1 - \frac{6 \times 251.50}{10(10^2 - 1)}$$

$$\rho = 1 - \frac{1509}{990}$$

$$\rho = 1 - 1.52$$

$= -.52$

ऋणात्मक सहसम्बन्ध

X परिवर्ती में **24** प्राप्तांक दो बार स्थित है जिसे छठवां व सातवां क्रम **(Rank)**देना है**,** अतः दोनों क्रमों को जोड़कर दो का भाग देकर $\left(\frac{6+7}{2}=6.5\right)$ प्राप्त **6.5** क्रम दोनों **24** प्राप्तांको को देंगे। इसी प्रकार **14** प्राप्तांक भी दो बार स्थित है**,** जिसे अन्तिम **9** व **10** क्रम देना है**,** अतः दोनों **14** प्राप्तांकों को क्रमशः **9..5** व **9.5** क्रम देंगे। Y परिवर्ती में भी **15** प्राप्तांक दो बार है**,** अतः दोनों को **8.5** क्रम दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1. जब परिवर्तन का अनुपात स्थिर नहीं होता तो ऐसे सहसंबंध को ....सहसंबंध कहते हैं ।
2. जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण ……………………..कहेंगें।
3. यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ……………..कहलाएगा।
4. सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है, जिसे ………………………..कहा जाता है।
5. दो या दो से अधिक चरों के मध्य अन्तर्संबंध को ……………..की संज्ञा दी जाती है।
6. चार्ल्स स्पीयरमैन द्वारा **…………………**विधि का प्रतिपादन किया गया|

22.11सारांश

इस इकाई में आपने सहसंबंध का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति व इसके मापने के क्रम विधि द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक(Rho) की गणना का अध्ययन किया| इन सभी अवधारणाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है|

दो या दो से अधिक चरों के मध्य अन्तर्संबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है। सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है, जिसे सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) कहा जाता है।

गणितीय विधि से किसी भी दो या दो से अधिक चरों के मध्य सहसंबंध की मात्रा का परिकलन किया जा सकता है और इन चरों के मध्य कुछ न कुछ सहसंबंध की मात्रा भी हो सकती है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि उन चरों के मध्य कारण- कार्य का संबंध विद्यमान

है। प्रत्येक कारण-कार्य संबंध का अर्थ सहसंबंध होता है, लेकिन प्रत्येक सहसंबंध से कारण-कार्य संबंध को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

सहसंबंध को हम दिशा, अनुपात, तथा चर-मूल्यों की संख्या के आधार पर कई भागों में विभक्त कर सकते हैं।

धनात्मक एवं ऋणात्मक सहसंबंध (Positive and Negative Correlation) :- यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। इसके विपरीत यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाएगा।

रेखीय तथा अ-रेखीय सहसंबंध (Linear or Non-Linear Correlation):- परिवर्तन अनुपात की सममितता के आधार पर सहसंबंध रेखीय अथवा अ-रेखीय हो सकता है। रेखीय सहसंबंध में परिवर्तन का अनुपात स्थायी रूप से समान होता है अर्थात् यदि इन चर-मूल्यों को बिन्दु-रेखीय पत्र पर अंकित किया जाय तो वह रेखा एक सीधी रेखा के रूप में होगी|इसके विपरीत जब परिवर्तन का अनुपात स्थिर नहीं होता तो ऐसे सहसंबंध को अरेखीय सहसंबंध कहेंगें।

सरल, आंशिक तथा बहुगुणी सहसंबंध (Simple, Partial and Multiple Correlation):- दो चर मूल्यों (जिनमें एक स्वतंत्र तथा एक आश्रित हो) के आपसी सहसंबंध को सरल सहसंबंध कहते हैं। तीन अथवा अधिक चर-मूल्यों के मध्य पाये जाने वाला सहसंबंध आंशिक अथवा बहुगुणी हो सकता है। तीन चरों में से एक स्वतंत्र चर को स्थिर मानते हुए दूसरे स्वतंत्र चर मूल्य का आश्रित चर-मूल्य से सहसंबंध ज्ञात किया जाता है तो उसे आंशिक सहसंबंध कहेंगें।जबकि बहुगुणी सहसंबंध के अन्तर्गत तीन या अधिक चर मूल्यों के मध्य सहसंबंध स्थापित किया जाता है।

पूर्ण धनात्मक अथवा पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध (Perfect Positive or Perfect Negative Correlation):- जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण धनात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (+1) होगा। इसके विपरीत जब दो मूल्यों में परिवर्तन समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (-1) होगा। सहसंबंध गुणांक का मूल्य हर दशा में 0 तथा ±1 के मध्य होता है।

सरल सहसंबंध ज्ञात करने की निम्न विधियाँ हैं –

1. बिन्दु रेखीय विधियाँ (Graphic Methods):-

i. विक्षेप चित्र (Scatter Diagram)
ii. साधारण बिन्दु रेखीय रीति (Simple graphic Method)

2. गणितीय विधियाँ (Mathematical Methods):-

i. कार्ल पियर्सन का सहसंबंध गुणांक (Karl Pearson Coefficient of Correlation)

ii. स्पीयरमैन की श्रेणी अंतर विधि (Spearman's Rank Difference Method)

चार्ल्स स्पीयरमैन द्वारा श्रेणी क्रम विधि अथवा क्रम अन्तर विधि का प्रतिपादन किया गया, अतः इस विधि को स्पीयरमैन की श्रेणी क्रम विधि भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त सहसम्बन्ध गुणांक को रौ (Rho) कहा जाता है, जिसे लैटिन भाषा के अक्षर 'þ' से प्रदर्शित करते हैं।

22.12शब्दावली

1. **सहसंबंध (Correlation):** दो या दो से अधिक चरों के मध्य अन्तर्संबंध को सहसंबंध की संज्ञा दी जाती है।
2. **सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation):**सहसंबंध के परिमाप को अंकों में व्यक्त किया जाता है, जिसे सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) कहा जाता है।
3. **धनात्मक सहसंबंध (PositiveCorrelation):** यदि दो पद श्रेणियों या चरों में परिवर्तन एक ही दिशा में हो तो उसे धनात्मक सहसंबंध कहते हैं |
4. **ऋणात्मक सहसंबंध(Negative Correlation):** यदि एक चर के मूल्यों में एक दिशा में परिवर्तन होने से दूसरे चर के मूल्यों में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो ऐसा सहसंबंध ऋणात्मक सहसंबंध कहलाता है ।
5. **रेखीय सहसंबंध (LinearCorrelation):**रेखीय सहसंबंध के अन्तर्गत दो चरों में परिवर्तन का अनुपात स्थायी रूप से समान होता है अर्थात् यदि चर-मूल्यों को बिन्दु-रेखीय पत्र पर अंकित किया जाय तो वह रेखा एक सीधी रेखा के रूप में होती है|
6. **अ-रेखीय सहसंबंध (Non-Linear Correlation):**जब दो चरों में परिवर्तन का अनुपात स्थिर नहीं होता तो ऐसे सहसंबंध को अरेखीय सहसंबंध कहते हैं ।
7. **सरल सहसंबंध (SimpleCorrelation):**दो चर मूल्यों (जिनमें एक स्वतंत्र तथा एक आश्रित हो) के आपसी सहसंबंध को सरल सहसंबंध कहते हैं।
8. **आंशिक सहसंबंध (PartialCorrelation):** तीन चरों में से एक स्वतंत्र चर को स्थिर मानते हुए दूसरे स्वतंत्र चर मूल्य का आश्रित चर-मूल्य से सहसंबंध ज्ञात किया जाता है तो उसे आंशिक सहसंबंधकहते हैं।
9. **बहुगुणी सहसंबंध (Multiple Correlation):**तीन या अधिक चर मूल्यों के मध्य सहसंबंध को बहुगुणी सहसंबंध कहते हैं।

10. **पूर्ण धनात्मक सहसंबंध (Perfect PositiveCorrelation):**जब दो पद श्रेणियों में परिवर्तन समान अनुपात एवं एक ही दिशा में हो तो उसे पूर्ण धनात्मक सहसंबंध कहते हैं। ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (+1) होता है।
11. **पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध (Perfect Negative Correlation):**जब दो मूल्यों में परिवर्तन समान अनुपात में ठीक विपरीत दिशा में हो तो उसे पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध कहेंगें।ऐसी स्थिति में सहसंबंध गुणांक (-1) होता है।

22.13अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर

1. अरेखीय 2. धनात्मक सहसंबंध 3. ऋणात्मक सहसंबंध 4. सहसंबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) 5. सहसंबंध 6. श्रेणी क्रम विधि अथवा क्रम अन्तर

22.14 संदर्भग्रन्थसूची/पाठ्यसामग्री

1. Koul, Lokesh (2002). Methodology of Educational Research New Delhi, Vikas Publishing Pvt. Ltd.
2. Karlinger, Fred N. (2002). Foundations of Behavioural Research, New Delhi, Surjeet Publications.
3. Garret, H.E. (1972). Statistics in Psychology and Education, New York, Vakils, Feffers and Simans Pvt. Ltd.
4. सिंह, ए०के० (2007) : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास
5. गुप्ता, एस०पी० (2008) : मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद, शारदा पब्लिकेशन
6. राय, पारसनाथ (2001) : अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स
7. Best, John W. & Kahn (2008). Research in Education, New Delhi, PHI.
8. Good, Carter, V. (1963). Introduction to Educational Research, New York, Rand Mc Nally and company.

22.15निबंधात्मकप्रश्न

1. सहसंबंध का अर्थ बताईये व इसके विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कीजिये|

2. निम्नलिखित समंकों से कोटि अंतर् विधि द्वारा सहसंबंध गुणांक ज्ञात कीजिए| (उत्तर =-0.875).

X	53	98	95	81	75	61	59	55
Y	47	25	32	37	30	40	39	45

3. निम्नलिखित समंकों से कोटि अंतर् विधि द्वारा सहसंबंध गुणांक ज्ञात कीजिए| (उत्तर =0.268)

Marks in Maths	20	25	40	25	30	60	40	25
Marks in English	35	35	60	65	25	60	35	20

4. निम्नलिखित समंकों से कोटि अंतर् विधि द्वारा सहसंबंध गुणांक ज्ञात कीजिए|(उत्तर=0.9643)

Test I	20	30	40	50	60	70	80	55
Test II	47	14	05	30	32	40	45	65